...महाराज-गुलाबसिंह-जूदेवेन पूर्वं प्रकाशितं
...त्रे-माधव-उरव्येन विरचितं

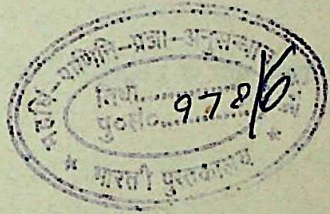
...भानूदयकाव्यम्

व्याख्याकारोऽनुवादकश्च
डा. सुद्युम्न आचार्यः


महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथि
पु०सं०
भारती पुस्तकालय

श्रीमन्महाराज-गुलाबसिंह-जूदेवेन पूर्वं प्रकाशितं
महाकवि-माधव-उरव्येन विरचितं

वीरभानूदयकाव्यम्



व्याख्याकारोऽनुवादकश्च
डा. सुद्युम्न आचार्यः
व्याकरणाचार्य M.A. (अष्टस्वर्णपदक-विजेता) D. Phil.
रीडर-स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
मु.म. टाउन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज
बलिया (उ.प्र.)

प्रकाशक

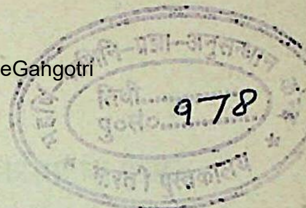
वेद वाणी वितानम्
प्राच्य विद्या शोध संस्थानम्
कोलगवाँ, सतना (म.प्र.)

प्रथम बार - १०००

मूल्य : १२०.०० रु. मात्र

वर्ष-जुलाई १९९५

मुद्रक-
तारा प्रिंटिंग वर्क्स
वाराणसी



:

काव्य का संक्षिप्त परिचय

काव्य का प्रणेता– इस काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में लिखित श्लोक से कवि के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। इस कवि का नाम माधव उरव्य है। यहाँ श्री लेले ने उरव्य का अर्थ वैश्य किया है, क्योंकि वेद में अलंकार के द्वारा उरु से उत्पन्न होने वाले को वैश्य बताया है[१]। पर श्री हीरानन्द शास्त्री जी ने कायस्थ को वैश्य का प्रतिनिधि मानते हुए इसका अर्थ कायस्थ किया है।

इस कवि के पिता का नाम अभयचन्द्र है। कवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में इन्हें यशस्वी, विद्वानों का प्रिय तथा पूज्य बताया है। कवि की माता का नाम दुर्गा है। कवि ने सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा माता से ही प्राप्त की है[२]। यह राज्याश्रित कवि था। इस प्रकार कवि ने इस काव्य के द्वारा अपनी प्रसिद्धि की आशा प्रकट की है[३]। इस काव्य की रचना के समय वीरभानु तथा उनके पश्चात् रामचन्द्र बघेल राज्य कर रहे थे। राजा वीरभानु के समय उन्हें काव्य का नायक बनाते हुए इसका प्रणयन करना अतीव स्वाभाविक है।

काव्य रचना का काल– सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने इस काव्य का संभावित रचना काल १५४० ई. बताया है। पर श्री शास्त्री जी काव्य की ही एक घटना के आधार पर १५५५ ई. के आस पास रखने के पक्ष में हैं[४]।

काव्य के १० वें सर्ग में उल्लिखित घटना यह है कि सुल्तान मुहम्मद सैदाली भागकर रामचन्द्र की शरण में आया था[५]। इतिहासकारों के अनुसार

---

१. उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत —*यजुर्वेद ३१.११*

२. मातुस्तेन सदुक्तमार्गतिना श्री माधवेनर्जितं।
काव्यं राजति राजवर्णनशुभं तत्कीर्तिगंगामृतम् —काव्यम् १२.४३

३. जमति जयति काव्यं तस्य भूपाश्रयत्वात् —*काव्यम् १२.४२*

४. **The Kavya must therefore have been composed about this very year i.e. 1555 A.D.**

५. सईदिलिस्तं शरणागतोऽभूत् स्वयं सुरत्राणमुहम्मदादिः — *काव्यम् १०.१३*

सैदाली को परास्त होकर १५५५ ई. को भटदेश की ओर भागना पड़ा था। साथ ही रामचन्द्र बघेल ने १५५५ ई. से शासन आरम्भ किया था। अतः इस काव्य में सैदाली का रामचन्द्र की शरण में जाने का उल्लेख सर्वथा सत्य एवं ऐतिहासिक है। इस ऐतिहासिक घटना के उल्लेख के कारण इस काव्य की रचना १५५५ ई. से पूर्व नहीं हो सकती।

साथ ही इस काव्य में वीरभानु की मृत्यु का कोई स्पष्ट वर्णन नहीं किया है। पर उनके जीवन के राज्य कार्य एवं शासन का बड़ा ही सजीव वर्णन बड़े विस्तार से पांचवें एवं छठे सर्ग में किया है। ऐसा लगता है कि कवि स्वयं राज्य कार्यों को स्पष्ट देख रहे हों। अतः इस काव्य की रचना का प्रारम्भ वीरभानु के जीवन काल में सम्भावित है। पर इस काव्य के अन्त में केवल एक बार वीरभानु के साथ भूतकालिक 'आसीत्' क्रिया का प्रयोग किया गया है। वहां कहा है कि विविध गुणों के स्थान यशस्वी भूपति वीरभानु थे[१]। इससे लगता है कि काव्य की अन्तिम रचना के समय वीरभानु दिवंगत हो चुके थे। वीरभानु अपने अन्तिम समय में अपने पुत्र रामचन्द्र बघेल को पूरा राज्य भार सौंप कर त्रिवेणी वास करने लगे थे। उसके कुछ समय पश्चात् १५५५ ई. को उनकी मृत्यु हुई थी। अतः इस काव्य की रचना भी १५५५ ई. से प्रारम्भ करके १५५६ ई. तक सुनिश्चित रूप से पूरी हो चुकी थी।

काव्य के मूल हस्तलेख का काल— काव्य की मूल पाण्डुलिपि के अन्त में लिखित विवरण से इसके विषय में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वहां कहा है कि इसका हस्तलेख बनारस में कायस्थ परिवार के कृष्णदास के पुत्र तुलसीदास द्वारा विक्रम संवत् १६४८ (अर्थात् १८९१ ई.) में अगहन शुक्ल पक्ष की द्वितीया तिथि मंगलवार को पूरा किया गया था[२]।

---

१. आसीदेवं विविधगुणगणग्रामविश्रामधाम
क्षोणीशानो जगति विदित-श्रीयशा वीरभानुः — काव्यम् १२.४१

२. संवत् १६४८ समये अगहन शुक्लपक्षद्वितीयायां भौमवासरे लिखितमिदं कायस्थतुलसीदासेन कृष्णदासपुत्रेण काशीवासिना विश्वेश्व-सन्निधे — ग्रन्थ के अन्त में लिखित लेख।

इस हस्तलेख के प्रारम्भ तथा अन्त में फारसी लिपि में अंकित सीलें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। प्रारम्भ की सील में यह लिखा है—

बीरभदर बन्दह शाह अकबर ९६५

दूसरी अन्तिम पृष्ठ की सील में यह अंकित है—

बीरभदर बन्दह सुल्तान सलीम

यहाँ प्रथम सील में वर्ष ९६५ हिज्री वर्ष का द्योतक है। क्योंकि मुगलों के शासन काल में यही वर्ष प्रचलित था। इस प्रकार यह सील १५५८ ई. में लगाई गई थी।

बादशाह अकबर का राज्यारोहण १५५६ ई. में हुआ था। अतः इस सील के समय अकबर के शासन का तीसरा वर्ष था। इससे सील में बीरभदर अथवा वीरभद्र को अकबर का बन्दा अथवा अनुयायी कहना तर्कसंगत है।

पर जैसा कि ऊपर कहा गया, इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का निर्माण १५९१ ई. में हुआ था। पुनः बाद में लिखे गये ग्रन्थ में पहले काल की सील किस प्रकार लगाई, यह एक प्रश्न उठता है।

इसके उत्तर में डा. अग्निहोत्री जी का कहना है कि ऐसा लगता है कि मुगल अधीनता की स्वीकृति के रूप में राजा रामचन्द्र बघेल ने यह मोहर ९६५ हिज्री अर्थात् १५५८ ई. में तैयार कराई थी। इसमें उन्होंने अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिये शिशु वीरभद्र का नाम उसमें अंकित कराया था। आगे चलकर जब वीरभद्र ने १५९१ ई. में वीरभानूदय काव्य की प्रतिलिपि तैयार कराई तो उनके कोषाध्यक्ष ने पाण्डुलिपि में यही मोहर लगा दी[१]।

दूसरी सील में तारीख या वर्ष नहीं दिया गया है। यहाँ सुल्तान सलीम अकबर के बेटे जहांगीर का द्योतक है। जहांगीर का 'सलीम' यह बचपन का नाम था। इन्हें जन्म से ही सुल्तान कहा जाता था[२]। अनेक सिक्कों में इसकी

१. बघेलखण्ड के संस्कृत काव्य पृ. १०७

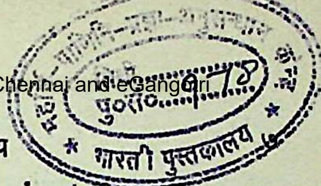
२. जहाँगीरनामा(अनुवादक बेवरिज) पृष्ठ २

सुल्तान उपाधि अंकित है। यह एक ज्ञात तथ्य है कि उस समय विभिन्न राजा अपने को सम्राट् के राजकुमार से भी सम्बद्ध रखते थे। यह कार्य सम्राट् की अनुमति से होता था। अतः इस दूसरी सील में वीरभद्र को उस समय के राजकुमार सुल्तान सलीम अथवा जहांगीर का बन्दा या अनुयायी कहना तर्कसंगत प्रतीत होता है।

यह सील स्पष्टतः पहली सील के बाद तथा सुल्तान सलीम के जन्म के पश्चात् बनवाई गई थी। उल्लेखनीय है कि बनारस संस्कृत कालेज में प्राप्त कथा सरित्सागर के शुरू के हस्तलेख में भी सुल्तान सलीम की मोहर लगी है। इसमें हिज्री वर्ष ९७७ (अर्थात् १५६९ ई.) अंकित है। हम जानते हैं कि सलीम का जन्म भी १५६९ ई. को हुआ था। अतः यह सील तथा इस काव्य में लगी सील भी वीरभद्र को इसी वर्ष उत्पन्न नवजात राजकुमार सलीम का अनुयायी प्रकट करती है।

प्रस्तुत काव्य का पूर्व प्रकाशन— इस काव्य के बहुमूल्य महत्त्व को समझते हुए दीवान बहादुर पंडित जानकी प्रसाद चतुर्वेदी ने १९२० ई. में इसकी संशोधित प्रतिलिपि तैयार करने के लिये धार के तत्कालीन इतिहास विभाग के प्रमुख श्री काशीनाथ कृष्ण लेले के पास भेजा था। इसकी प्रतिलिपि तैयार होने के पश्चात् १९२१ ई. में दोनो प्रतियों को बड़ौदा के पुरातत्त्व विभाग के संचालक डा. हीरानन्द शास्त्री जी के पास भेजा गया। शास्त्री जी ने इस ग्रन्थ की महत्वपूर्ण सामग्री के आधार पर १९२५ तथा १९३० ई. में The Baghel dynasty of Rewa इत्यादि बहुमूल्य निबन्ध लिखे।

इस ग्रन्थ के अत्यन्त महत्व को देखते हुए श्री शास्त्री जी ने उन्हीं के शब्दों में Labour of Love अथवा प्रीतिपूर्ण परिश्रम की इच्छा प्रकट की। उनकी इस इच्छा का सम्मान करते हुए महाराज गुलाबसिंह जूदेव ने राजकीय व्यय पर इसका प्रकाशन स्वीकार किया। तब १९३५ ई. में श्री लेले तथा श्री शास्त्री जी द्वारा यह ग्रन्थ सम्पादित किया गया तथा नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ में इस ग्रन्थ का मुद्रण किया गया। पं जानकी प्रसाद जी ने श्री लेले तथा श्री शास्त्री जी के प्रीतिपूर्ण परिश्रम के लिये महाराज रीवा की ओर से धन्यवाद प्रदान किया।



मुद्रण के पश्चात् इस ग्रन्थ की प्रतियां लखनऊ से लाकर तत्कालीन महाराजा प्रेस तथा वर्तमान गवर्नमेन्ट प्रेस रीवा में लाकर रख दी गईं। कहते हैं कि एक बार वहां आग लग गई तथा ग्रन्थ की सब प्रतियां जलकर नष्ट हो गईं। इस ग्रन्थ की एकमात्र पाण्डुलिपि मुद्रण के पश्चात् सरस्वती कोष भण्डार किला में रखी गई थी। पर अब वहां उसका पता नहीं चलता। पुस्तक की मुद्रित प्रति माननीय श्री अग्निहोत्री जी के समय ही दुर्लभ हो गयी थी तथा उन्होंने कठिनाई से इसे प्राप्त किया था। इस तथ्य को उन्होंने अपने ग्रन्थ बघेलखंण्ड के संस्कृत काव्य पृ. १०८ में स्वीकार किया है।

पुस्तक के ६० वर्ष के पश्चात् अब इसकी दुर्लभता की सहज ही कल्पना की जा सकती है। यह ग्रन्थ संस्कृत काव्य तथा इतिहास दोनों ही दृष्टि से अद्वितीय है। किसी भी भाग के प्रामाणिक इतिहास को जानने के लिये उनके मूल ग्रन्थ का होना अनिवार्य होता है। उस मूल ग्रन्थ के अनुवाद या उद्धरणों से कभी उसकी भरपाई नहीं की जा सकती। इस प्रकार स्पष्टतः उसका कोई विकल्प नहीं बन सकता। इस दृष्टि से बघेलखण्ड के इतिहास तथा काव्य के लिये इस ग्रन्थ का महत्व अपने आप में अनूठा है। अतः इस ग्रन्थ रत्न को सुरक्षित तथा प्रचारित करने के लिये बघेलखण्ड के इतिहास - काव्यों के प्रकाशन के क्रम में इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

चरित प्रधान प्रबन्ध काव्य के रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ— काव्य का विषय दो प्रकार का हो सकता है। वह या तो अलौकिक हो सकता है। इसका उद्देश्य प्रमुखतः लोकरंजन होता है। दूसरे प्रकार के काव्य का विषय ऐतिहासिक होता है। इसमें इतिहास की तथ्यपूर्ण घटनाओं का संकलन होता है। स्पष्टतः यह दूसरे प्रकार का काव्य अधिक उपयोगी है। क्योंकि इसमें काव्यगत सौन्दर्य तो उपलब्ध होता ही है। साथ ही इस धरती के यथार्थ तथा वास्तविकताओं से परिचित होने वाले व्यक्ति को इतिहास की जानकारी भी प्राप्त होती है।

प्रस्तुत काव्य दोनों उद्देश्यों को पूर्ण करने के कारण अधिक उपयोगी है। यह केवल आदर्शों के हवाई उड़ाने नहीं रखता। अपितु एक कालविशेष के बघेल नरेशों का इतिहास भी प्रस्तुत करता है।

सर्गबन्ध रचना तथा अन्य लक्षणों के द्वारा इसे महाकाव्य कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में काव्य के सभी गुण विद्यमान हैं। यहाँ विभिन्न अवसरों पर आवश्यकतानुसार सभी रसों का परिपोष हुआ है। यहाँ छन्द अलंकारों के अत्यन्त मनोहारी प्रयोग देखे जा सकते हैं। विभिन्न रसों के अनुसार अलग अलग प्रकार के अलंकारों का दृश्य अत्यन्त सुन्दर हैं। साहित्यशास्त्र के प्रायः सभी शब्दालंकार तथा अर्थालंकार इस काव्य में वर्तमान हैं।

प्रस्तुत काव्य पर महाकवि कालिदास का प्रभाव— महाकवि कालिदास इस देश में कविकुलगुरु के रूप में विख्यात हैं। अनेक कवियों ने इनसे प्रेरणा प्राप्त करके काव्यशास्त्र को समृद्ध बनाया है। अतः प्रस्तुत काव्य के कवि ने भी कालिदास से प्रेरणा प्राप्त की हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। इस काव्य के अनेक वर्णनों में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि कें प्रयोग में यह प्रभाव ढूँढा जा सकता है। यद्यपि कहीं कहीं इस अनुकरण के क्रम में प्रस्तुत काव्य में कुछ न्यूनता रह गई है। पर कुछ प्रसंगों में यह किसी विशेष अर्थ में उत्कृष्टता भी प्राप्त कर सका है। इसके लिये कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। प्रस्तुत वीरभानूदय-काव्य में शालिवाहन से वीरसिंह के जन्म के अवसर पर माता पिता के आनन्द को इस प्रकार प्रकट किया गया है —

इन्द्राच्छचीवांचितवीर्यरूपं जयन्तमीशाद् गुहमम्बिकेव ।
तस्मात्तनूजं लभते स्म राज्ञी कल्याणदेवी स्वकुलप्रवृद्ध्यै ।। - १.७१

तथा इसी प्रकार —

राजा प्रयच्छन् द्रविणानि पुत्रं पीत्वा दृशाऽऽनन्दसमुद्रवृद्धः ।
बभौ यथा पुत्ररघुं दिलीपो युधिष्ठिरं पाण्डुरिवोदतश्रीः ।। - १.७३

इनका अर्थ प्रस्तुत ग्रन्थ में देखा जा सकता है। इन दोनों श्लोकों की प्रेरणा महाकवि कालिदास के इस एक श्लोक से प्राप्त हुई है—

उमावृषांकौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ ।
तथा नृपः सा च सुतेन मागधी ननन्दतुस्तत्संदृशेन तत्समौ।।

— *रघुवंश ३.२३*

अर्थात् - जिस प्रकार कार्तिकेय के जन्म से पार्वती तथा शिव प्रसन्न हुए, अथवा पुत्र जयन्त से शची तथा इन्द्र प्रसन्न हुए, उसी प्रकार इस पुत्र रघु के द्वारा राजा दिलीप तथा सुदक्षिणा भी प्रसन्न हुए।

स्पष्टतः प्रस्तुत वीरभानूदय काव्य में इस उपमा को वीरसिंह जन्म के आनन्द के वर्णन के लिये प्रस्तुत किया गया है। अन्तर केवल यह है कि रघुवंश में उपमालंकार का साधारण धर्म 'प्रसन्न होना' है। परन्तु यहाँ 'पुत्र प्राप्त करने' को साधारण धर्म बनाया गया है। वीरभानूदय के अगले श्लोक में प्रदीप्त होना या आनन्दित होना साधारण धर्म है। पर यहाँ उपमान को बदल दिया गया है। इस प्रकार रघुवंश के उपमान तथा साधारण धर्म को अलग अलग श्लोकों में प्रयुक्त किया गया है।

इस प्रकार के अनुकरण के क्रम में प्रस्तुत काव्य की एक त्रुटि की ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक है। ऊपर कहा गया है कि इस काव्य के १.७३- श्लोक में 'बभौ' अर्थात् 'प्रदीप्त होना' साधारण धर्म है। यह क्रिया अकर्मक है। अतः यहाँ 'पुत्ररघुं' में द्वितीया नहीं हो सकती। ध्यान रहे कि रघुवंश में ठीक ऐसे ही प्रसंग में 'सुतेन' इस तृतीया का प्रयोग है, द्वितीया का नहीं। जो कि सर्वथा निर्दोष एवं समीचीन है। क्योंकि वहां भी 'ननन्दतुः' क्रिया अकर्मक है। अतः इसके साथ द्वितीया का प्रयोग न करके सर्वथा उचित प्रयोग किया गया है।

द्वितीय उदाहरण— इस काव्य में कालिदास के प्रभाव को प्रकट करने के लिये इस श्लोक को भी उद्धृत किया जा सकता है —

स राज्यमस्मिन्ननघे तनूजे निधाय तस्थौ भुवने सुखेन।
अन्ते दिनस्य द्युमणिर्यथा स्वं दीप्तिव्रजं वायुसखे समर्प्य ।। -१.८३

यहाँ राजा शालिवाहन के द्वारा अपने पुत्र वीरसिंह को राज्य भार सौंपने के पश्चात् शालिवाहन की निश्चिन्तता का वर्णन इस श्लोक में उपमालंकार द्वारा प्रस्तुत है — जिस प्रकार सायंकाल में सूर्य अपनी दीप्ति को अग्नि के लिये समर्पित करके निश्चिन्त हो जाता है, उसी प्रकार राजा शालिवाहन भी निश्चिन्त हुए या सुख से रहने लगे।

प्रस्तुत कवि को इस प्रकार के उपमालंकार की प्रेरणा कालिदास के इस प्रसंग से प्राप्त हुई है—

स राज्यं गुरुणा दत्तं प्रतिपद्याधिकं बभौ।
दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः ।।

— *रघुवंश ४.१*

अर्थात् वह रघु अपने पिता दिलीप से राज्य प्राप्त करके और भी अधिक प्रदीप्त या सुशोभित हुआ। जिस प्रकार दिन के अन्त में सूर्य से तेज प्राप्त करके अग्नि प्रदीप्त होती है। यह उपमा 'सौरं तेजः सायमग्नि संक्रमते' अर्थात् सायंकाल सूर्य का तेज अग्नि में अनुप्रविष्ट हो जाता है' इस श्रुति के आधार पर कही गयी है।

यहाँ इस वर्णन में छोटा सा विसंगति का आभास भी वर्तमान है। क्योंकि उपमेय के प्रसंग में 'अधिकं बभौ' यह साधारण धर्म है - वह रघु राज्य पाकर पहले से भी अधिक प्रदीप्त हुआ, यह बताना अभिप्रेत है। पर उपमान के प्रसंग में 'अधिकं बभौ' नहीं अपितु केवल 'बभौ' या 'प्रदीप्त हुआ' यही साधारण धर्म बन सकता है। सायंकाल तथा रात्रि में अग्नि न तो सूर्य की अपेक्षा, न ही अपनी पहली दशा की अपेक्षा अधिक प्रदीप्त होती है। यद्यपि अन्धकार अवश्य ही अधिक बढ़ जाता है। इस अधिक अन्धकार में अग्नि की अधिक प्रदीप्ति आभासी हो सकती है, वास्तविक नहीं। पर उपमेय में तो रघु वस्तुतः अधिक प्रदीप्त हुआ है। अतः यहां साधारण धर्म पूरी तरह घटित नहीं हो पाता।

पर प्रस्तुत काव्य के आलोच्य श्लोक में ऐसी कोई समस्या नहीं। क्योंकि यहाँ निश्चिन्त होना या सुख से बैठना साधारण धर्म है। काव्य में अचेतन में चेतनवत् उपचार के अनेक काव्यगत उदाहरणों के साक्ष्य में यहाँ शालिवाहन तथा सूर्य समान रूप से निश्चिन्त हुए हैं। स्पष्टतः काव्य का यह प्रयोग उपमा, आरोप, उपचार आदि की दृष्टि से बहुत अच्छा बन पड़ा है।

तृतीय उदाहरण— इसी प्रकार काव्य के निम्न श्लोक में भी कालिदास का प्रभाव देखा जा सकता है —

स वर्धते स्म द्विजराजमंजुर्दिने दिनेऽद्धा गुरुपोषणेन ।
यथा पयोधिर्विधुवीक्षणेन शुक्लेन पक्षेण यथा सुधांशुः ।। - १.९२

यहाँ अच्छे पोषण के द्वारा शिशु वीरभानु की प्रतिदिन की वृद्धि को प्रकट करने के लिये दो उपमाओं का प्रयोग किया गया है— जिस प्रकार चन्द्रमा के दर्शन के द्वारा समुद्र बढ़ता है, अथवा जिस प्रकार शुक्ल पक्ष के द्वारा चन्द्रमा बढ़ता है।

यहाँ पर दूसरी उपमा कालिदास के इस श्लोक से प्रभावित प्रतीत होती है—

पितुः प्रयत्नात् स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिने दिने ।
पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः ।।

— *रघुवंश ३.२२*

अर्थात् वह रघु सम्पूर्ण सम्पदाओं वाले पिता दिलीप के प्रयत्न से अपने मनोहर अंगों के साथ प्रतिदिन बढ़ने लगा। जिस प्रकार सूर्य की रश्मि के अनुप्रवेश के द्वारा बाल चन्द्रमा निरन्तर बढ़ता चला जाता है।

यहाँ बाल चन्द्रमा के निरन्तर बढ़ने में सूर्य की रश्मि के प्रवेश को हेतु बताया गया है। (हरिदश्वदीधितेः, में हेतु में पञ्चमी है।) यह तथ्य सर्वथा वैज्ञानिक है। पर आधुनिक भौतिक विज्ञान यह भी मानता है कि चन्द्रमा में सूर्य की रश्मि का अनुप्रवेश सदा ही पूरी तरह होता रहता है। पर हमारी पृथ्वी की विभिन्न स्थितियों के कारण हमें कम अधिक दिखता है। अतः प्रस्तुत वीरभानूदय काव्य में सूर्य रश्मि के स्थान पर शुक्ल पक्ष को हेतु बताते हुए इस उपमा का प्रयोग किया गया है, जो कि वस्तुतः बहुत सुन्दर है। चन्द्रमा की क्रमिक वृद्धि होती है, शिशु वीरभानु की भी। चन्द्रमा सौन्दर्य में सर्वश्रेष्ठ है, शिशु वीरभानु भी। इन सब दृष्टियों से महाकवि कालिदास से प्रभावित यह उपमालंकार बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। इसमें सन्देह नहीं कि काव्य के इस प्रकार के प्रयोगों के द्वारा ही हिन्दी आदि में 'दूज के चाँद की तरह बढ़ने लगा' जैसे सुन्दर मुहावरे विकसित हुए हैं!!

इस विवेचन से यह प्रकट होता है कि प्रस्तुत काव्य में अन्य काव्यों का प्रभाव है। फिर भी प्रस्तुत कवि ने सर्वत्र अपनी मौलिकता की छाप अवश्य छोड़ी है। इस प्रकार यह काव्य अन्धानुकरण नहीं है। अपितु पूर्ववर्ती काव्य के आधार पर सर्वथा नवीन, अनूठा एवं सुन्दर प्रयोग है।

धन्यवाद प्रकाशन— इस काव्य की विवेचना में डा. हीरानन्द शास्त्री जी, डा. राजीवलोचन अग्निहोत्री जी आदि अनेक विद्वानों ने सचमुच महान् परिश्रम किया है। उनके कार्यों को कभी भुलाया नहीं जा सकता। अतः मैं श्रद्धावनत होकर उनके बहुमूल्य कार्यों के प्रति हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक की छायाप्रति मुझे किला, रीवा के कंट्रोलर महोदय माननीय श्री रमाशंकर मिश्र जी के सौजन्य से प्राप्त हुई है। वे सदा इन ग्रन्थों की सुरक्षा की हितचिन्ता रखते हैं। अतः मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

माननीय श्रीमान् आचार्य स्वतंत्रदेव जी महाराज, इलाहाबांद इस प्रकार के कार्यों का मर्म समझते हुए मुझे सदा प्रोत्साहित करते हैं। अतः मैं उनके लिये हार्दिक धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद इससे पूर्व कभी भी प्रकाशित नहीं हुआ था। इससे सामान्य जन को इसके समझने में कठिनाई होती थी। अतः हिन्दी अनुवाद, व्याख्या, तुलना, अनुशीलन आदि के साथ इसे प्रकाशित किया जा रहा है। मुझे आशा है कि श्री हीरानन्द शास्त्री जी की भावना के अनुरूप इस काव्य की सुरक्षा के लिये मेरे इस प्रीतिपूर्ण परिश्रम को विद्वानों का समादर प्राप्त हो सकेगा।

— *अनुवादक*

वीरभानूदयकाव्यम्

प्रथमः सर्गः

अजोऽपि देवो वसुदेवजन्मा द्वितीयहीनोऽपि रमाविहारी ।
जनार्दनः पालयिता जनानां कोऽपि श्रियं सन्तनुतां स ईशः।।१।।

अन्वयसमासादिः— अजोऽपि = अनुत्पन्नोऽपि देवः वसुदेवजन्मा = वसुदेवात् जन्म यस्य स तथाभूतः। द्वितीयहीनोऽपि = द्वितीयेन हीनः अपि, एकाकी इति यावत्। रमाविहारी = रमया सह विहरति इति तथाभूतः। अत्र विरोधाभासोऽलंकारः। अजस्य देवस्य कथं वसुदेवात् जन्म, अथ च एकाकिनो देवस्य कथं रमया सह विहरणम् इति विरोधः। लीलया केवलं भासते जन्मादिकं, न तु तात्त्विकमिति समाधिः। जनार्दनः = जनान् समुद्रस्थदैत्यभेदान् अर्दयति = विनाशयति तथाभूतः, जनानां विश्वेषां पालयिता, (यः) कोऽपि श्रियं = लक्ष्मीं सन्तनुतां = वर्धयतां स ईश ईश्वरः।

भाषार्थ— ऐसा देव जो अज होकर भी वसुदेव से जन्म वाला है। द्वितीय से हीन अर्थात् एकाकी होकर भी रमा के साथ विहार करने वाला है। जन नामक दैत्यों का विनाशक है, लोगों का पालन करने वाला है। ऐसा कोई देव मेरी श्री की वृद्धि करे।

तुलना एवं अनुशीलन— इस विरोधाभास अलंकार वाले प्रयोग की इस श्लोक से तुलना की जा सकती है—

अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ।। रघुवंश १०.२४

अर्थात् अज होकर भी मत्स्यादि अवतारों के रूप में जन्म लेने वाले, चेष्टा रहित होकर भी शत्रुओं का संहार करने वाले, जागरूक होकर भी योगनिद्रा का अनुभव करने वाले तुम्हारी यथार्थता को कौन जान सकता है।।१।।

अज्ञानविच्छेदनदात्ररूपां दात्रीं महानन्दपदस्य तस्य।
विद्याविधात्रीं भजतां जनानां विश्वस्य धात्रीं गिरमानतोऽस्मि।।२।।

नमो गुरुभ्यः करुणागुरुभ्यः श्रीभैरवायाऽखिलभैरवाय।
विनायकेभ्योऽघविनायकेभ्यो नमोऽस्तु ताभ्यः परदेवताभ्यः।।३।।

बघेलवंशस्य विकासनाय हासास्पदं यद्यपि मे प्रयासः।
अखण्डभूमण्डलमण्डनार्कसन्दीपनायाचिरदीधितेर्वा ।।४।।

अन्वयसमासादिः— अज्ञान ···=अज्ञानस्य = अनवबोधस्य विच्छेदने =कर्तने दात्ररूपां = लवित्ररूपां, तस्य महानन्दपदस्य = महतः आनन्दरूपस्य पदस्य दात्रीं, भजतां जनानां विद्याविधात्रीं = विद्यायाः सम्पादिकां, विश्वस्य धात्रीं = रचयित्रीं गिरम् = वाग्देवीम् आनतः = प्रह्वीभूतः अस्मि। अहमिति शेषः।

भाषार्थ— अज्ञान के काटने में दराती के समान उस महान् आनन्द के पद को प्रदान करने वाली, भजन करने वाले लोगों को विद्या का विधान करने वाली, विश्व की निर्मात्री वाग्देवी के प्रति मैं नतमस्तक हूँ।।२।।

अन्वयसमासादिः— करुणागुरुभ्यः = करुणया = दयया गरिमाणं धारयते गुरुभ्यः = शिक्षकेभ्यः नमः। अखिलभैरवाय = सम्पूर्णानां दुष्टानां कृते भैरवाय = भयानकाय श्री भैरवाय नम इति शेषः। अर्थभेदेन यमकालंकारः न तु पुनरुक्तिः। अघविनायकेभ्यः = पापानां निवारयितृभ्यः विनायकेभ्यः = गणेशेभ्यः। ताभ्यः परदेवताभ्यः = उत्कृष्टदेवताभ्यः च नमः अस्तु।

भाषार्थ— करुणा के द्वारा गरिमा को धारण करने वाले गुरु को तथा सम्पूर्ण दुष्टों के लिये अत्यन्त भयानक भैरव को नमस्कार। पापों का निवारण करने वाले गणेश तथा अन्य उत्कृष्ट देवताओं को भी नमस्कार होवे।।३।।

अन्वयसमासादिः— बघेलवंशस्य विकासनाय = व्याख्यानाय मे = मम प्रयासः यद्यपि हासास्पदम् = उपहासयोग्यम्। वा = यथा अखण्ड = अखण्डस्य = सम्पूर्णस्य भूमण्डलस्य मण्डनस्य = विभूषकस्य अर्कस्य = सूर्यस्य सन्दीपनाय = प्रकाशनाय, अचिरदीधितेः = क्षणावस्थायिन्याः आकालिक्याः विद्युतः कोऽपि प्रयासः उपहासयोग्यः स्यादिति शेषः।

तथापि सादगुण्यसमस्तपुण्यसंपूरितं तत्कुलमन्तरेण ।
लोकद्वये स्वं च समस्तविश्वं कथं कृतार्थं कविरातनोतु ।।५।।

युग्मम्

तया वृतः पेशलया च भव्यः कीर्त्या श्रिया भीमनरेन्द्र आसीत् ।
ये भूमिलोकं पवितुं समर्थे कलौ मलस्तोमविनाशहेतू ।।६।।

भाषार्थ— बघेलवंश का वर्णन करने के लिये मेरा कोई भी प्रयास उपहासयोग्य है। जिस प्रकार सम्पूर्ण भूमण्डल को विभूषित करने वाले सूर्य को प्रकाशित करने के लिये केवल क्षण भर दीप्ति करने वाली बिजली का कोई भी प्रयास सर्वथा उपहासयोग्य है।।४।।

तुलना— बघेलवंश की अत्यधिक महत्ता तथा अपनी अत्यधिक तुच्छता को दिखाने के लिये कवि ने इस उपमा का प्रयोग किया है। महाकवि कालिदास ने सागर को पार करने के लिये अपने काव्य को छोटी नाव बताते हुए इसी भावना को प्रकट किया है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ।।

— *मेघदूत, पूर्वमेघ १/२*

अन्वयसमासादिः— तथापि सादगुण्य - -सादगुण्येन समस्तेन पुण्येन च सम्पूरितं = समाच्छादितं तत्कुलम् = बघेलकुलम् अन्तरेण = विना, लोकद्वये = द्वयोरपि लोकयोः कविः स्वं च = स्वकीयं च, समस्तविश्वं च कथं कृतार्थं = चरितार्थम् आतनोतु = सम्पादयतु।

भाषार्थ— तो भी शुभ गुणों वाले सम्पूर्ण पुण्यों से युक्त उस बघेल कुल के बिना यह कवि दोनों लोकों में अपने तथा सम्पूर्ण विश्व को किस प्रकार कृतार्थ कर सकता है।।५।।

अन्वयसमासादिः— तया कीर्त्या = यशसा, श्रिया = लक्ष्म्या वृतः = आच्छादितः पेशलया = मृदुतया, भव्यः = दिव्यः भीम नरेन्द्रः = भीमनामा

बघेलवंश्यः परवृन्दघाती सुनीतिविख्यातगुणो वरीयान् ।
विद्याविशुद्धानन इन्द्रियाणां जैत्रस्त्रिवर्गोचितपक्षपातः ।।७।।

लेभे स पुत्रं निधिमद्भुतानां गुणप्रजानां गुणिनं महिष्याः ।
राणिङ्गदेवं रणरन्तिदेवं स्फुरद्यशोमण्डलमासमुद्रम् ।।८।।

राजा आसीत्। कथं कीर्तिः श्रीश्च इत्याह - ये कलौ = कलियुगे मलस्तोम··· मलस्तोमानाम् = अपवित्रपदार्थसमूहानां विनाशस्य हेतू = कारणे, अथ च भूमिलोकं पवितुं = पवित्रीकर्तुं समर्थे = शक्ते च स्त इति शेषः।

भाषार्थ— उस कीर्ति तथा यश से परिपूर्ण अपनी नम्रता से सुन्दर भीम नामक राजा हुए। उनकी कीर्ति तथा यश कलियुग में अपवित्र पदार्थों के विनाश का कारण तथा भूमिलोक को पवित्र करने में सक्षम है।।६।।

अन्वयसमासादिः— बघेलवंश्यः = बघेल वंशे भवः, परवृन्दघाती = परेषाम् अन्येषां शत्रूणां वृन्दस्य = समूहस्य निहन्ता, सुनीति... सुनीतिभिः विख्याताः = प्रसिद्धाः गुणाः यस्य सः तथाभूतः, वरीयान् = वरयोर्मध्ये अतिशयेन वरः। विद्या... विद्यया विशुद्धं = पवित्रम् आननं = मुखं यस्य सः, इन्द्रियाणां जैत्रः = जेता, त्रिवर्गो.. त्रिवर्गेषु = ब्राह्मणविट्क्षत्रियेषु मध्ये उचितः पक्षपातः (क्रियते) येन स तथाभूतः भीमनरेन्द्र आसीत्।

भाषार्थ— वह भीम नरेन्द्र बघेल वंश में उत्पन्न, शत्रुसमूह का संहार करने वाला, अपनी सुन्दर नीति से प्रसिद्ध गुण वाला, अन्य से श्रेष्ठ, विद्या से पवित्र मुख वाला, उचित पक्षपात रखने वाला था।।७।।

अन्वयसमासादिः— सः = भीमनरेन्द्रः महिष्याः = ज्येष्ठराज्ञ्याः अद्भुतानाम् = आश्चर्यकराणां वृत्तान्तानां निधिं, गुणप्रजानां मध्ये गुणिनं = गुणवन्तं, रण... रणे रन्तिदेव इव तं तथाभूतम्, आसमुद्रं = समुद्रपर्यन्तं स्फुरत् = व्याप्नुवत् यशोमण्डलं यस्य तं तथाभूतं राणिंगदेवं = राणिंगदेवनामानं पुत्रं लेभे = प्राप।

भाषार्थ— उस भीम राजा ने बड़ी रानी से आश्चर्यकारी वृत्तान्तों के निधि, गुणी प्रजाओं के बीज गुणशाली, रण में रन्तिदेव के समान, समुद्रपर्यन्त पहुंचे हुए यशोमण्डल वाले राणिंगदेव नामक पुत्र को प्राप्त किया।।८।।

उत्कण्ठितः पुत्रभवाय राजा पूर्वं स लब्ध्वौरसमाननन्द ।
दत्वा च तस्मै निजराजलक्ष्मीं दिवं प्रपेदे सुकृतैकवीरः ।।९।।

राणिङ्गदेवः पृथुराजबुद्धिर्जितां कृपाणस्य बलेन पृथ्वीम् ।
शशास नानानृपगेहभूषां लब्ध्वा गहोरां तपनप्रतापः ।।१०।।

प्रगेप्रबोधी पुरुषोत्तमाङ्घ्रिश्चिन्तापरो राज्यहितप्रवृत्तिः ।

अन्वयसमासादिः— स राजा पूर्वं पुत्रभवाय = पुत्रस्य जन्मने उत्कण्ठितः = लालसापूर्णः, औरसम् = आत्मनीनं पुत्रं लब्ध्वा = प्राप्य आननन्द = प्रमुमुदे। स सुकृतैकवीरः = सुकृतेन एकः वीरः तस्मै निजं राजलक्ष्मीं = निजं = स्वकीयां राजसम्पत्तिं दत्त्वा दिवं = द्युलोकं प्रपेदे = प्राप।

भाषार्थ— वह पुत्रजन्म के लिये उत्कण्ठित राजा अपने पुत्र को प्राप्त करके प्रसन्न हुआ। वह अपने अच्छे कृत्यों से अकेला वीर उस (पुत्र) के लिये अपनी निज राजलक्ष्मी को प्रदान करके स्वर्गत हुआ।।९।।

अन्वयसमासादिः— पृथुराजबुद्धिः = पृथुराज इव बुद्धिः यस्य स तथाभूतः, तपनप्रतापः = तपनः = सूर्य इव प्रतापः यस्य स तथाभूतः। राणिंगदेवः नाना... विविधानां नृपाणां= राज्ञां गेहैः = गृहैः भूषितां गहोरां लब्ध्वा = प्राप्य कृपाणस्य = करवालस्य बलेन जितां = विजितां पृथ्वीं शशास।

भाषार्थ— पृथु राजा के सदृश बुद्धि वाले, सूर्य के समान प्रताप वाले उस राणिंगदेव ने अनेक राजाओं के घरों से सुभूषित गहोरा को प्राप्त करके तलवार के बल से जीती गई पृथ्वी पर शासन किया।।१०।।

परिशीलन— महाकवि पद्मनाभ मिश्र ने गहोरा का वर्णन इस प्रकार किया है—

अस्ति प्रशस्तिभिरलंकृतदिग्विभागा ।
राजानुरक्तमनुजा नगरी गहोरा ।

—*वीरभद्रदेवचम्पू ।।१.१३।।*

अन्वयसमासादिः— प्रगेप्रबोधी = प्रगे प्रातःकाले प्रबुध्यति इति तथाभूतः। प्रगे इत्यव्ययम्। पुरुषोत्तमस्य = पुरुषेषु उत्तमस्य श्रीकृष्णस्य

तथाऽऽचरत्सन्नृपवृत्तदर्शी यथा न दुःखी भुवि कोऽपि जातः ११

षड्वर्गविद्वेषिजयी न सह्यो द्विषां स मुक्तो व्यसनैर्दुरन्तेः।
वनीयपकव्रातबहुप्रदाता बभूव .बाणासुरवैरिवर्यः ।।१२।।

अंध्रिरिव अंध्रिर्यस्य स तथाभूतः। मध्यमपदलोपी समासः। चिन्तापरः = चिन्तया तत्परः, राज्य = राज्यस्य हिते प्रवृत्तिः = चेष्टा यस्य सः। तथाऽऽचरत् = तथा आचरतां सन्नृपानां वृत्तं = समाचारं पश्यति इति तथाभूतः यथा भुवि पृथिव्यां न कोऽपि दुःखी जातः।

भाषार्थ— वह प्रातःकाल उठने वाला, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के समान चरणों वाला, राज्य की चिन्ता में तत्पर, राज्य के हितकार्य में चेष्टा वाला, व्यवहार में लाने वाले अच्छे राजाओं के कार्यों को इस प्रकार ध्यान रखता था जिससे धरती में कोई दुखी नहीं रहा।।११।।

अन्वयसमासादिः— षडवर्ग... षड्वर्गं = षड्रिपुं = कामादिकम्। कामः क्रोधस्तथा लोभो मदमोहौ च मत्सरः इत्यभियुक्तोक्तिः। विद्वेषिणं जयति इति तथाभूतः। न सह्यः = न सोढुं शक्यः, द्विषां = शत्रूणां दुरन्तैः = भीषणैः व्यसनैः मुक्तः = विरहितः, वनीयक... वनीयकानां = भिक्षूणां व्राताय = समूहाय बहु प्रदाता, बाणासुरस्य = तन्नाम्नो राक्षसस्य वैरी श्रीकृष्ण इव वर्यः = श्रेष्ठः बभूव।

भाषार्थ— काम, क्रोध आदि ६ द्वेष करने वाले शत्रुओं को जीतने वाला (प्रताप में) असहनीय, शत्रुओं के भीषण व्यसनों से मुक्त, भिक्षुकों के समूह को खूब दान करने वाला, वह बाणासुर के वैरी श्रीकृष्ण के समान श्रेष्ठ हुआ।।१२।।

अन्वयसमासादिः— एष राजा वर्णाश्रमाणां... वर्णानाम् आश्रमाणां च गुरुः, वर्णान् आश्रमान् च धर्मे स्थापयति स्म। स्वे स्वे वर्णे आश्रमे च चतुर्वर्ग... = चतुर्णां वर्माणां पुरुषार्थानां धर्मार्थकाममोक्षरूपाणां फलस्य आप्तिहेतौ = प्राप्तये स्वधर्म... = स्वकीयस्य धर्मस्य रक्षायाम् आहिता चित्तवृत्तिः यस्य स तथाभूतः आसीत्।

वर्णाश्रमाणां गुरुरेष राजा वर्णाश्रमान् स्थापयति स्म धर्मे ।
स्वे स्वे चतुर्वर्गफलाप्तिहेतौ स्वधर्मरक्षाऽऽहितचित्तवृत्तिः ।।१३।।

सोऽभूनृपाणामपि, मञ्जुवाणिर्महामहान् मुक्तरजा विमन्युः ।
राजा यथा धर्मसतो गुणौघैर्विराजमानो वसुधाधिपानाम् ।।१४।।

तदात्मजो वालनदेव आसीत् समस्तराजन्यजयी यशस्वी ।
अलंचकाराहितलक्षणो यः कुलं बघेलान्वयशीतरश्मिः ।।१५।।

भाषार्थ— यह राजा सभी वर्णों तथा आश्रमों का गुरु था, यह सभी वर्णों तथा आश्रमों को अपने अपने धर्म में बनाए रखता था, यह चारों वर्ग या पुरुषार्थ के फल की प्राप्ति के लिये अपने धर्म की रक्षा में अपनी चित्तवृत्ति को लगाए रखता था।।१३।।

अन्वयसमासादिः— सः राजा नृपाणां = राज्ञाम् अपि मध्ये मञ्जुवाणिः = कोमला वाणी यस्य स तथाभूतः, विमन्युः = वीतक्रोधः, महत्सु महान्, मुक्तः रजः = मालिन्यं यस्मात् स तथाभूतः, वसुधाधिपानां = पृथिवीराज्ञां मध्ये यथा धर्मसतः = श्रेष्ठधर्मस्य गुणौघैः = गुणसमूहैः विराजमानः (युधिष्ठिरः) तथा स राजा आसीत्।

भाषार्थ— वह राजा अनेक राजाओं के मध्य कोमल वाणी वाला, अत्यन्त महान्, क्रोध से अलग तथा मालिन्य से मुक्त था। जैसे धरती के राजाओं के मध्य अपने श्रेष्ठ धर्म के अनेक गुणों के साथ विराजने वाले (राजा युधिष्ठिर) थे, उसी प्रकार यह राजा था।।१४।।

अन्वयसमासादिः— तदात्मजः = तस्य पुत्रः, समस्त...= सम्पूर्णान् राजसमूहान् जयति इति तथाभूतः यशस्वी वालनदेवः आसीत्। यः आहितः आहितं = धारितं (राज) लक्षणं येन सः, बघेलान्वये = बघेलस्य वंशे शीतरश्मिः = चन्द्र इव कुलं = बघेलकुलम् अलंचकार = शोभयांचकार।

भाषार्थ— उसका पुत्र सभी राजाओं को जीतने वाला यशस्वी वालनदेव था, जिसने राजाओं के लक्षणों से युक्त होकर बघेल वंश में चन्द्र के समान इस कुल को शोभित किया।।१५।।

राणिङ्गदेवः कमलाप्रियस्य भक्तस्तमापद्विरहय्य देवम् ।
दत्वाखिलं वालनदेवनाम्ने राज्यं सुताय प्रतिभायुताय ।।१६।।

नलो यथाऽपालयदर्घ्यभावो भुवं समुद्रावरणां वरेण्यः ।
तथैव तां वालनदेव एताम् परप्रमाथी स्वकुलप्रदीपः ।।१७।।

राणिङ्गदेवेन रसा यथाऽभाद्धितैषिणा साधुजनार्णवस्य ।
तथा किमेनं प्रतिपद्य नाभाद् गुणाधिकं राज्यविधानधीरम् ।।१८।।

अन्वयसमासादिः— कमलाप्रियस्य = विष्णोः भक्तः राणिंगदेवः वालनदेवनाम्ने प्रतिभायुताय = बुद्धिमते, सुताय = पुत्राय अखिलं = सम्पूर्णं राज्यं दत्वा = समर्प्य, (राज्यं) विरहय्य = त्यक्त्वा देवं = स्वर्लोकम् आपत् = प्राप्तवान्।

भाषार्थ— विष्णु के भक्त राणिंगदेव ने वालनदेव नाम वाले प्रतिभाशाली पुत्र को सम्पूर्ण राज्य सौंप कर, अपने इस राज्य को छोड़कर स्वर्ग लोक को प्राप्त किया।।१६।।

अन्वयसमासादिः— यथा अर्घ्यभावः = अर्घ्यस्य सम्मान्यस्य भावः यस्य तथाभूतः, वरेण्यः = श्रेष्ठः नलः समुद्रावरणां = समुद्रपर्यन्तां भुवं = पृथिवीं अपालयत् तथैव, परेषां = शत्रूणां प्रमाथी = विनाशकः, स्वकुल ...= स्वकुलस्य बघेलकुलस्य प्रदीप इव वर्तमानः वालनदेवः ताम् एतां = पृथिवीं (अपालयत्)।

भाषार्थ— जिस प्रकार सम्मान का भाव रखने वाले श्रेष्ठ नल ने समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का पालन किया। उसी प्रकार शत्रुओं को मथ देने वाले, बघेलवंश के प्रदीप के समान रहने वाले वालनदेव ने भी इस पृथ्वी का पालन किया।।१७।।

अन्वयसमासादिः— यथा साधुजनार्णवस्य = साधुजनानां सत्पुरुषाणां अर्णवस्य = समुद्ररूपस्य महासमूहस्य हितैषिणा = हितेच्छुकेन राणिंगदेवेन (करणे तृतीया) रसा = पृथिवी यथा अभात् = अदीप्यत तथा एनं वालनदेवं प्रतिपद्य = प्राप्य किं न अभात्।

एवं नृपे शासति दीर्घसत्वे पृथ्वीमभूवन् बहुहायनानि ।
पुत्रश्च संसारसमुद्रपोतो बल्लारदेवो बलिदानशौण्डः ।।१९।।

श्रीवालनस्तं पुरि मञ्जुलायां कृत्वाऽभिषिक्तं स्वपदस्य हेतोः ।
स्फुटं गहोराभिहितौ जगाम श्रीविष्णुलोकं परमप्रतिष्ठम् ।।२०।।

तस्यां गहोराह्वयराजधान्यां बल्लारदेवो नृपतिश्चिराय ।
स्थित्वा बघेलान्वयकल्पवृक्षः शशास भूमिं सुरराजभूतिः ।।२१।।

भाषार्थ— जिस प्रकार सत्पुरुषों के महासमूह के हितैषी राणिंगदेव के द्वारा यह पृथिवी प्रदीप्त हुई, उसी प्रकार इस वालनदेव को प्राप्त करके क्या नहीं हुई।।१८।।

अन्वयसमासादिः— एवं दीर्घसत्वे = महाबले नृपे = राजनि पृथ्वीं = भुवं शासति बहुहायनानि = बहूनि वर्षाणि अभूवन्। संसार...= विश्वरूपि समुद्रे पोतः = वहित्रसदृशः, बलि...= बलिरिव दाने दक्षः बल्लारदेवः तन्नामा पुत्रश्च अभूत्।

भाषार्थ— इस प्रकार इस महाबलशाली राजा के धरती का शासन करते हुए बहुत वर्ष बीत गये। साथ ही संसार रूपी समुद्र में पोत या जहाज के सदृश, बलि के समान दान में दक्ष वल्लारदेव नामक पुत्र भी हुआ।।१९।।

अन्वयसमासादिः— श्री वालनः = वालनदेवः तं पुत्रं वल्लारदेवं गहोराभिहितौ = गहोरा इत्यभिधानायां मंजुलायां = मनोहरायां पुरि = नगर्यां स्वपदस्य हेतोः = राजपदार्थम् अभिषिक्तं कृत्वा परमप्रतिष्ठं = अत्यादरणीयं श्री विष्णुलोकं स्फुटं जगाम।

भाषार्थ— श्री वालनदेव अपने पुत्र वल्लारदेव को गहोरा नाम वाली सुन्दर नगरी में अपने ही राज पद के रूप में अभिषिक्त करके अत्यन्त आदरणीय विष्णुलोक को प्रस्थित हुए।।२०।।

अन्वयसमासादिः— बघेला... = बघेलस्य वंशाय कल्पवृक्ष इव सुरराज...= सुरराजः इन्द्र इव कल्याणं यत्र तथाभूतः नृपतिः = राजा वल्लारदेवः तस्यां गहोरा = गहोरानामधेयायां राजधान्यां स्थित्वा चिराय भूमिं शशास।

स वालनोद्भूततनुर्महौजाः संवर्धयामास दिने दिने च ।
साम्राज्यलक्ष्मीं मघवेव मानी भूमीश संसेवितपादपद्मः ।। २२ ।।

अकारि तेन प्रगुणेन भूमिर्निष्कण्टका भूपपुरस्सरेण ।
कीर्तिस्तता मन्त्रविदा विशुद्धा लोकत्रये जह्नुसुतेव शुभ्रा ।। २३ ।।

भाषार्थ— बघेल वंश के लिये कल्पवृक्ष के समान, सुरराज इन्द्र के समान कल्याण वाले उस राजा वल्लारदेव ने गहोरा नामक राजधानी में रहकर बहुत समय तक धरती का शासन किया।। २१ ।।

अन्वयसमासादिः— सः बालनो... बालनात् उद्भूतं तनुः यस्य तथाभूतः, महत् ओजः = बलं यस्य तथोक्तः मानी = सम्मानयुक्तः, भूमीशः = भूमीशैः = भूपतिभिः संसेवितं पादपद्मं = चरणकमलं यस्य सः मघवा = इन्द्र इव दिने दिने-प्रतिदिनं साम्राज्य... = साम्राज्यस्य सम्पत्तिं संवर्धयामास = विस्तारयामास।

भाषार्थ— उस बालनदेव से उत्पन्न शरीर वाले, महान् बल वाले, सम्मानित, राजाओं के द्वारा संसेवित चरण कमल वाले राजा बल्लारदेव ने इन्द्र के समान प्रतिदिन साम्राज्य की सम्पत्ति का विस्तार किया।। २२ ।।

अन्वयसमासादिः— तेन प्रगुणेन = प्रकृष्टगुणवता भूरपुरस्सरेण = अनेकनृपतिसाधनकेन भूमिः निष्कण्टका = बाधाविरहिता अकारि = अक्रियत। कर्मणि लुङ्। मन्त्रविदा = मन्त्रं वेत्ति जानाति तथाभूतेन विशुद्धा शुभ्रा कीर्तिः, लोकत्रये = त्रिष्वपि लोकेषु जह्नुसुतेव = गंगेव तता = व्याप्ता। तन् धातोः निष्ठायां क्तः।

भाषार्थ— उस प्रकृष्ट गुणशाली राजा ने अनेक सहायक राजाओं के द्वारा धरती को निष्कण्टक बना दिया। उस मन्त्र जानने वाले के द्वारा उसका विशुद्ध शुभ्र यश तीनों लोकों में गंगा के समान फैल गया।। २३ ।।

अन्वयसमासादिः— श्रीमच्च...= श्रीमतः चन्देला नामधारिणः अन्वयस्य = वंशस्य मण्डनं = भूषणं यः कारीपतिः = शिल्पिनामध्यक्षः श्रीयसराजदेवः (आसीत्)। तस्मात् जनिं = जन्म प्राप्य लब्ध्वा तन्वी रराज यथा पर्वतेन्द्रात् = हिमालयात् दक्षकन्या रराज।

श्रीमच्चन्देलान्वयमण्डनं यः कारीपतिः श्रीयसराजदेवः ।
तस्माज्जनिं प्राप्य रराज तन्वी या पर्वतेन्द्रादिव दक्षकन्या ।। २४।।

स्वगेहतः पूर्वदिशाविभागे यद्वापिका राजति पूर्णतोया ।
सोपानमार्गाऽऽहितदिव्यशोभा लोकार्तिहन्त्री मणिकर्णिकेव ।। २५।।

साऽस्य प्रिया राजलमल्लदेवी पत्नी तयाऽखानि तडागसिन्धुः ।
स्वकीयगेहाद्दिशि मारुतस्य तदाख्यया यः प्रथितः पृथिव्याम् ।। २६।।

भाषार्थ— श्रीमान् चन्देला वंश के अलंकार शिल्पियों में श्रेष्ठ श्रीयसराजदेव थे। उनसे जन्म प्राप्त करके उनकी पुत्री वैसे ही विराजित हुईं जैसे हिमालय से दक्षकन्या विराजती थीं।। २४।।

अन्वयसमासादिः— स्वगेहतः = स्वस्य गृहात् पूर्व...= पूर्वस्यां दिशि यद्वांपिका पूर्णतोया = परिपूर्णजला विराजति, सा सोपान...= सोपानमार्गेण आहिता दिव्या शोभा यस्यां सा तथाभूता, मणिकर्णिका इव = पवित्रकुण्ड-विशेष इव लोकार्ति...= लोकानाम् आर्तेः = कष्टस्य हन्त्री = विनाशिनी आसीत्।

भाषार्थ— उसके घर से पूर्व दिशा में भरे हुए जल से युक्त वापिका अर्थात् छोटा तालाब या बावली विराजती थी। वह सीढ़ियों के मार्ग के द्वारा दिव्य शोभा रखती थी तथा मणिकर्णिका नामक पवित्र कुण्ड के समान लोगों के कष्टों का निवारण करने वाली थी।। २५।।

अन्वयसमासादिः— सा राजलमल्लदेवी अस्य प्रिया पत्नी आसीत्। तया स्वकीयंगेहात् मारुतस्य = वायव्यस्य दिशि तडागसिन्धुः = तडागः सिन्धुरिव अखानि-अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र धातुः। यः - तडागः तदाख्यया तस्याः आख्यया = नाम्ना पृथिव्यां प्रथितः = प्रसिद्धो बभूव।

भाषार्थ— वह राजलमल्ल देवी इस बल्लारदेव की प्रिय पत्नी हुईं। इसने अपने घर से पश्चिमोत्तर दिशा में सिन्धु या समुद्र के समान तालाब खुदवाया। यह तालाब इसके ही नाम से धरती में प्रसिद्ध हुआ।। २६।।

यः श्रीमता तत्कुलभूषणेन श्रीवीरभानुक्षितिपेन नूनम् ।
अतीव निम्नो विहितो गभीरः सर्वज्ञचूडामणिना मनोज्ञः ।।२७।।

तथा विराजन्ति सुसंस्कृतायां महीरुहा यस्य सुदीर्घशाखाः ।
तापप्रपञ्चप्रविदारणाद्यैः पुत्रैः समाः कर्मभिरच्छरूपैः ।२८।

युग्मम्

तटे तरङ्गानिलसेव्यदेशे यस्यास्ति देवी कलिकामधेनुः ।
सा शीतलाख्याऽऽनतिकर्मसाध्या क्लेशापहाऽऽराधनतत्पराणाम्
।।२९।।

अन्वयसमासादिः— यः तडागः तत्कुल... = बघेलकुलस्य भूषणेन = अलंकारेण, सर्वज्ञचूडामणिना = सर्वज्ञेषु श्रेष्ठेन श्री वीरभानुक्षितिपेन तन्नाम्ना राज्ञा अतीव निम्नः, गभीरः मनोज्ञः = सुन्दरः विहितः।

भाषार्थ— वह तालाब बघेल कुल के अलंकार, सर्वज्ञों में सर्वोच्च श्री वीरभानु राजा के द्वारा अत्यन्त गहरा तथा सुन्दर बनवाया गया।।२७।।

अन्वयसमासादिः— यस्य सुसंस्कृतायां - भुवि सुदीर्घ... = सुदीर्घाः शाखा येषां तथाभूता महीरुहाः = वृक्षाः विराजन्ति। ते अच्छरूपैः = स्वच्छैः कर्मभिः तापप्रपञ्चविदारणाद्यैः पुत्रै समाः।

भाषार्थ— जिस सुसंस्कृत धरती में लम्बी शाखाओं वाले वृक्ष विराजते हैं। वे अपने सुन्दर कार्यों के द्वारा कष्ट प्रदान तथा काटने आदि कार्यों से पुत्रों के समान थे। अर्थात् जैसे पुत्र को कोई कष्ट नहीं दिया जा सकता, उसी प्रकार उन्हें भी कष्ट नहीं दिया जा सकता था।।२८।।

अन्वयसमासादिः— यस्य तडागस्य तटे तरंगा... = तरंगाणाम् अनिलेन = वायुना सेव्ये देशे शीतलाख्या शीतला नाम्नी कलिकामधेनुः - कलौ कामधेनुरिव देवी अस्ति। सा आनतिकर्मणा = भक्तिभावेन साध्या - प्रसाद्या। आराधने पूजायां तत्पराणां क्लेशापहा = दुःखानां विनाशिनी चास्ति।

या देहभाजां भवतापहन्त्री क्षणस्मृतेर्भाति विराजितास्या ।
या नः कुलस्येष्टकरी कृपालुः पद्मायताक्षी खरयुग्यलोला ।। ३० ।।

युग्मम्

बल्लारदेवेन तनूभवोऽस्यां सिंहोऽसुरारेः कृपया स लब्धः ।
जयन्ततुल्यो निजविक्रमेण प्रभाजितादित्यरुचिर्य आसीत् ।। ३१ ।।

भाषार्थ— उस तालाब के तट में तरंगों की वायु से सेवित प्रदेश में कलियुग में कामधेनु के समान शीतला नामक देवी है। वह भक्तिभाव से प्रसन्न की जाने योग्य है तथा पूजा में तत्पर लोगों के लिये दुःखों का विनाश करने वाली है।। २९ ।।

अन्वयसमासादिः— या देवी देहभाजां = शरीरधारिणां भवतापहन्त्री = संसारकष्टस्य उच्छेदिका, क्षणस्मृतेः विराजिता...= विराजितम् आस्यं यया तथाभूता भाति = शोभते। या नः अस्माकं कुलस्य इष्टकरी = अभीष्टसम्पादिका, कृपालुः पद्मायताक्षी = पद्मम् इव आयते अक्षिणी यस्याः सा तथाभूता, खरयुग्यलोला = प्रखरं = तीव्रं यत् युग्यं = वाहनं तदिव लोला = चंचला चास्ति।

भाषार्थ— जो देवी शरीरधारी लोगों के संसार के कष्टों का विनाश करने वाली हैं, जरा सी स्मृति मे मुख में आ जाने वाली हैं। जो हमारे कुल का अभीष्ट करने वाली हैं, कृपालु, कमल के समान सुदीर्घ आँखों वाली तथा तीव्र वाहन के समान चंचल हैं।। ३० ।।

अन्वयसमासादिः— अस्यां राजलमल्लदेव्यां वल्लारदेवेन तन्नाम्ना राज्ञा असुरारेः कृपया लब्धः निजविक्रमेण = स्वकीयपराक्रमेण जयन्ततुल्यः जयन्तेन सदृशः प्रभाजित् = प्रभां जयति इति तथाभूतः, आदित्यरुचिः = आदित्यस्य = सूर्यस्य रुचिः कान्तिरिव कान्तिर्यस्य स तथोक्तः सिंहः = सिंहदेवनामा तनूभवः = पुत्र आसीत्।

भाषार्थ— इस राजलमल्लदेवी में वल्लारदेव नामक राजा से असुरों के शत्रु की कृपा से प्राप्त, अपने पराक्रम से जयन्त सदृश, सामान्य प्रभा को जीतने वाला, सूर्य के समान कान्ति वाला सिंहदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।। ३१ ।।

बघेलवंशाब्धिविवृद्धिहेतुः प्रियाकृतिः प्रेमनिधिः प्रजानाम् ।
नृपोक्तनीतिप्रवणः प्रवीणः स्वकार्यजातेषु मनोहरश्रीः ।३२।

जातिस्मरोऽसौ किल मर्त्यलोके तिष्ठंश्चिरं कश्चिदनल्पपुण्यः ।
प्रापत्सुतं वीरमदेवमार्यं बुधं किरीटिप्रतिमं रणेषु ।।३३।।

अन्वयसमासादिः— बघेल...= बघेलस्य वंशः यः अब्धिरिव = समुद्र इव तस्य विवृद्धौ कारणं, प्रियाकृतिः प्रिया = मनोहरा आकृतिर्यस्य स तथोक्तः, प्रजानां प्रेमनिधिः = प्रेम्णो निधिः, नृपोक्त...= नृपेभ्यः उक्ता या नीतिः तत्र प्रवणः = संसक्तः, स्वकार्यजातेषु प्रवीणः = कुशलः, मनोहरश्रीः = मनोहरा श्रीः शोभा यस्य स तथोक्तः (पुत्रः सिंहदेवः आसीत्)।

भाषार्थ— वह सिंहदेव नामक पुत्र समुद्र के समान बघेल वंश की वृद्धि में कारण, मनोहर आकृति वाला, प्रजाओं के प्रेम का स्थान, राजाओं के लिये कही गयी राजनीति में संसक्त, अपने कार्यों में कुशल तथा सुन्दर शोभा वाला था।।३२।।

अन्वयसमासादिः— कश्चित् असौ जातिस्मरः = (पूर्व) जन्मनः स्मर्ता, अनल्पपुण्यः = अत्यधिकं पुण्यं यस्य तथोक्तः, मर्त्यलोके = भूलोके चिरं तिष्ठन् रणेषु = संग्रामेषु, किरीटिप्रतिमं = अर्जुनसदृशं, बुधम् आर्यं = श्रेष्ठं वीरमदेवं = तन्नामानं सुतं = पुत्रं प्रापत् = प्राप्तवान्। आप्लृ धातोः लुङि रूपम्।

भाषार्थ— पूर्व जन्म का स्मरण करने वाले, अत्यधिक पुण्यशाली, उस सिंहदेव ने भूलोक में बहुत समय तक रहते हुए संग्राम में अर्जुन सदृश, बुद्धिमान्, श्रेष्ठ वीरमदेव नामक पुत्र को प्राप्त किया।।३३।।

अन्वयसमासादिः— स धीरः = धैर्यशाली, परमात्मदर्शी = ईश्वरं पश्यति इति तथाभूतः श्री सिंहदेवः किंचित् (पूर्वजन्म) स्मृत्वा यमस्वसुः = यमुनायाः वारिभिः = जलैः आप्तसंगे = संगते जह्नु...= गंगायाः जल-समूहे तनुं = शरीरं जहौ = तत्याज। ओहाक् धांतोः लिटि रूपम्।

स्मृत्वा स किंचित् खलु जातु धीरः श्रीसिंहदेवः परमात्मदर्शी।
जहौ तनुं जह्नुसुताजलौघे यमस्वसुर्वारिभिराप्तसंगे ।।३४।।

बल्लारदेवस्तनये विनीते मृते शुचं ज्ञानबलान्निगृह्य।
पौत्रं पुपोष प्रखरप्रतापः परीक्षितं पार्थ इव स्थितिज्ञः ।।३५।।

भाषार्थ— उस धीर, ईश्वर का दर्शन करने वाले श्री सिंहदेव ने (अपने पूर्वजन्म का) कुछ स्मरण करते हुए यमुना के जल के गंगाजल के साथ संगम पर अपने शरीर को त्याग दिया।।३४।।

अन्वयसमासादिः— विनीते = नम्रे तनये = पुत्रे मृते सति बल्लारदेवः शुचं = शोकं ज्ञानस्य बलात् निगृह्य = संवृत्य, स प्रखरप्रतापः = तीव्रतेजस्वी, स्थितिज्ञः = स्थितिं जानाति इति तथाभूतः परीक्षितं पार्थ इव पौत्रं पुपोष = पालयामास।

भाषार्थ— नम्र पुत्र (सिंहदेव) की मृत्यु हो जाने पर अत्यन्त तेजस्वी, स्थिति को पहचानने वाले बल्लारदेव ने अपने शोक को ज्ञान के बल से रोक कर अपने पौत्र (वीरमदेव) का वैसे ही पालन-पोषण किया जैसे अर्जुन ने परीक्षित् का किया था।

अनुशीलन— परीक्षित् उत्तरा नामक माता से उत्पन्न, अभिमन्यु के पुत्र थे तथा अर्जुन के पौत्र थे। महाभारत युद्ध में अभिमन्यु की असामायिक दुखद मृत्यु हो जाने पर अर्जुन ने ही परीक्षित् का भली प्रकार पालन पोषण किया था। प्रस्तुत श्लोक में इसी घटना की ओर संकेत है।।३५।।

अन्वयसमासादिः— ततः परकोटियायी = परां कोटिं याति = प्राप्नोति इति तथाभूतः, निजौजसा= स्वकीयेन बलेन निर्वृत..... = निर्वृतः= प्रसादितः जन्मिनां = प्राणिनां संघः = समूहः येन सः तथोक्तः निर्जरः = निर्ज़राणां = यूनां वीराणां मध्ये गण्यः = गणनीयः नप्ता = पौत्रः यथा सूर्यः = सूर्य इव अस्य पितामहस्य मुदं = प्रसन्नतां वितेनें = संवर्धयामास। तन धातोर्लिटि रूपम्।

नप्ता ततः सन् परकोटियायी निजौजसा निर्वृतजन्मिसङ्घः।
पितामहस्यास्य मुदं वितेने सूर्यो यथा निर्जरवीरगण्यः ।३६।

निर्विश्य सर्वान् विषयान् विलोक्य कुलस्थितिं तेन च पुत्रजेन ।
मुमोच देहं नृपतिश्च लेभे परं पदं श्रीपतिराजितं तत् ।।३७।।

अथो विशुद्धे दिवसे विशोको महाशयो वीरमदेव एषः ।
राज्याभिषेकं विधिना स्वकीयं व्यधापयन्नन्दति च स्म कामम् ।।३८।।

भाषार्थ— उसके पश्चात् उत्कृष्ट कोटि को प्राप्त करने वाले, अपने बल से प्राणियों के समूह को प्रसन्न करने वाले, युवा वीरों के मध्य गणना के योग्य इस पौत्र वीरमदेव ने सूर्य के समान अपने दादा (बल्लारदेव) की प्रसन्नता को बढ़ाया।।३६।।

अन्वयसमासादिः— सर्वान् विषयान् निर्विश्य = अवस्थाप्य तेन पुत्रजेन = पौत्रेण कुलस्य स्थितिं विलोक्य = दृष्ट्वा स नृपतिः राजा (बल्लारदेवः) देहं = शरीरं मुमोच = तत्याज, श्रीपतिराजितं = श्रियः पत्या - विष्णुना राजितं = शोभितं परं पदं लेभे = प्राप।

भाषार्थ— सभी विषयों को भली प्रकार अवस्थित करके तथा अपने पौत्र (वीरमदेव) के द्वारा कुल की स्थिति को देख कर उस राजा (बल्लारदेव) ने शरीर का त्याग किया तथा विष्णु द्वारा सुशोभित परम पद को प्राप्त किया।।३७।।

अन्वयसमासादिः— अथो विशुद्धे दिवसे - पवित्रे दिने विशोकः = विगतदुःखः वीरमदेव एष महाशयः स्वकीयं = निजं राज्याभिषेकं विधिना व्यधापयत् = समपादयत्, कामं च नन्दति स्म।

भाषार्थ— अब किसी पवित्र दिन में शोक से मुक्त होकर इस महाशय वीरमदेव ने विधि विधानपूर्वक अपना राज्याभिषेक कराया तथा परम प्रसन्न हुआ।।३८।।

न शेरते तेन धनुर्भृता स्म म्लेच्छाधिनाथाः सुखमश्वदृप्ताः ।
वीर्येण शौर्येण रिपून् पतन्तः सिंहेन मातङ्गमृगा इवर्द्धाः ।। ३९।।

नृपः स वस्तुप्रकरस्य योग्यैरवेक्षणं कारयति स्म भृत्यैः ।
यथा स भूमौ विधृतो न रूपं मेघः शिलाभाजि निजं मुमोच ।४०।।

य एष एतत्सततं समृद्धो व्यचारयज्जीवितकालमेत्य ।
ग्राह्या परेषां वसुधा यशस्या किमायुषो व्यर्थसमापनेन ।।४१।।

अन्वयसमासादिः— धनुर्भृता = धनुर्धारिणा तेन - वीरमदेवेन समं म्लेच्छाधिनाथाः - यवनाः अश्वदृप्ताः = अश्वैः दृप्ताः क्रुद्धाः न सुखं शेरते स्म। वीर्येण, शौर्येण च रिपून् = शत्रून् पतन्तः (सैनिकाः) सिंहेन मातंगमगा = हस्त्यादिश्वापदा इव ऋद्धाः = बलवन्तः (तिष्ठन्ति स्म)।

भाषार्थ— उस धनुर्धारी वीरमदेव के रहते हुए घोड़ों के साथ क्रुद्ध हुए म्लेच्छ राजा सुख से नहीं बैठ पाते थे। अपने बल तथा पराक्रम से शत्रुओं पर गिरते हुए (वीरमदेव के सैनिक) उन पर वैसे ही भारी पड़ते थे जैसे सिंह के द्वारा हाथी आदि जानवर आक्रान्त कर लिये जाते हैं।।३९।।

अन्वयसमासादिः— स नृपः = राजा, वस्तुप्रकरस्य = वस्तुसमूहस्य योग्यैः भृत्यैः अवेक्षणं = निरीक्षणं कारयति स्म। यथा शिलाभाजि = प्रस्तराख्ये खण्डे विधृते = पतितः मेघः (रूपं न मुमोच) तथा स निजं रूपं न मुमोच = न तत्याज।

भाषार्थ— वह राजा (वीरमदेव) सभी वस्तुओं का योग्य अधिकारियों से निरीक्षण कराता था। जिस प्रकार पत्थर पर गिरा हुआ मेघ का जल अपना रूप नहीं छोड़ता अर्थात् बना ही रहता है, उसी प्रकार वह राजा किसी भी परिस्थिति में अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता था।।४०।।

अन्वयसमासादिः— एष राजा सततं = निरन्तरं समृद्धः व्यचारयत्-जीवितकालम्-जीवनकालम् एत्य = प्राप्य परेषाम् = अन्येषां यशस्या = यशःपूर्णा वसुधा = धरित्री ग्राह्या, आयुषः व्यर्थसमापनेन = निरर्थकं व्यत्ययनेन किम्।

स भूमिदानातिरुचिः स्थिरश्रीर्भूमिं ददौ ब्राह्मणकुञ्जरेभ्यः ।
यां प्राप्य ते जातु न याचकाः स्युर्द्रव्यर्द्धयः पूर्णमनोऽभिलाषाः ।४२।।

आयानुरूपं व्ययमेष कुर्वन् विदग्धभावं भजते स्म जिष्णुः ।
अर्थौघपूर्णः क्षणजय्यशत्रुरभूच्च लक्ष्म्या सुलभं न किं किम् ।४३।

भाषार्थ— इस राजा ने निरन्तर समृद्ध होकर यह विचार किया कि जीवन काल को प्राप्त करके अन्यों की यशस्विनी धरती को प्राप्त करना चाहिये। आयु को व्यर्थ ही बिताने से क्या लाभ।।४१।।

अन्वयसमासादिः— स भूमि...= भूमेः दाने अतिरुचिः यस्य स तथोक्तः, स्थिरश्रीः =स्थिरा श्रीः यस्य तथोक्तः ब्राह्मणकुञ्जरेभ्यः ब्राह्मणश्रेष्ठेभ्यः भूमिं ददौ। यां-भूमिं प्राप्य = लब्ध्वा ते द्रव्यद्र्धयः = द्रव्येण समृद्धिः येषां ते तथाभूताः, पूर्णमनोऽभिलाषाः = पूर्णा मनसः अभिलाषा येषां ते तथाभूताः न याचकाः स्युः।

भाषार्थ— उस भूमि दान में अत्यन्त रुचि रखने वाले, स्थिर सम्पत्ति वाले (राजा) ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भूमि दान किया। जिसे प्राप्त करके वे द्रव्य से समृद्ध, पूर्ण मन की अभिलाषा वाले याचक नहीं रह गये।।४२।।

अन्वयसमासादिः— एष जिष्णुः = जयशीलः, आयानुरूपं व्ययं कुर्वन् विदग्धभावं = बुद्धिमत्त्वं भजते स्म = धारयति स्म। अर्थौघपूर्णः = द्रव्यसमूहेन परिपूर्णः, क्षणजय्यशत्रुः = क्षणे जेतुं शक्यः शत्रुः येन स तथोक्तः अभूत्। (तस्य कृते) लक्ष्म्या सुलभं किं किं न अभूत्।

भाषार्थ— यह विजय करने वाला आय के अनुरूप व्यय करते हुए बड़ी समझदारी रखता था। सम्पत्ति के समूह से परिपूर्ण, क्षण भर में शत्रुओं को जीतने के सामर्थ्य वाले के लिये लक्ष्मी के द्वारा क्या क्या सुलभ नहीं था।।४३।।

अन्वयसमासादिः— महीयां = पूजनीयां सहुंडां तन्नाम्नीं नगरीं हत्वा ताम् अध्युवास = अधिवसति स्म अत्र किं चित्रम्। एष राजा - वीरमदेवः

हत्वा सहुंडा नगरी महीयांस्तामध्युवासाशु किमत्र चित्रम् ।
विगृह्य रेजे यवनाधिपेन दिल्लीपुरीसत्पतिना यदेषः ।४४।

सदा स्वकार्यं विदधौ विचारात् प्रयोगशाली स्वधनैर्धनाढ्यः ।
ऋणेन लोकद्वयभीतिदेन न तं समीहे सततोत्थितोऽसौ ।।४५।।

राज्ञीषु बह्वीषु च भूमिभर्तुः सतीषु रुच्याऽभवदस्य साध्वी ।
अपूर्वदेवी तनुजं च सैषा प्रापत्कुशान्नागसुतेव तस्मात् ।४६।

दिल्ली... = दिल्लीपुर्याः सत्पतिना यवनाधिपेन = यवन एव अधिपः तेन विगृह्य = विग्रहं विधाय रेजे = विरराज।

भाषार्थ— आदर के योग्य सहुण्डा नगरी पर अधिकार करके उसने वहाँ निवास किया, यह उसके लिये कौन सी अचरज की बात थी। यह राजा (वीरमदेव) दिल्लीपुरी के अधिपति यवन नरेश के साथ विरोध करके विराजता था।।४४।।

अन्वयसमासादिः— सदा प्रयोगशाली, स्वधनैः धनाढ्यः स्वकार्यं विचारात् विदधौ = चकार। लोकद्वय... = द्वयोरपि लोकयोः भयं ददाति इति तथाभूतेन ऋणेन (न कार्यकारी) असौ सततम् उत्थितः = जागरितः तं ऋणं न समीहे = न इयेष।

भाषार्थ— सदा प्रयोग करने वाला, अपने धन से धनाढ्य वह राजा अपने कार्य को विचार करके करता था। दोनों लोकों में डर प्रदान करने वाले ऋण से कभी कार्य न चलाने वाले उस जागरूक राजा ने कभी ऋण नहीं लेना चाहा।।४५।।

अन्वयसमासादिः— अस्य भूमिभर्तुः = भूमिपालकस्य राज्ञः बह्वीषु राज्ञीषु सतीषु साध्वी अपूर्वदेवी रुच्या अभवत्। सा एषा, नागसुता कुशादिव तस्मात् तनुजं = पुत्रं प्रापत् = अलभत।

भाषार्थ— इस भूमिपालक राजा की अनेक रानियां होने पर भी साध्वी अपूर्वदेवी सबसे प्रिय थी। उसने इस राजा से वैसे ही पुत्र प्राप्त किया जैसे नागसुता ने कुश से पुत्र प्राप्त किया था।।४६।।

दिने च शुद्धे तनुजं स नाम्ना नरादिकं तं हरिमाचचक्षे।
अथान्यपत्न्यः सुवते स्म पुत्रान् राज्ञस्ततस्तेन च तैश्चकासे।४७।

ज्येष्ठे न्यधाद्राज्यमथो तनूजे पुत्रेषु चान्येषु स देशकोशम्।
यथोचितं जह्नुसुतामथाप्तस्तत्याज देहं मुरशत्रुमापत्।४८।

पृथ्वीं जिगायोदधितीर्णकीर्तिः स राजघः सागरतीरसीमाम्।
तस्याङ्घ्रिपद्मे भ्रमयांबभूवुर्भूभृच्छिरांसि प्रणतेष्टकर्तुः।४९

अन्वयसमासादिः— स राजा शुद्धे दिने तं तनुजं = पुत्रं नाम्ना नरादिकं हरिम् - नरहरिम् इत्यर्थः, आचचक्षे = कथयांचकार। अथ राज्ञः अन्यपत्न्यः पुत्रान् सुवते स्म = जनयन्ति स्म। ततः तेन च तैः पुत्रै च चकासे = दिदीपे।

भाषार्थ— उस राजा वीरमदेव ने किसी शुभ दिन में उस पुत्र का नरहरि नाम रखा। उस राजा से अन्य पत्नियों ने भी पुत्र उत्पन्न किया। वह राजा उस या उन पुत्रों से सुशोभित हुआ।।४७।।

अन्वयसमासादिः— अथो अन्येषु पुत्रेषु (सत्सु) सः ज्येष्ठे तनूजे = पुत्रे राज्यं देशस्य कोशं च न्यधात्। अथ यथोचितं जह्नुसुतां = गंगाम् आप्तः = प्राप्तवान्, देहं तत्याज = मुमोच, मुरशत्रुं-मुरारिं श्रीकृष्णम् आपत् = प्राप्नोत्।

भाषार्थ— अन्य पुत्रों के रहने पर भी उसने इस सबसे बड़े पुत्र के अधिकार में राज्य तथा देश का कोश रखा। तब यथाविधि गंगा को प्राप्त करके शरीर त्याग किया तथा मुरारि श्रीकृष्ण को प्राप्त किया।।४८।।

अन्वयसमासादिः— स राजघः = शत्रुराज्ञः हन्ति इति तथाभूतः, उदधि ...= उदधेः = समुद्रात् तीर्णा कीर्तिः यस्य स तथोक्तः, सागर...= समुद्रस्य तट एव सीमा यस्य तथाभूतां पृथ्वीं जिगाय = अजयत्। तस्य अंघ्रिपद्मे = चरणकमले प्रणतेन इष्टकर्तुः भूभृतां शिरांसि भ्रमयाम्बभूवुः।

भाषार्थ— उस शत्रु राजाओं को मारने वाले, समुद्र के पार पहुंची हुई कीर्ति वाले ने समुद्र तट की सीमा वाली धरती को जीत लिया। उसके चरण कमल में प्रणत होकर अभीष्ट सम्पादित करने वाले राजाओं के सिर घूमते रहते थे।।४९।।

तिष्ठन् गहोरासुरराजपुर्याम् बघेलवंशद्युमणिः शशास ।
भूमिं चिरं कीर्णयशास्त्रिलोके ससागरां पूर्णमनोऽभिलाषः ।।५०।।

आसप्तलोकाद्भुतगीतकीर्तिं श्रीभैदचन्द्रं सुषुवेऽथ पुत्रम्।
सा राजलाख्या महिषी सुशीला हरेर्नरादेः परनागहन्तुः ।।५१।।

पिता यदीयोऽर्जुननामधेयो गङ्गासमीपस्थगढाधिराजः ।
नरादयेऽदाद्धरये यदेताम् वेदोक्तवैवाहिककर्मरीत्या ।।५२।।

अन्वयसमासादिः— बघेल...= बघेलवंशस्य द्युमणिः = सूर्यः, त्रिलोके कीर्णयशाः = विस्तृतं यशः यस्य स तथाभूतः, पूर्णमनोऽभिलाषः = पूर्णा मनसः अभिलाषा = इच्छा यस्य स तथोक्तः, गहोरा...= तन्नाम्न्याम् इन्द्रपुर्यां ससागरां = सागरपर्यन्तां भूमिं चिरं शशास।

भाषार्थ— इस बघेल वंश के सूर्य, तीनों लोकों में विस्तृत यश वाले, पूर्ण मन की अभिलाषा वाले राजा ने गहोरा नामक इन्द्रपुरी में सागर पर्यन्त धरती का बहुत समय तक शासन किया।।५०।।

अन्वयसमासादिः— सा सुशीला = शोभनस्वभावा राजलाख्या = राजला इति नामधेया महिषी = ज्येष्ठा राज्ञी, परेषां नागानां = हस्तिनां हन्तुः नरादेः हरेः नरहरेरित्यर्थः, आसप्तलोकं अद्भुतं गीता कीर्तिः यस्य तथाभूतं भैदचन्द्रं तन्नामधेयं पुत्रं सुषुवे = जनयामास।

भाषार्थ— उस सुन्दर स्वभाव वाली राजला नामक बड़ी रानी ने दूसरे हाथियों को मारने वाले नरहरि से सात लोकों तक गाई गई अद्भुत कीर्ति वाले भैदचन्द्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया।।५१।।

अन्वयसमासादिः— यदीयः पिता गंगासमीपे स्थितस्य गढ़ नगरस्य अधिराजः अर्जुननामधेयः आसीत्। सः एताम् - राजलां, वेदोक्त...= वेदे उक्तं यद् वैवाहिकं कर्म तद्रीत्या नरादये हरये - नरहरये इत्यर्थः, अदात्।

भाषार्थ— इसका पिता गंगा के समीप में स्थित गढ़ नामक नगर का राजा अर्जुन नामधारी था। उसने इस राजला को वेद में कही गयी विवाह विधि के द्वारा नरहरि को प्रदान किया था।।५२।।

येनार्जुनेनाप्तवतीयमुर्वी श्रीकर्णतीर्थस्य नितान्तशोभाम् ।
पार्थार्जुनेनेव विशालविन्ध्यप्रभावयुक्तस्य शिवालयस्य ।।५३।।

स भैदचन्द्रं शरजन्मबुद्धिं राज्येऽभिषिच्य स्वभुवं विवेश ।
श्रीभैदचन्द्रः प्रतिपद्य राज्यं बभौतरां राम इव क्षतारिः ।५४।।

दण्ड्यान् नृसोमो मनुदिष्टमार्गगन्ता स दण्डेन युयोज युक्त्या ।

अन्वयसमासादिः— येन अर्जुनेन इयम् उर्वी = धरित्री आप्तवती प्राप्तवती। सः पार्थार्जुनेनेव = पृथापुत्रेण अर्जुनेन इव श्रीकर्णतीर्थस्य विशाल ...= महाविस्तृते विन्ध्ये प्रभावपरिपूर्णस्य शिवालयस्य नितान्तशोभां प्राप्नोत्।

भाषार्थ— जिस अर्जुन ने इस धरती को प्राप्त किया, उसने पृथा पुत्र अर्जुन के समान श्रीकर्णतीर्थ की तथा महाविस्तृत विन्ध्यपर्वत में प्रभाव परिपूर्ण शिवालय की नितान्त शोभा को प्राप्त किया।।५३।।

अन्वयसमासादिः— सः नरहरिः शरजन्म... = शरः = बाण इव जन्मतः बुद्धिः यस्य तथाभूतं भैदचन्द्रं राज्ये अभिषिच्य = अभिषेकं कृत्वा स्वभुवं = विष्णुलोकं विवेश। क्षतारिः = क्षताः विनाशिताः अरयः येन स तथाभूतः श्री भैदचन्द्रः राज्यं प्रतिपद्य राम इव बभौतराम् = अतिशयं दिदीपे।

भाषार्थ— उस नरहरिदेव ने जन्म से ही बाण के समान तीक्ष्ण बुद्धि वाले भैदचन्द्र को राज्य में अभिषिक्त करके विष्णुलोक में प्रवेश किया। शत्रुओं का विनाश करने वाले श्री भैदचन्द्र राज्य को प्राप्त करके राम के समान अत्यन्त सुशोभित हुए।।५४।।

अन्वयसमासादिः— नृसोमः = ना = नरः, सोमः चन्द्र इव, मनु... = मनुना दिष्टो यो मार्गः = पन्थाः तत्र गन्ता राजा दण्ड्यान् = दण्डयोग्यान् पुरुषान् युक्त्या दण्डेन युयोज। साधून् = सच्चरित्रान्, खल = खलाः = दुष्टा ये पन्नगाः = सर्पा इव तेभ्यः अरक्षत्। स्वमन्त्र... = स्वमन्त्रस्य = स्वविचारस्य दार्ढ्यात् = दृढ़तायाः तान् संतुतोष = समतोषयत् अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्र धातुः।

साधूनरक्षत् खलपन्नगेभ्यः स्वमन्त्रदार्ढ्यादथ संतुतोष ।।५५।।

काशीं प्रयागं च गयां च जित्वा स निःकरां निष्करमाशु चक्रे ।
तत्राभिषिक्तैर्विततोऽस्य कीर्तिर्द्वीपेषु देशेषु ततस्ततस्त्यैः ।।५६।।

स हेलया सर्वरिपून् विजित्य तेषां पुरेषु स्वगृहान् वितत्य ।
उवास तावन्निपुणः प्रवीरो यावन्ननाम श्रुतमप्यमीषाम् ।।५७।।

भाषार्थ— चन्द्र के समान वह मनुष्य, मनु के द्वारा बताए गये रास्ते पर चलने वाला वह राजा भैदचन्द्र दण्डनीय लोगों को बड़ी युक्ति से दण्ड देता था। सच्चरित्र पुरुषों की सांप के समान दुष्ट लोगों से रक्षा करता था तथा अपने विचार की दृढ़ता से उन्हें सन्तुष्ट करता था।।५५।।

अन्वयसमासादिः— स - राजा भैदचन्द्रः काशीं प्रयागं च गयां च जित्वा निःकरां आशु निष्करं = कररहितं चक्रे = विदधौ। ततः ततस्त्यैः तत्र अभिषिक्तैः (राजभिः) अस्य कीर्तिः = यशः द्वीपेषु देशेषु च वितता = प्रथिता।

भाषार्थ— उस राजा भैदचन्द्र ने काशी, प्रयाग तथा गया को जीत कर उसे सर्वथा कर रहित बना दिया। वहां वहां के अभिषिक्त राजाओं के द्वारा इसकी कीर्ति विभिन्न द्वीपों तथा देशों में फैलाई गयी।।५६।।

अन्वयसमासादिः— प्रवीरः निपुणः सः - राजा हेलया = अनायासेन, सर्वरिपून् = सर्वशत्रून् विजित्य, तेषां - शत्रूणां पुरेषु = नगरेषु स्वगृहान् वितत्य = निर्माय तत्र उवास = अवसत्। यावत् अमीषां = शत्रूणां नाम श्रुतं = प्रसिद्धिः न ननाम। अत्र न नाम, ननाम इति श्लेषः।

भाषार्थ— उस वीर निपुण राजा ने अनायास ही सभी शत्रुओं को जीत कर तथा उनके नगरों में अपने घर बनवा कर तब तक निवास किया, जब तक उनका नाम तथा उनकी प्रसिद्धि झुक नहीं गई।।५७।।

अन्वयसमासादिः— एवं राजहरिः = राजा हरिरिव, रजनीपतिश्रीः = रजनीपतेः = चन्द्रस्य श्रीः = शोभा यस्य स तथाभूतः रिपुद्विपूनां = रिपवः = शत्रवः ये द्विपा इव तेषां रसां = धरित्रीं प्रगृह्णन् गहोरां तन्नाम्नीं नगरीं

एवं रसां राजहरिः प्रगृह्णन् रिपुद्विपानां रजनीपतिश्रीः ।
रेजे गहोरामघवा गहोरामुद्दीपयन् सौधपरम्पराभिः ।।५८।।

गन्ताख्यनद्यास्तटपूर्वभागे गृहान् गहोराह्वयराजधान्याम् ।
भंग्याऽद्भुतं कारयति स्म सोऽयं यथाऽपि चित्रं तनुते स्वकान्त्या ।।५९।।

या भङ्गिरत्यन्तविदां च पश्चाच्छ्रीवीरभानुप्रभुणा व्यधायि ।
अतीव चित्राऽद्भुतकर्मविज्ञान् प्रकुर्वताऽऽनन्दभरेण खर्वान् ।।६०।।

सौधपरम्पराभिः = प्रासादमालाभिः, उद्दीपयन् = अलंकुर्वन् गहोरामघवा = गहोराया इन्द्रः रेजे = शुशुभे।

भाषार्थ— इस प्रकार चन्द्र के समान शोभा वाले हरि के समान इस राजा ने हाथी के समान शत्रुओं की धरती को छीन कर गहोरा नगरी को महलों की माला से अलंकृत किया तथा यह गहोरा का इन्द्र सुशोभित हुआ।।५८।।

अन्वयसमासादिः— सोऽयं - राजा गन्ता = गन्ता नाम्नीनद्याः तटस्य पूर्वभागे, गहोरा = गहोराख्यायां राजधान्यां भंग्या गृहान् अद्भुतं कारयति स्म। यथा स्वकान्त्या चित्रं तनुते = विस्तारयति।

भाषार्थ— उस राजा ने गन्ता नामक नदी के तट के पूर्वभाग में गहोरा नामक राजधानी में अपनी विशेष कला से अद्भुत घर बनवाए। जैसे कोई अपनी कान्ति से चित्र बना रहा हो।।५९।।

अन्वयसमासादिः— अत्यन्तविदां = अत्यधिकविदुषां मध्ये या अतीव चित्रा भंगिः पश्चात् श्री वीरभानुप्रभुणा = तन्नाम्ना राज्ञा व्यधायि = समपादि, (तां) आनन्दभरेण अद्भुतकर्मविज्ञान् = विशिष्टकर्मकुशलान् खर्वान् = निम्नान् प्रकुर्वता (सः प्राप्नोत्)।

भाषार्थ— अत्यधिक विद्वानों के मध्य जिस अत्यन्त विचित्र भावभंगिमा को बाद में चलकर श्री वीरभानु राजा ने प्राप्त किया, उसी भंगिमा को अत्यन्त आनन्द से अद्भुत कर्म में कुशल लोगों को भी नाटा अथवा नीचा बनाते हुए इसने प्राप्त किया।।६०।।

यामुद्धपूर्वां रणशब्दमध्यां देवीपदान्तां महिषीं वदन्ति ।
साऽस्याऽऽप पुत्रान् रमणीयदेहान् ज्येष्ठस्ततो वाहरराय आसीत् ।। ६१ ।।

सुताऽर्चिता तस्य यशोधनस्य या सातनस्याजिसमुद्धतस्य ।
बगीति पूर्वः सर इत्युदीर्यो देशोऽयमासाद्य बभौ चिराय ।। ६२ ।।

अन्या प्रिया वाऽथ सुतानवापुर्मानोन्नतान्नीतिविदः सहिष्णून् ।
सिंहौजसो बाहररायपुत्रात् स दुःसहोऽभूत् परदन्तिवृन्दैः ।। ६३ ।।

अन्वयसमासादिः— याम् उद्धपूर्वां रणशब्दमध्यां, देवीपदान्तां = देवी-पदम् अन्ते यस्य अर्थात् उद्धरणदेवी नाम्नीं महिषीं = ज्येष्ठां राज्ञीं वदन्ति। सा अस्य रमणीयदेहान् = सुन्दरं शरीरं यस्य तथाभूतान् पुत्रान् आप = प्राप्नोत्। ततो ज्येष्ठः वाहरराय आसीत्।

भाषार्थ— जिसे उद्धरण देवी नाम वाली सबसे बड़ी रानी कहते हैं। उसने इसके सुन्दर शरीर वाले अनेक पुत्रों को प्राप्त किया। उनमें सबसे बड़ा वाहरराय था।।६१।।

अन्वयसमासादिः— तस्य यशोधनस्य = यश एव धनं यस्य तथोक्तस्य, आजि... = आजौ = संग्रामे समुत्थितस्य सातनस्य तन्नामधेयस्य या सुता = पुत्री (सा तेन - भैदचन्द्रेण पत्नीरूपेण) अर्चिता = सुपूजिता। बगीसर इत्येवं उदीर्यः = प्रोक्तुं योग्यः अयं देशः (तं) आसाद्य = प्राप्य चिराय बभौ = दिदीपे।

भाषार्थ— यश ही धन वाले, संग्राम में उठने वाले सातन नामक राजा की यह पुत्री (उद्धरणदेवी, भैदचन्द्र के द्वारा पत्नी रूप में) स्वीकृत की गई। (यह राजा भैदचन्द्र) बगीसर कहे जाने वाले देश को प्राप्त करके बहुत समय तक सुशोभित हुआ।।६२।।

अन्वयसमासादिः— अन्याः प्रियाः = पत्न्यः मानोन्नतान् = सम्मानेन उन्नतान्, नीतिविदः = नीतिं जानन्ति तथाभूतान्, सहिष्णून् सुतान् = पुत्रान् अवापुः = प्राप्नुवन्। सः सिंहौजसः = सिंह इव ओजः = बलं यस्य तथोक्तात् वाहररायपुत्रात् पर... = अन्यहस्तिसमूहैः दुःसहः अभूत्।

ज्येष्ठः स सूनुर्नृपतेर्विचिन्त्य स्थित्वाऽवनौ संसृतिमिन्द्रजालम् ।
संत्यज्य देहं प्रविवेश विष्णुं विष्णुप्रवेशे न पुनर्भयानि ।।६४।।

पत्न्योऽनुजग्मुर्ज्वलनं प्रविश्य तिस्रोऽनुकूलाः श्रुतशास्त्रसाराः ।
महाकुलीनाः कुलजं ततस्तं गन्धर्वदेवीप्रमुखाः सुगात्र्यः ।।६५।।

तस्माद्विना राजमुनिर्विलापं कृत्वा निजप्राक्तनकर्मनिन्दः ।

भाषार्थ— (भैदचन्द्र की) अन्य पत्नियों ने भी सम्मान से उन्नत नीति जाननें वाले तथा सहिष्णु पुत्रों को प्राप्त किया। पर यह (राजा भैदचन्द्र) सिंह के समान बल वाले वाहररायं नामक पुत्र के द्वारा ही अन्य हाथियों से अधिक प्रतापी हुआ।।६३।।

अन्वयसमासादिः— नृपतेः = राज्ञः स ज्येष्ठः सूनुः= पुत्रः - वाहररायः अवनौ = पृथिव्यां स्थित्वा संसृतिं = संसारम् इन्द्रजालं = मायापरिपूर्णं विचिन्त्य देहं सन्त्यज्य = त्यक्त्वा विष्णुं = विष्णुलोकं प्रविवेश। (यतो हि) विष्णुलोकप्रवेशे न पुनः कानिचित् भयानि।

भाषार्थ— राजा के उस ज्येष्ठ पुत्र वाहरराय ने इस पृथिवी में रहकर संसार को इन्द्रजाल समझ कर देह का त्याग कर विष्णुलोक में प्रवेश किया। क्योंकि विष्णुलोक में प्रवेश करने पर कोई भय नहीं है।।६४।।

अन्वयसमासादिः— ततः अनुकूलाः, श्रुत..= श्रुतं शास्त्रस्य सारं याभिः तास्तथोक्ताः, महाकुलीनाः, सुगात्र्यः= शोभनशरीरवत्यः गन्धर्वदेवी-प्रमुखाः तिस्रः पत्न्यः ज्वलनं प्रविश्य तं कुलजं = कुलीनं-वाहररायम् अनुजग्मुः।

भाषार्थ— तब सर्वथा अनुकूल, शास्त्र के सार को जानने वाली, अत्यन्त कुलीन, सुन्दर अंगों वाली, गन्धर्वदेवी आदि उसकी पत्नियों ने अग्नि में प्रवेश करके उस कुलीन वाहरराय का अनुगमन कियार।।६५।।

अन्वयसमासादिः— तस्मात् - पुत्रात् विना राजमुनिः - राजा एव मुनिः निज...= (कृता) निजस्य प्राक्तनकर्मणः निन्दा येन तथाभूतः विलापं कृत्वा कथंचित् प्राणान् प्रतिगृह्य = धारयित्वा, स निरस्त...= निरस्ताः = दूरीकृताः शत्रवः येन स तथाभूतः राज्यं पालयामास।

प्राणान् कथंचित् प्रतिगृह्य राज्यं स पालयामास निरस्तशत्रुः ।।६६।।

ततः कनीयांसमदभ्रवीर्यं यमाख्ययस्म वाहनमामनन्ति ।
श्रीशालिपूर्वं तमसौ विधाय राजानमापद्वसुदेवसूनुम् ।।६७।।

स निर्ववौ राज्यजया च लक्ष्म्या द्विषां शिरःशोणितशोणखड्गः ।
दयानयाभ्यां भुवने चरिष्णुर्दीनार्तिसन्तापशमीव वेधाः ।।६८।।

भाषार्थ— उस पुत्र के बिना राजमुनि भैदचन्द्र अपने पूर्वजन्म के कर्मों की निन्दा करते हुए, विलाप करके किसी प्रकार प्राणों का धारण करके शत्रुओं को दूर करते हुए राज्य का पालन किया।।६६।।

अन्वयसमासादिः— ततः असौ - भैदचन्द्रः अदभ्रवीर्यं = असकुचितप्रभावं, कनीयांसं = लघुतरं (पौत्रं) यम् आख्यया = नाम्ना शालिपूर्वं वाहनं - शालिवाहनमित्यर्थः, आमनन्ति = कथयन्ति तम् = राजानं विधाय वसुदेवसूनुं = वासुदेवं श्रीकृष्णं आपत् = प्राप्नोत्।

भाषार्थ— तब इस भैदचन्द्र ने असंकुचित प्रभाव वाले छोटे (पौत्र) को जिसे नाम से शालिवाहन कहते थे, उसे राजा बना कर वासुदेव या श्रीकृष्ण को प्राप्त किया।।६७।।

अन्वयसमासादिः— सः शालिवाहनः द्विषां = द्वेषिणां शिरः = शिरसां शोणितेन शोणः खड्गः यस्य स तथाभूतः, दानदयाभ्यां भुवने = लोके चरिष्णुः = विचरणशीलः दीनार्ति...= दीनानाम् आर्तेः = कष्टस्य सन्तापस्य = दुःखस्य शमी = शमं करोतीति तथाभूतः। अतएव वेधाः = ब्रह्मा इव राज्यजया = राज्योत्पन्नया लक्ष्म्या निर्ववौ = ननन्द।

भाषार्थ— वह शालिवाहन द्वेषी शिर के रक्त से लाल तलवार वाला, दान तथा दया से लोक में विचरण करने वाला, दीनों के कष्ट तथा दुःखों को शान्त करने वाला अतएव ब्रह्मा के समान होकर वह राज्य से उत्पन्न लक्ष्मी से आनन्दित हुआ।।६८।।

ललङ्घिरे नास्य जनाः कदाचिन्मनूपदिष्टां पदवीं जिगीषोः ।
युधिष्ठिरं धर्मविधायिनीभिः क्रियाभिरन्यायिजनस्य हन्तुः ।।६९।।

अस्मिन् रसां शासति दस्युभावो न श्रूयते स्म प्रतिपन्नभीतिः ।
निमज्जतां प्राणभृतां समन्तात् पोतो भवाब्धौ किल रामशब्दः ।।७०।।

इन्द्राच्छचीवांचितवीर्यरूपं जयन्तमीशाद्गुहमम्बिकेव ।

अन्वयसमासादिः— अस्य जिगीषोः = जयशीलस्य, अथ च धर्मविधायिनीभिः क्रियाभिः अन्यायिजनस्य हन्तुः = विनाशयितुः मनूपदिष्टां = मनुना प्रबोधितां पदवीं = शासनं अतएव युधिष्ठिरं तत्स्वरूपं जनाः न कदाचित् ललंघिरे।

भाषार्थ— इस विजयशाली का तथा धर्मानुसारी क्रियाओं से अन्यायी लोगों के विनाश करने वाले राजा के मनु द्वारा उपदिष्ट शासन का, अतः इस साक्षात् युधिष्ठिर के (आदेशों का) लोगों ने कभी उल्लंघन नहीं किया।।६९।।

अन्वयसमासादिः— अस्मिन् शालिवाहने रसां = धरित्रीं शासति प्रतिपन्नभीतिः = प्रतिपन्ना भीतिः = भयः, दस्युभावः न श्रूयते स्म। स भवाब्धौ = संसारसमुद्रे निमज्जतां प्राणभृतां = प्राणिनां कृते समन्तात् पोतः, अतः राम शब्द (इव आसीत्)।

भाषार्थ— इस शालिवाहन के धरती का शासन करते हुए कहीं भी डर की प्राप्ति तथा दस्युभाव नहीं सुना गया। वह संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए प्राणियों के लिये जहाज के समान था, अतः राम शब्द के समान था।।७०।।

अन्वयसमासादिः— शची = इन्द्रपत्नी इन्द्रात् अञ्चित.....= सुशोभितपराक्रमरूपं जयन्तमिव, अम्बिका पार्वती ईशात् = शिवात् गुहम् = कार्तिकेयम् इव राज्ञी कल्याणदेवी तस्मात्-शालिवाहनात् स्वकुल....... = स्वकीयस्य कुलस्य वृद्ध्यै तनूजं = पुत्रं लभते स्म।

तस्मात्तनूजं लभते स्म राज्ञी कल्याणदेवी स्वकुलप्रवृद्ध्यै ।।७१।।

यस्याः पिता पूरणमल्लनामा कीर्तिं लतां पल्लवयांचकार ।
श्री चाहुवाणान्वयचक्रवर्ती हम्मीरवीरावतरायमाणः ।।७२।।

राजा प्रयच्छन् द्रविणानि पुत्रं पीत्वा दृशाऽऽनन्दसमुद्रवृद्धः ।
बभौ यथा पुत्ररघुं दिलीपो युधिष्ठिरं पाण्डुरिवोदितश्रीः ।।७३।।

भाषार्थ— जैसे शची इन्द्रपत्नी ने इन्द्र से सम्मानित पराक्रम वाले जयन्त को तथा जैसे अम्बिका या पार्वती ने शिव से गुह या कार्तिकेय को पाया, वैसे ही रानी कल्याणदेवी ने शालिवाहन से अपने कुल की वृद्धि के लिये पुत्र को प्राप्त किया।।७१।।

अन्वयसमासादिः— यस्याः - कल्याणदेव्याः पिता पूरणमल्लनामा श्री चाहुवाणा...... = श्री चाहुवाणवंशस्य चक्रवर्ती, हम्मीर.... हम्मीर वीरस्य अवतारमिव आचरन् कीर्तिं लतां पल्लवयांचकार।

भाषार्थ— इस कल्याणदेवी का पूरणमल्ल नाम का पिता चौहान वंश का चक्रवर्ती राजा होकर वीर हम्मीर के अवतार के समान आचरण करते हुए अपनी कीर्तिलता को बढ़ाता था।।७२।।

अन्वयसमासादिः— आनन्दस्य समुद्रेण वृद्धः = वृद्धिं प्राप्तः राजा दृशा = चक्षुषा पुत्रं = पुत्रस्य रूपं पीत्वा द्रविणानि धनानि = प्रयच्छन् = ददत् यथा पुत्ररघुं दिलीपः, यथा च युधिष्ठिरं उदितश्रीः = उदिता श्रीः यस्य तथाभूतः पाण्डुः (तथैव असौ राजाऽपि) बभौ = दिदीपे इत्यर्थः।

भाषार्थ— आनन्द के समुद्र से वृद्धि को प्राप्त राजा अपनी आँखों से पुत्र के रूप को पीकर धनों को देता हुआ वैसा ही प्रदीप्त हुआ जैसे पुत्र रघु से दिलीप तथा युधिष्ठिर से उदित शोभा वाले पाण्डु प्रदीप्त हुए थे।।७३।।

अन्वयसमासादिः— अथ पटीयान् = द्वयोरतिशयेन पटुः अर्थपतिः = राजा पुरोहितेन सह अस्य जातकर्म (संस्कारं) चक्रे = विदधौ। ततः स सूनुः = पुत्रः शैलात्मजासूनुः = पार्वतीपुत्र इव कृष्ण इव वा सुषमां = सौन्दर्यं पुपोष = धारयामास।

अथास्य चक्रे सह जातकर्म पुरोहितेनार्थपतिः पटीयान् ।
ततः स सूनुः सुषमां पुपोष शैलात्मजासूनुरिवेव कृष्णः ।।७४।।

निर्घोषयामासुरनल्पवृद्धेर्गृहे च राज्ञः पटहानि भेर्यः ।
मृदङ्गशब्दैर्ननृतुः सुमुख्यः सुनृत्तविज्ञाः किल वारनार्यः ।।७५।।

पिताऽऽत्मजन्मानमवेत्य भव्यं वीराग्र्यमेनं बहुविद्व्यधात्सः ।
श्रीवीरसिंहं रुचिरेण नाम्ना बह्व्या दिशा सुप्रथितेन कीर्त्या ।।७६।।

भाषार्थ— अनन्तर अत्यन्त समझदार इस राजा ने पुरोहित के साथ इस पुत्र का जातकर्म संस्कार किया। तब उस पुत्र ने वैसी ही सुषमा धारण की जैसी पार्वती पुत्र या श्रीकृष्ण ने धारण की थी।।७४।।

अन्वयसमासादिः— (अल्पवृद्धेः) अनल्पवृद्धेः = महति गृहे च राज्ञः पटहानि, भेर्यः निर्घोषयामासुः। सुमुख्यः = शोभनमुखवत्यः सुनृत्त.....= शोभनं नृत्तं विजानन्ति तास्तथाभूताः वारनार्यः = वारांगनाः मृदंगशब्दैः ननृतुः = नर्तनं चक्रिरे।

भाषार्थ— उस समय छोटे तथा बड़े घरों में राजा के नगाड़े तथा भेरी आदि बज उठे। सुन्दर मुख वाली, सुन्दर नृत्य जानने वाली वारांगनाओं ने मृदंग की थाप पर नृत्य किया।।७५।।

अन्वयसमासादिः— बहुवित् = बहु वेत्तीति तथाभूतः पिता आत्मजन्मानम् = आत्मन एव पुत्ररूपेण जन्म इति अवेत्य = मत्वा एनं भव्यं = सुन्दरं, वीराग्र्यं = वीरेषु अग्रगणनीयं बह्व्या दिशा सुप्रथितेन = व्याप्तेन, कीर्त्या = यशसा रुचिरेण नाम्ना श्रीवीरसिंहं व्यधात्।

भाषार्थ— इस अत्यधिक विद्वान् पिता ने अपना ही (पुत्ररूप में) जन्म समझते हुए इस सुन्दर, वीरों में अग्रगण्य को अनेक दिशाओं में व्याप्त यश के द्वारा सुन्दर नाम से श्रीवीरसिंह बनाया।।७६।।

श्रीवीरसिंहेन शरीरवृद्धिर्दिने दिने ऽलभ्यत तातयत्नात् ।
यथा यथा च प्रमदस्य वृद्धिं तथा तथाऽऽपज्जनकोऽधिलक्ष्मीः ।।७७।।

कृती पिता ज्योतिषिकैर्बहुज्ञैर्विचार्य सूनोः कथिते परेऽह्नि ।
कर्माणि चक्रे निखिलानि चूडाकर्माख्यकादीनि यथाक्रमेण ।७८।।

नृपः स मेने कुलमात्मजेन स्थिरं शिशुत्वं जहता क्रमेण ।
गृहीतविद्येन गुरुभ्य उच्चैर्ब्रह्माऽच्युतेनेव वरेण विश्वम् ।७९।।

अन्वयसमासादिः— श्री वीरसिंहेन तातयत्नात् = पितुः प्रयत्नात् दिने दिने शरीरवृद्धिः = शरीरस्य वृद्धिः अलभ्यत = प्राप्यत। यथा यथा पुत्रः प्रमदस्य = यौवनस्य वृद्धिं (प्राप्नोत्) तथा तथा जनकः = पिता अधिलक्ष्मीः आपत् = प्राप्नोत्।

भाषार्थ— श्री वीरसिंह ने पिता के प्रयत्न से प्रतिदिन शरीर की वृद्धि प्राप्त की । जैसे जैसे पुत्र ने यौवन की वृद्धि प्राप्त की वैसे वैसे पिता लक्ष्मी प्राप्त करने लगे।।७७।।

अन्वयसमासादिः— कृती = कृतार्थः पिता परे अह्नि = अन्यस्मिन् दिने ज्योतिषिकैः बहुज्ञैः = बहुविद्भिः विचार्य कथिते सति निखिलानि = सम्पूर्णानि चूडाकर्मकाख्यकादीनि सूनोः कर्माणि यथाक्रमेण चक्रे = विदधे।

भाषार्थ— कृतार्थ पिता ने अन्य दिनों में बहुत जानने वाले ज्योतिषियों द्वारा विचार करके कहे जाने पर पुत्र के चूडाकर्म इत्यादि सम्पूर्ण संस्कार क्रमशः संपादित कराए।।७८।।

अन्वयसमासादिः— स नृपः = राजा, आत्मजेन = पुत्रेण क्रमेण शिशुत्वं = शैशवं जहता = त्यजता विश्वं = सम्पूर्णं कुलं स्थिरं मेने = अमन्यत। उच्चैः गुरुभ्यः गृहीतविद्येन वरेण = विदुषा अच्युतेन ब्रह्मा इव (विद्याभ्यासं सम्पादयामास)।

भाषार्थ— उस राजा ने क्रमशः अपने पुत्र के शैशव छोड़ने पर सम्पूर्ण कुल को स्थिर माना। सुन्दर अच्युत से ब्रह्मा के समान विद्वान् ऊँचे गुरुओं से विद्याभ्यास कराया।।७९।।

विवाहयज्ञं जनकोऽस्य सूनोरकारयद्वेदविधानतोऽसौ ।
राजात्मजाः प्राप्य पतिं तमीड्यं रराजुरुच्चैः सुभगीभवत्यः ।।८०।।

विशालवक्षा युवभावशाली महाभुजङ्गायतबाहुदण्डः ।
दृढं शिरोधिं दधदंसलोऽसौ राजानमत्यन्तगुरुं चकार ।।८१।।

असह्यतेजा नृपतिर्बभूव तरस्विना तेन समीरणेन ।
सख्या शिखीव प्रबलेन सम्यक् कपोलभेदेन यथा गजेन्द्रः ।।८२।।

अन्वयसमासादिः— असौ जनकः अस्य सूनोः = पुत्रस्य वेदविधानतः विवाहयज्ञम् अकारयत्। सुभगीभवत्यः = सौभाग्यशालिन्यः राजात्मजाः = राजपुत्र्यः तम् ईड्यं = स्तुत्यं पतिं प्राप्य उच्चैः रराजुः = शुशुभिरे।

भाषार्थ— इस पिता ने इस पुत्र का विवाह संस्कार वैदिक विधान के अनुसार कराया। सौभाग्यशाली राजपुत्रियाँ इस स्तुतियोग्य पति को प्राप्त करके शोभित हुईं।।८०।।

अन्वयसमासादिः— विशाल = विशालं वक्षः यस्य सः युव...= युवभावं शालते शोभते इति तथाभूतः, महाभुजङ्गा... = महासर्पौ इव आयतौ = दीर्घौ बाहुदण्डौ यस्य स तथोक्तः, दृढं शिरोधिं = ग्रीवां दधत् = धारयन् अंसलः = अंसः अस्ति यस्य स तथाभूतः बलवान् इत्यर्थः। असौ - पुत्रः वीरसिंहः राजानम् अत्यन्तगुरुं चकार = विदधे।

भाषार्थ— विशाल वक्षःस्थल वाले, युवभाव को धारण करने वाले, बड़े सर्प के समान लम्बे भुजदण्ड वाले, सुपुष्ट गर्दन को धारण करने वाले, इस बलवान् पुत्र वीरसिंह ने (अपने पिता) राजा को ही अपना पूर्ण गुरु बनाया।।८१।।

अन्वयसमासादिः— नृपतिः = राजा शालिवाहनः तेन तरस्विना = शक्तिमता वीरसिंहेन, असह्यतेजाः = असह्यं तेजः यस्य स तथाभूतः बभूव। समीरणेन = वायुना सख्या शिखी = अग्निः इव, अथवा यथा सम्यक् प्रबलेन कपोलभेदेन =(मदजलपूर्णस्य) गण्डस्थलस्य प्रस्फुटनेन गजेन्द्रः हस्तिश्रेष्ठः असह्यतेजाः स्यात्।

स राज्यमस्मिन्ननघे तनूजे निधाय तस्थौ भुवने सुखेन।
अन्ते दिनस्य द्युमणिर्यथा स्वं दीप्तिव्रजं वायुसखे समर्प्य ।।८३।।

भाषार्थ— यह राजा शालिवाहन इस शक्तिशाली वीरसिंह के द्वारा असह्य तेज वाला हो गया। जिस प्रकार वायु के द्वारा लपट वाली अग्नि अथवा सम्यक् (मदजल से परिपूर्ण) कपोल के प्रस्फुटित होने के द्वारा कोई हाथी असह्य तेज वाला हो गया हो।

प्रस्तुत श्लोक में महाकवि कालिदास के इस निम्न श्लोक की छाया देखी जा सकती है—

विभावसुः सारथिनेव वायुना घनव्यपायेन गभस्तिमानिव।
बभूव तेनातितरां सुदुःसहः कटप्रभेदेन करीव पार्थिवः ।।

— रघुवंश ३.३७

अर्थात्— सहायभूत वायु के द्वारा अग्नि के समान, बादल के हट जाने के द्वारा सूर्य के समान, मदजलपूर्ण गण्डस्थल के प्रस्फुटन से हाथी के समान वह राजा दिलीप उस रघु के द्वारा अत्यन्त दुःसह हो गया।

इस काव्य की दो उपमाएं स्पष्टतः इस रघुवंश के श्लोक से प्रभावित हैं।।८२।।

अन्वयसमासादिः— सः शालिवाहनः अस्मिन् अनघे = निष्पापे, तनूजे = पुत्रे राज्यं निधाय भुवने = लोके सुखेन तस्थौ। यथा दिनस्य द्युमणिः = दिवः मणिः अलंकारः- सूर्य इत्यर्थः, स्वं दीप्तिव्रजं = प्रकाशपुंजं वायुसखे = अग्नौ समर्प्य (निश्चिन्तः तिष्ठेत्)।

भाषार्थ— वह राजा शालिवाहन इस निष्पाप पुत्र में अपने राज्य को प्रतिष्ठित करके सुख से रहने लगा। जैसे दिन का अलंकार सूर्य अपने सम्पूर्ण प्रकाशपुंज को अग्नि के लिये समर्पित करके निश्चिन्त हो गया हो।।८३।।

तस्यार्थदेवी कुलपालिकाऽऽसीत्यतिव्रतानामपि पावनीया ।
राज्ञी सती साधुगुणैरथाऽऽपद्वीरं ततः सोदयकर्णपुत्रम् ।।८४।।

यस्तातदत्तं धनदेशमिष्टमुदारचेतास्तृणवद्विहाय ।
आराध्यमीशानमगाज्जगत्या गजेन्द्रनाथं पुरुषोत्तमं च ।।८५।।

तेनार्चयित्वाऽर्पितराज्यलक्ष्मीः समं तु तस्थौ जनितप्रतापः ।
पत्युर्गजानां च विवाह्य पुत्रीं तमुत्कलं देशमलंचकार ।८६।

अन्वयसमासादिः— तस्य - शालिवाहनस्य पतिव्रतानां - स्त्रीणाम् अपि पावनीया अर्थदेवी कुलपालिका आसीत्। सा राज्ञी सती साधुगुणैः वीरम् उदयकर्णनामधेयं पुत्रं प्रापत् = प्राप्नोत्।

भावार्थ— उस राजा शालिवाहन की पतिव्रता स्त्रियों में भी अतिपवित्र अर्थदेवी कुलपालिका रानी थी। उसने रानी होकर अपने साधुगुणों से उदयकर्ण नामक पुत्र को प्राप्त किया।।८४।।

अन्वयसमासादिः— यः - उदयकर्णः उदारचेता - उदारं चित्तं यस्य स तथाभूतः तातेन = पित्रा प्रदत्तम् इष्टं धनदेशं तृणवत् तृणमिव विहाय = त्यक्त्वा जगत्या ईशानं = स्वामिनं आराध्यं = पूजनीयं गजेन्द्रनाथं पुरुषोत्तमं (मन्दिरम्-उत्कलदेशं प्रति) अगात् = अगच्छत्।

भावार्थ— वह उदार चित्त वाला उदयकर्ण पिता के द्वारा दिये गये अभीष्ट धन को तिनके के समान छोड़कर जगत् के स्वामी पूजनीय गजेन्द्रनाथ पुरुषोत्तम (के मन्दिर - उत्कल देश) की ओर चला गया।।८५।।

अन्वयसमासादिः— जनितप्रतापः = उत्पन्नं बलं यस्य स तथाभूतः, अर्पित... = अर्पिता = समर्पिता राज्यलक्ष्मीः = येन स तथोक्तः (पुरुषोत्तमम्) अर्चयित्वा = पूजयित्वा तेन - पुरुषोत्तमेन समं तस्थौ। गजानां पत्युः - 'गजपति' नामधारिणः महानुभावस्य पुत्रीं विवाह्य तम् उत्कलं देशम् अलंचकार = भूषयामास।

श्रीवीरसिंहः पितुरेकभक्तः क्ष्मां पालयन्नब्दमनेकमेषः ।
निनाय नानानृपमौलिरत्नच्छविप्रवाहच्छुरिताङ्घ्रिपद्मः ।।८७।।

अथास्य देवी सुकुमारदेवी पतिव्रता मञ्जुलवाग्यशःश्रीः ।
सूते स्म पुत्रं नृपलक्षणं सा शक्तित्रयी कोशमिवानपायम् ।८८।।

भाषार्थ— उत्पन्न बल वाले तथा समर्पित राज्यलक्ष्मी वाले उस उदयकर्ण ने पुरुषोत्तम की पूजा करके उसके साथ ही अपनी अवस्थिति बनाई। उसने गजपति की पुत्री के साथ विवाह करके उत्कल देश को अलंकृत किया।।८६।।

अन्वयसमासादिः— एषः श्री वीरसिंहः पितुः = जनकस्य एकभक्तः = असाधारणभक्तः नानानृप... = नानानृपाणां = विविधराज्ञां मौलेः = शिरसः रत्नानां छवेः = दीप्तेः प्रवाहेण छुरितं = संसक्तम् अंघ्रिपद्मं = चरणकमलं यस्य स तथाभूतः क्ष्मां = धरित्रीं पालयन् अनेकम् अब्दं = वर्षं निनाय = व्यतीयाय।

भाषार्थ— अपने पिता के असाधारण भक्त, अनेक प्रकार के राजाओं के सिर के रत्नों की प्रदीप्ति के प्रवाह से संसक्त चरण कमल वाले उस श्री वीरसिंह ने धरती का पालन करते हुए अनेक वर्ष बिताए।।८७।।

अन्वयसमासादिः— अथ अस्य - वीरसिंहस्य सा देवी = पत्नी पतिव्रता मञ्जुल...= मंजुला = नम्रा वाणी, यशसः श्रीः शोभा यस्याः सा तथाभूता सुकुमार देवी शक्तित्रयी...= त्रिप्रकारशक्तेः कोशमिव, अनपायम् = अनश्वरं, नृपलक्षणं = राजचिह्नवन्तं पुत्रं सूते स्म = जनयामास।

भाषार्थ— अब नम्र वाणी तथा यश की शोभा से सम्पन्न वीरसिंह की पत्नी सुकुमार देवी ने तीन प्रकार की शक्तियों के खजाने के समान, अक्षीण, राजा के चिह्न वाले पुत्र को उत्पन्न किया।

अनुशीलन— शास्त्रों में तीन प्रकार की शक्तियां मानी गईं है— १- प्रभु शक्ति या प्रभाव शक्ति। २- मन्त्र शक्ति या अच्छा परामर्श देने की शक्ति। ३- उत्साह शक्ति या प्रेरक शक्ति। यहां इन्हीं शक्तियों की ओर संकेत है।।८८।।

तेनार्भकेणाग्र्यगुणा सवित्री भाति स्म चन्द्रेण महीयसा द्यौः ।
यथा यथा पर्वतराजपुत्री स्कन्देन पूर्वा दिगिवारुणेन ।।८९।।

ततः पिता तं तनयं विपश्चिच्चकार नाम्नाऽन्वयसंगतेन।
श्रीवीरभानुं कृतजातकर्मा यथाविधि प्रत्तवंसुर्ननन्द ।।९०।।

स पुत्रयोगामृतपानतृप्तेरतर्कयच्चेत्यमृतं तदन्यत् ।
किमस्ति मन्येऽमृतमेनमेव रसास्पदं सर्वजनैरलभ्यम् ।।९१।।

अन्वयसमासादिः— तेन अर्भकेण = शिशुना अग्र्यगुणा = उत्तमाः गुणाः यस्याः सा तथाभूता सवित्री = माता भाति स्म = प्रकाशते स्म। यथा महीयसा = महत्त्वशालिना चन्द्रेण द्यौः प्रकाशते। यथा पूर्वा दिगिव अरुणेन = रक्तवर्णेन स्कन्देन - कार्तिकेयेन पर्वतराजपुत्री - पार्वती शोभते।

भाषार्थ— उस शिशु के द्वारा उत्तम गुणों वाली उसकी माता वैसे ही शोभित हुई जैसे महत्त्वशाली चन्द्र के द्वारा द्युलोक प्रकाशित होता है अथवा जैसे पूर्व दिशा के समान रक्तवर्ण कार्तिकेय के द्वारा पार्वती सुशोभित होती है।।८९।।

अन्वयसमासादिः— ततः विपश्चित् = बुद्धिमान् पिता - वीरसिंहः अन्वयसंगतेन नाम्ना = वंशानुरूपनामधेयेन तं तनयं = पुत्रं श्री वीरभानुं चकार। यथाविधि = नियमानुसारेण कुलजातकर्मा = कृतं जातकर्म संस्कारं येन तथाभूतः, प्रत्तवसुः = प्रदत्तं वसु धनं येन स तथोक्तः नृपः ननन्द = प्रससाद।

भाषार्थ— इसके पश्चात् इस बुद्धिमान् पिता वीरसिंह ने अपने वंश के अनुरूप नाम के द्वारा इस पुत्र को श्री वीरभानु बनाया। साथ ही नियमानुसार जातकर्म संस्कार करके तथा धन प्रदान करके यह राजा प्रसन्न हुआ।।९०।।

अन्वयसमासादिः— स - नृपः वीरसिंहः पुत्रयोगा = पुत्रस्य योगेन यत् अमृतपानं तेन तृप्तेः अतर्कयत् = व्यचारयत् यत् तदन्यत् = तस्मादन्यत् अमृतं किमस्ति। एनमेव रसास्पदं सर्वजनैः अलभ्यम् = अप्राप्यं अमृतं मन्ये।

भाषार्थ— इस राजा वीरसिंह ने पुत्र से मिले अमृतपान से तृप्त होकर यह सोचा कि इस (पुत्र के) अलावा अमृत क्या है। मैं इसे ही रसास्पंद, सब लोगों को अप्राप्य अमृत समझता हूँ।।९१।।

स वर्धते स्म द्विजराजमञ्जुर्दिने दिनेऽद्धागुरुपोषणेन।
यथा पयोधिर्विधुवीक्षणेन शुक्लेन पक्षेण यथा सुधांशुः ।।९२।।

श्रीवीरसिंहात्सुकुमारदेवी श्रीयामिनीभानुमथापदर्घ्यम् ।
सुतं सवित्री तनुजेन तेन लवेन वैदेहसुतेव रेजे ।।९३।।

मातुः पितुः पूज्यतमस्य यत्नैः पुष्टिप्रदैरेष विवर्धमानः ।
आनन्दमारोपयति स्म पित्रोर्यथाऽर्यमा भक्तिमुपाददानः ।।९४।।

अन्वयसमासादिः— स द्विजराजमंजुः = द्विजराजः = ब्राह्मणश्रेष्ठ इव मंजु = नम्रः, दिने दिने गुरुपोषणेन = सुन्दरपुष्ट्या वर्धते स्म = अवर्धत। यथा विधुवीक्षणेन = चन्द्रदर्शनेन पयोधिः = समुद्रः वर्धते यथा च शुक्लेन पक्षेण सुधांशुः चन्द्रमाः विवर्धते।

भाषार्थ— यह ब्राह्मणश्रेष्ठों के समान विनम्र वीरभानु प्रतिदिन सुन्दर पुष्टिकारक वस्तुओं से बढ़ने लगा। जैसे चन्द्र को देखकर समुद्र बढ़ता है या शुक्ल पक्ष के द्वारा चन्द्रमा वृद्धि को प्राप्त होता है।।९२।।

अन्वयसमासादिः— सुकुमारदेवी श्री वीरसिंहात् अर्घ्यं = सम्मान्यं श्रीयामिनीभानुम् = तन्नामधेयं सुतं = पुत्रम् आपत् = प्राप्नोत्। तेन तनुजेन = पुत्रेण सवित्री = माता लवेन वैदेहसुता - सीता इव रेजे = शुशुभे।

भाषार्थ— सुकुमार देवी ने श्री वीरसिंह से सम्मान के योग्य श्री यामिनीभानु नामक पुत्र को प्राप्त किया। इस पुत्र के द्वारा यह माता लव के द्वारा सीता के समान सुशोभित हुईं।।९३।।

अन्वयसमासादिः— मातुः पितुः पूज्यतमस्य = सर्वेभ्योऽतिशयित-सम्मानितस्य यत्नैः प्रयत्नैः, पुष्टिप्रदैः पोषकैः वस्तुभिश्च विवर्धमानः-वर्धनशीलः एष पुत्रः पित्रोः = मातापित्रोः आनन्दम् आरोपयति = आदधाति स्म। यथा भक्तिम् उपाददानः = कुर्वाणः अर्यमा।

भाषार्थ— अत्यन्त पूज्य माता पिता के प्रयत्नों से तथा पोषक वस्तुओं के द्वारा वर्धनशील यह पुत्र अपने माता पिता को आनन्द प्रदान करता था। जैसे भक्ति करते हुए (पितरों में श्रेष्ठ) अर्यमा आनन्द प्रदान करता था।।९४।।

श्रीयामिनीभानुरुदग्रकीर्तिर्भ्रातुर्निदेशे किल वर्तमानः।
सौभ्रात्रलीलां प्रथयन् पृथिव्यां श्रीकृष्णवत्तौ पितरौ धिनोति ।।९५।।

सदा सतीमाश्रयति स्म वृत्तिं शुभाय राज्यस्य विशुद्धबुद्धिः।
स धर्मशास्त्रार्थनिरीक्षणेन नानुक्तमर्थं तनुते हि साधुः ।९६।

युग्मम्

आदाय विद्याः प्रयतश्चतस्रः पित्रा नियुक्तश्च पितामहेन।
विद्यां च शस्त्रस्य रणे कृतार्थां नानागतेर्योधमहप्रदात्रीम् ।।९७।।

अन्वयसमासादिः— उदग्रकीर्तिः = उदग्रा = उन्नता कीर्तिः यस्य सः तथाभूतः श्रीयामिनीभानुः भ्रातुः - वीरसिंहस्य निदेशे = आदेशे किल वर्तमानः पृथिव्यां सौभ्रात्रलीलां = शोभनस्य भ्रातृभावस्य लीलां = व्यापारं प्रथयन् - आचरन् श्रीकृष्णवत् तौ पितरौ = मातापितरौ धिनोति = प्रसादयति।

भाषार्थ— उन्नत कीर्ति वाले श्रीयामिनीभानु अपने भाई वीरसिंह के आदेश में रहते हुए धरती में अच्छे भाई के आचरण को प्रख्यात करते हुए श्रीकृष्ण के समान अपने माता - पिता को प्रसन्न करते थे।।९५।।

अन्वयसमासादिः— विशुद्धबुद्धिः = विशुद्धा = पवित्रा बुद्धिः यस्य स तथाभूतः राज्यस्य शुभाय सदा सतीं वृत्तिम् आश्रयते स्म। स साधुः धर्मशास्त्रार्थ = धर्मशास्त्राणाम् अर्थस्य निरीक्षणेन = परिज्ञानेन अनुक्तम् अर्थं न तनुते = न विस्तारयतीत्यर्थः।

भाषार्थ— वह पवित्र बुद्धि वाला अपने राज्य के कल्याण के लिये सदा अच्छी वृत्ति का आश्रय लेता था। वह साधु धर्मशास्त्र के अर्थों के परिज्ञान के द्वारा (धर्मशास्त्रों में) न कहे गए अर्थ को नहीं बढ़ाता था।।९६।।

अन्वयसमासादिः— सः प्रयतः = आत्मसंयमी, नानागतैः योध...= योद्धृभ्यः महस्य = सम्मानस्य प्रदात्रीं रणे कृतार्थां = साफल्याधायिकां शस्त्रस्य विद्यां चतस्रः विद्याः- आन्वीक्षिक्यादीन् आदाय पित्रा पितामहेन च (विभिन्नकार्येषु) नियुक्तः = नियोजितः।

गोसाइनीत्याहितनामधेयामुदारशीलां मितमध्यवाचम् ।
श्रीवीरभानुः परिणीतवांस्तां वशंवदां हैहयवंशजाताम् ।।९८।।

इत्थं नृपः सर्वशुभानि पश्यन्ननन्द लोके नयवर्तिचेताः ।
वृद्धत्वमापच्च रवेः सुतायां ततो जहाति स्म तनुं नृसोमः ।।९९।।

भाषार्थ— वह आत्मसंयमी विभिन्न योद्धाओं को सम्मान प्रदान करने वाली तथा युद्ध में सफलता देने वाली शस्त्र विद्या को तथा आन्विक्षिकी आदि चार विद्याओं को प्राप्त करके पिता तथा पितामह के द्वारा (विभिन्न कार्यों में) लगाया गया।

अनुशीलन— शास्त्रों में आन्विक्षिकी = अनुमानविद्या, त्रयी = ऋक्, यजु तथा साम ये ३ वेद, वार्ता = व्यापारविद्या तथा दण्डनीति = राजनीति ये ४ विद्याएं बताई गयीं हैं। इनकी ओर ही यहाँ संकेत है।।९७।।

अन्वयसमासादिः— श्रीवीरभानुः गोसाइनी इति आहित...= आहितः = संरक्षितः नामधेयः यस्याः तथाभूताम् उदारं शीलं यस्याः तथोक्तां मित...= सम्मिता मध्या वाग् यस्याः तथाभूतां वशंवदां = वश्यां हैहयवंशे जाताम् = उद्भवाम् परिणीतवान् = विवाहितवान्।

भाषार्थ— श्री वीरभानु ने गोसाइनी नाम वाली, उदार स्वभाव वाली, उचित तथा मध्य वाणी बोलने वाली, वश में रहने वाली हैहय वंश में उत्पन्न होने वाली के साथ विवाह किया।।९८।।

अन्वयसमासादिः— इत्थं नयवर्तिचेताः = नये = राजनीतौ वर्तमानं चित्तं यस्य स तथाभूतः नृपः - शालिवाहनः लोके सर्वशुभानि पश्यन् ननन्द, वृद्धत्वं = जरावस्थाम् आपत् = प्राप्नोच्च। ततः नृसोमः = ना = नरः सोमः = चन्द्र इव रवेः सुतायां = यमुनायां तनुं -शरीरं जहाति स्म।

भाषार्थ— इस प्रकार राजनीति में वर्तमान चित्त वाले राजा शालिवाहन नें सभी शुभ कार्यों का दर्शन करते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त किया। इसके पश्चात् चन्द्र के समान इस राजा ने यमुना में शरीर का त्याग किया।।९९।।

अथ पितरमखिन्नः श्लाघ्यमुद्दिश्य कर्तुं
विधिविविधनिवापं वीरसिंहः क्रमज्ञः ।
सुतकृतदृढबुद्धिः सृज्यते स्म स्वभक्त्या
न च तनयनिवापे सुस्पृहस्तीर्थमृत्युः ।।१००।।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्संजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते ।

अन्वयसमासादिः— अथ अखिन्नः = अदुखितः, क्रमज्ञः = क्रमं जानाति इति तथाभूतः वीरसिंहः पितरं - शालिवाहनं, श्लाघ्यं = श्लाघनीयं, विधिविविधनिवापं = विधिना = नियमेन विभिन्नप्रकारकं पितृतर्पणम् उद्दिश्य सृज्यते स्म = प्रकरोति स्म। तीर्थमृत्युः = तीर्णः मृत्युः येन सः, सुत...= सुते - वीरभानौ कृता दृढ़बुद्धिः स्वभक्त्या न तनयनिवापे - सर्वथा तनयनिवापाभावे, दीर्घायुष्ये इत्यर्थः, सुस्पृहः - इच्छां विदधाति स्म।

भाषार्थ— अब दुःख से रहित अर्थात् प्रकृतिस्थ, क्रम को जानने वाले वीरसिंह ने पिता शालिवाहनं का विधिविधानपूर्वक पितृतर्पण का कार्य आरम्भ किया। उस मृत्यु को पार करने वाले ने तथा पुत्र वीरभानु के प्रति दृढ़ आस्था वाले राजा ने तनयनिवाप के सर्वथा विपरीत-पुत्र के दीर्घायुष्य की कामना की।।१००।।

अन्वयसमासादिः— ऊरव्यः - कायस्थः, एधितयशाः = वर्धितं यशः यस्य स तथाभूतः, साधुभ्यः प्रियः यः अभयचन्द्रः भाति -शोभते, तत्संजात ...= तस्मात् संजातम् = उत्पन्नं कलेवरं = शरीरं यस्य तस्य तथोक्तस्य, सुधियः = बुद्धिमतः श्रीमाधवस्य अर्चिते = सुपूजिते, स्वात्मगत...= स्वात्मना कृता प्रमेयस्य रचना यस्य तथाभूते काव्ये सर्वज्ञस्य श्रीवीरभानुप्रभोः शुभ-चरित्रवर्णनविषये आद्यः प्रथमः सर्गः अभवत्।

काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गोऽयमाद्योऽभवत्।।१०१।।

भाषार्थ— प्रवर्धित यश वाले, साधु या अच्छे लोगों के प्रिय कायस्थ जो अभयचन्द्र शोभित हैं, उनसे प्राप्त शरीर वाले, बुद्धिमान् श्री माधव के सुपूजित स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य का, श्री वीरभानु राजा के चरित्र वर्णन विषय वाला यह प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।।१०१।।



द्वितीयः सर्गः।

श्रीवीरसिंहस्तदनन्तरं स प्रापत्सुधी राजपदं सुखानि।
प्रजासु तन्वन् सुखितां सुधन्वा परानपेक्षश्च भुवं ररक्ष ।।१।।

कुलकम्

रमाभजानिः कमनीयवाणिः शोणाङ्घ्रिपाणिः कृतशत्रुहानिः ।
अनन्तसेनः प्रभया जितेनः पृथ्वीपतीनः पृथुवत्कुलीनः २।

भयङ्करैर्भूपगुणैः समीपं गन्तुं न शक्यो नृपरम्यधर्मैः ।
शक्यः समीपं व्रजितुं भुजिष्यैः पिनाकितेजाः प्रथमावलेपैः ।।३।।

द्वितीय सर्ग

उसके पश्चात् उस बुद्धिमान् श्री वीरसिंह ने प्रजाओं में सुख का विस्तार करते हुए राजपद को प्राप्त किया। अन्य की अपेक्षा न रखने वाले उस धनुर्धारी ने सुखी धरती की रक्षा की।।१।।

वह रमा के सदृश पत्नी वाला, मधुर वाणी, बोलने वाला, रक्त चरण हस्त वाला, शत्रु का विनाश करने वाला, विशाल सेना वाला, बुद्धि से बल को जीतने वाला, पृथ्वी का पालक तथा स्वामी तथा पृथु के समान कुलीन था।।२।।

राजसी धर्म रखने वाले, भयानक राजा उसके पास नहीं फटक सकते थे। पर (दूसरी ओर) सामान्य नौकर भी उसके सामने पहँच सकते थे। यह युद्ध के संसर्ग से पिनाकी शिव के समान तेज वाला था।।३।।

वशी विवस्वानिव वश्यविश्वो महत्तरः प्राणिसरोजबन्धुः ।
कलाप्रवीणः कलितार्घ्यवेषः समस्तविद्याभिरतिस्तरस्वी ।।४।।

ब्राह्मे मुहुर्ते गतनिद्र एव श्रीवासुदेवस्मरणप्रसक्तः ।
शमे रतः सर्वजनानुरक्तोऽहितायितोपद्रवतोऽप्रकम्पः ।।५।।

वदान्यबन्धुः वदतां वरेण्यो वराननो बाहुबलप्रतिष्ठः ।
बुधैर्विभातो विहितप्रकाशो बुधः स यातो वसुधामिवासौ ।।६।।

स राजयामास युवा गहोरां चतुर्दिशा राजितराजमार्गाम् ।
प्रासादजातैर्जनितप्रसादैर्जेतुं पुरीं भोगवतीमिवेच्छुम् ।।७।।

यस्याः समीपे प्रतिमागृहेषु कौबेरचण्डीगिरिशा जयन्ति ।

वह स्वयम्भू, सूर्य के समान विश्व को अपने वश में रखने वाला, अत्यन्त महान् प्राणिरूपी कमल का बन्धु; कलाओं में प्रवीण, स्तुत्य वेश को धारण करने वाला, सभी विद्याओं का प्रेमी तथा महाशक्तिशाली था।।४।।

वह ब्राह्ममुहूर्त में निद्रा को त्याग कर वासुदेव के स्मरण में लगा रहता था। वह शान्ति में रत रहता था तथा सभी जनता के प्रति अनुरक्त रहता था। वह अहित बनाने वाले उपद्रवों से निश्चल रहता था।।५।।

वह विद्वानों का मित्र था तथा बोलने वालों में सर्वश्रेष्ठ था। वह सुन्दर मुख वाला तथा अपने बाहुबल की प्रतिष्ठा वाला था। वह विद्वानों के द्वारा प्रदीप्त तथा स्वयं प्रकाश करने वाला था। ऐसा लगता था जैसे बुध ही धरती पर पहुँच गया हो।।६।।

उस युवक ने पाताल नगरी को जीतने की इच्छा के समान, अत्यन्त प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले महलों के द्वारा चारों दिशाओं में विभूषित राजमार्गों वाली गहोरा को अलंकृत किया।।७।।

अन्ये च देवाः प्रणतिप्रसन्नाः काश्या इव प्रौढमठावृतायाः ।८।।

कौबेरकेदारशिलोच्चयाद्याः प्रभान्ति यस्याः परितो महीध्राः ।
प्रासादसोपानयुताः सुरार्थं मेरुप्रदेशा इव देवभाजः ।९।

विद्याविदो यत्र विभान्ति विप्रा विमत्सरा वेदविधिप्रवृत्ताः ।
किं ते सुराणामृषयो धरित्र्यां मार्गं शुभं दर्शयितुं समेताः ।१०।

नराश्च नार्यश्च कुलप्रसूता लोकद्वयश्रेयसि न स्खलन्ति ।
यत्र स्थिताः पुण्यमतिं भजन्तः कद्रूतनूजा इव भोगवत्याम्।११।

यन्मध्यभागे नृपमन्दिराणि स्वनाथहर्म्याणि यथा विभान्ति ।
चित्रार्पितान्येकसुरप्रभेदैर्द्युलोकगेहप्रतिकारवन्ति ।१२।

इस गहोरा के समीप मन्दिरों में कौबेर, चण्डी तथा शिव की मूर्तियां विराजती हैं। काशी के मजबूत मठों से घिरे हुए के समान प्रणाम से प्रसन्न अन्य देवगण भी विराजते हैं।।८।।

जिसके चारों ओर कौबेर, केदार तथा शिलोच्चय इत्यादि पर्वत विराजते हैं। जैसे वे महल तथा सीढ़ी आदि के साथ देवताओं के लिये सुमेरु पर्वत हों।।९।।

जहाँ पर मात्सर्य रहित वेदों के विधान में लगे हुए विद्या को जानने वाले ब्राह्मण हैं, क्या उस धरती में शुभ मार्ग को दिखाने वाले देवताओं के ऋषि इकट्ठे नहीं हैं।।१०।।

जिस (गहोरा नगरी में) अच्छे कुल में उत्पन्न, पुण्य कार्य करने वाले नर नारी दोनों लोकों के श्रेय के प्रति स्खलित नहीं होते। जैसे भोगवती या वासुकि नाग के तीर्थ में कद्रू के १०० नागपुत्र (श्रेय का आचरण करते हैं)।।११।।

जिस (गहोरा के) मध्य भाग में राजाओं के मन्दिर अपने राजा के महलों की भांति प्रकाशित होते हैं। (वे मन्दिर) अनेक प्रभेद वाले देवताओं के चित्रों से द्युलोक के गृहों से प्रतिद्वन्दिता रखने वाले थे।।१२।।

यस्यां गजेन्द्राः शिखरिप्रमाणा राजन्ति राज्ञः शतशश्च मत्ता ।
ते स्पर्धयेवाभ्रमुबल्लभस्य विशालकुम्भाञ्चितयातवन्तः ।।१३।।

युग्मम्

यत्राश्वशालाः सुतरां विशालाः क्षितीशगेहान्यभितो विभान्ति ।
विचित्रभङ्गीकृतकान्तिभाजस्त्वष्ट्रैव किं ता विहिता द्युलोकात् ।।१४।।

तास्वप्रमेया जववजातदर्पाः सुलक्षणा राजवनायुदेश्याः ।
आरुह्य यान् जिष्णुजना नृपस्य विश्वं वशीकर्तुमलं जिगीषोः १५।

जयन्ति यस्यां विविधाश्ववाराः स्वनत्तुरङ्गाभरणाभिरामाः ।
एकाकिनो येऽमितयोधयुद्धाः रणाङ्गणप्राप्तयशःप्रपञ्चाः ।१६।

जहाँ पर राजा के सैकड़ों पर्वत के प्रमाण वाले मतवाले हाथी विराजते हैं। वे विशाल मस्तक से युक्त लम्बे परिमाण वाले मानों आसमान से स्पर्धा करते हैं।।१३।।

जहाँ राजा के महलों के दोनों ओर अपनी विचित्र भंगिमा से युक्त कान्ति वाली विशाल घुड़साल विराजती है। ऐसा लगता था जैसे द्युलोक से आकर देवताओं के शिल्पी त्वष्टा ने ही उसे बनाया हो।।१४।।

उन अश्वशालाओं में अप्रमेय, अपने महावेग से उत्पन्न दर्प वाले, अच्छे लक्षणों वाले वनायु देश के (अनेक घोड़े थे)। जिन पर चढ़ कर जीतने की इच्छा वाले, राजाओं को जीतने वाले लोग विश्व को वश करने में समर्थ होते हैं।।१५।।

जिस (गहोरा नगरी में) आवाज करते हुए घोड़ों के आभूषण से सुन्दर, अतुल पराक्रम से युद्ध करने वाले, अकेले अनेक प्रकार के घुड़सवार युद्धभूमि में अनेक यश प्राप्त करने वाले होते हैं।।१६।।

पदातयो यत्र विराजमाना हरन्ति लोकस्य मनः सुशस्त्राः ।
स्वर्लोकतः क्रीडितुमत्र याताः सुरा इवानेकविधाः प्रवेषाः। १७।

विभान्ति यत्राटविकाः सकाण्डैर्धनुर्भिरत्रांचितनाविकाश्च ।
वन्या विदग्धास्तरिपण्डिता ये कुर्वन्ति शत्रूनपि तत्र लभ्यान् । १८।

क्रीडन्ति यत्र स्फुटवारिजाक्ष्यः प्रियैः कृताज्ञाः स्मरतन्त्रविज्ञैः ।
पीनोन्नतश्रोणिःकुचाः पिबद्भिस्तदाननं पार्वणचन्द्रमुख्यः ।।१९।।

गायन्ति यस्यां सुदृशः समन्तान्मञ्जु द्युलोकादिव देवनार्यः ।
समागताः श्रीवदना गहोरा सुखानि भोक्तुं दिवि दुर्लभानि ।।२०।।

जहाँ शस्त्रों से सुसज्जित पैदल सैनिक विराजते हुए लोगों के मन को हर लेते हैं। ऐसा लगता है कि अनेक प्रकार के विशिष्ट वेश वाले देवता ही स्वर्गलोक से यहाँ क्रीडा करने के लिये आए हैं।।१७।।

जहाँ पर अपने बाणों से युक्त धनुष द्वारा वनवासी लोग तथा अन्य कुशल वन्य लोग, अपने व्यवसाय में लगे नाव की रक्षा करने वाले लोग तथा नाव के पण्डित मल्लाह लोग शत्रुओं को भी लभ्य या जीतने योग्य बना देते हैं।।१८।।

जहाँ पर काम को जानने वाले तथा प्रेयसियों के मुख के रूप को पीने वाले प्रियतमों से आज्ञा प्राप्त करने वाली, खिले हुए कमल के समान आँखों वाली, स्थूल तथा उन्नत नितम्ब तथा स्तनों वाली, बढ़ते चन्द्र के समान मुख वाली स्त्रियाँ क्रीडा करती हैं।।१९।।

जहाँ पर सर्वथा सुन्दर आँखों तथा सुन्दर मुख वाली स्त्रियां सुन्दर गीत गाती हैं। जैसे द्युलोक में दुर्लभ गहोरा के सुख को प्राप्त करने के लिये देवनारियाँ आयी हों।।२०।।

गन्ता नदी यत्र चकास्ति चङ्गा तरङ्गबन्धैर्जितमानसेव ।
मरालचक्रादिपतङ्गनीरा वानीरशाखापिहितप्रतीरा ।।२१।।

या केवयी सूर्यसुताप्तसङ्गा प्रवर्धमानामृततोयरम्या ।
वेणीपदं धर्तुमिह क्षमाऽऽस्ते सरस्वती धीरवती समेता ।।२२।।

श्रीमल्लिनाथान्वयसंभवानामुन्नाय शब्दं दधतां महार्घाः ।
उच्चैः पयोदा इव भान्ति यस्यां गृहाः सचित्राश्चलकेतुमालाः ।२३।

तथोषिताः श्रीबहुला यथा स्युर्न तत्समृद्धिः कविनाऽपि वर्ण्या ।
साकेतवासा इव रामराज्येऽमरावतीस्था इव यत्र लोकाः ।।२४।।

वायव्यकोणे च विभाति यस्याः सुधोदकं निम्नमुरूर्मिबन्धम् ।
राज्ञीसरः किं यश एव तस्या मूर्तं बृहद्राजलमल्लदेव्याः ।।२५।।

जहाँ पर अपनी तरंगों से मानसरोवर को भी जीत लेने वाली, मराल या हंस आदि पक्षियों से युक्त जल वाली तथा वानीर या एक प्रकार की बेंत के द्वारा अवरुद्ध किये गये तट वाली गन्ता नदी सुशोभित होती है।।२१।।

जहाँ पर वेणी पदवी को धारण करने में सक्षम, सुन्दर जल वाली धीरवती नदी के सहित यमुना में मिलने वाली, अपने बढ़ते हुए अमृतमय जल से रमणीय केवयी नदी विराजती है।।२२।।

जहाँ पर मल्लिनाथ के वंश में उत्पन्न होने वाले तथा जोरों से भजन करने वाले लोगों के अत्यन्त बहुमूल्य तथा चित्र एवं हिलती हुई ध्वजमालाओं वाले घर उन्नत मेघ के समान सुशोभित होते हैं।।२३।।

वहाँ पर रहने वाले लोग इतने धन से समृद्ध थे कि उनकी समृद्धि कवि के द्वारा वर्णित नहीं की जा सकती। जैसे राम के राज्य में साकेतवासी लोग थे या अमरावती में रहने वाले लोग जिस प्रकार के थे, वैसे ही लोग यहाँ थे।।२४।।

जिसकी वायव्य दिशा में अत्यन्त विस्तृत तरंगों वाला गहरा अमृतमय तालाब सुशोभित होता था। वह राजलमल्लदेवी नामक रानी का साक्षात् यश ही था।।२५।।

यस्याः प्रतीच्यां नृपवीरमस्य पद्माकरो राजति राजदब्जः ।
यादोभिरासादिततीव्रभावो मरालरत्नै रुचिरः किमब्धेः ।२६।

उद्यानमुद्यत्कलकण्ठिनादं यत्रावनीशस्य विभाति सार्धम् ।
वापीभिरग्र्यावरणाभिरब्जैः सुगन्धिवार्भिः शुभदिक्प्रदेशे।२७।

दिशासु यस्यां महतां जनानामाराम आराद्विपुलं चकास्ति ।
विशेषतस्तत्र सदोषितानामुन्नायशब्दं भजतां च वाटी ।२८।

यत्राटवी भाति विदिक्षु दिक्षु मृगादिकान्ता ह्लदपूर्णभूमिः ।
मृगव्ययोग्या मृगयासुखानि श्रीवीरसिंहोऽनुबभूव यस्याम् ।२९।

वाराङ्गना यत्र दिवापि षिद्धिः क्रीडन्ति रात्राविव साधुहावाः ।

जिसके पश्चिम दिशा में राजा वीरमदेव का खिले हुए कमलों वाला तालाब विराजता था। जहाँ पर जलजन्तु तीव्र गति से भागते थे तथा हंसों के कारण क्या वह समुद्र से भी सुन्दर नहीं था।।२६।।

जहाँ पर राजा की शुभ दिशाओं में नये आवरण या कलियों से युक्त कमल वाले तथा सुगन्धित जल वाले वापी या छोटे तालाबों के साथ उड़ती हुई कोयल के निनाद वाले उद्यान सुशोभित होते हैं।।२७।।

जिस (गहोरा नगरी की) विभिन्न दिशाओं में बड़े बड़े लोगों के घर के समीप विस्तृत उद्यान सुशोभित होते हैं। विशेषतः वहां सदा निवास करने वाले तथा जोरों से हरिभजन करने वालों के लिये बाड़ी सुशोभित होती है।।२८।।

जहाँ की विभिन्न दिशाओं, प्रदिशाओं में हिरनों से सुन्दर तथा सुन्दर तालाबों वाले जंगल दिखाई पड़ते हैं। जिस शिकार योग्य स्थानों पर श्री वीरसिंह ने शिकार का आनन्द प्राप्त किया था।।२९।।

जहाँ पर सुन्दर हाव भाव वाली वारांगनाएँ रात के समान दिन में भी, महलों के समान सुन्दर बगीचों में, कोपल तथा फूलों वाले सुसज्जित बिछौनों में क्रीडा करती हैं।।३०।।

कुञ्जेषु हर्म्येष्विव मञ्जुलेषु प्रवालपुष्पास्तरणार्चितेषु ।३०।

अथ प्रतस्थे द्विषतां जयाय श्रीवीरसिंहः समयं समीक्ष्य ।
रामो यथा शक्र इव त्रिशक्तिः पूरुर्यथा रक्षितमूलदेशः ।३१।

ततो निमित्तानि नृपस्य चित्तमाह्लादयामासुरुवाह मन्दम् ।
पश्चात् मरुत्पुष्पलताः प्रकम्प्य गंङ्गा नदी चंगतरङ्गशीतः ।३२।।

वेदध्वनिर्मन्त्रिसमः प्रपेदे राजश्रुती किं कथयांबभूव ।
दुष्टान् रिपूंस्त्वं विजयस्व साधो ततः सुखं स्थास्यति जीवलोकः ।३३।।

दध्वान भेरी रुचिरं पुरस्तात् कम्बुर्गभीरं च ननाद ढक्का ।
वीणां कलं वादयति स्म विज्ञो नृपेण पूर्णो ददृशे च कुम्भः ।३४।

अब श्री वीरसिंह ने उचित समय देखकर शत्रुओं की विजय के लिये प्रस्थान किया। जैसे वे शक्रसदृश राम हों अथवा अपने निज स्थान की रक्षा करने वाले शिवतुल्य पुरु हों।।३१।।

इस समय अनेक शुभ लक्षणों ने राजा के चित्त को प्रसन्न किया। चंचल तरंगों से शीतल गन्ता नदी ने वायु के द्वारा पुष्पलताओं को धीरे धीरे हिला कर अन्त में उन्हें धारण किया।।३२।।

उस समय मन्त्रियों के साथ वेदध्वनि प्रारम्भ हुई। राजाओं की मंगलध्वनि का तो कहना ही क्या। (उन्होंने कहा कि) ए साधु राजन्! तुम दुष्ट शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। तभी प्राणिजन सुख से रह सकेंगे।।३३।।

उस समय सामने बहुत सुन्दर भेरी बजी। चितकबरा ढक्का याने बड़े ढोल ने गम्भीर आवाज किया। जानकार लोगों ने वीणा की मधुर आवाज बजाई तथा राजा के द्वारा पूर्ण कुम्भ में (अपना प्रतिबिम्ब) देखा गया।।३४।।

इडा चचालास्य शशिप्रतिष्ठा सा दूरयानाय शिवा चलन्ती ।
अतो नृपेणाशु निहन्तुमिष्टा दूरस्थिताः शत्रुगणा द्रवन्तः।।३५।।

स राजमार्गे विरराज गच्छन् पौरात्मजाभिः कृतलाजवृष्टिः ।
जेतुं रिपून् यन्निव कंसशत्रुर्मनोहरालङ्कृतिभिः शुभंयुः ।।३६।।

श्रीमान् स चालोकि नृपो गहोरानिवासिभिश्चन्द्र इव प्रसन्नः ।
दूरं प्रयातेऽपि नृपाधिराजे न दर्शनेच्छा शिथिलीबभूव ३७।

चलत्पताकानि बलानि वीरमथान्वया रेणुभिरन्तरिक्षम् ।
आच्छादयन्ति स्फुरितायुधानि ब्रध्नस्य रश्मिप्रकरैरनिन्द्यैः ।३८।।

अथो गहोरा विरराज सैन्यैः समन्ततः शस्त्रधरैः प्रयातैः।
तथा यथा द्वारवतीप्रयाणे यदूद्वहस्य प्रतिपन्नभूतिः ।३९।।

इस समय चन्द्र के समान प्रतिष्ठित धरती प्रकम्पित हुई। सियारी (राजा के) दूर प्रयाण के (लक्षण के रूप में) चलती दिखाई दी। इसलिये राजा ने दूर रहने वाले भयभीत शत्रुओं के विनाश की इच्छा की।।३५।।

वह राजमार्ग में चलता हुआ नगर की पुत्रियों के द्वारा की गई लावा की वर्षा के द्वारा सुशोभित हुआ। जैसे सुन्दर अलंकारों से युक्त सुशोभित कंसशत्रु कृष्ण शत्रुओं को जीतने के लिये जा रहे हों।।३६।।

गहोरा निवासी चन्द्र के समान प्रसन्न इस श्रीमान् को देखते रहे। राजाधिराज के दूर चले जाने पर भी इन लोगों की देखते रहने की इच्छा कम नहीं हुई।।३७।।

चंचल पताकाओं वाले सैनिक तथा अन्य सेवक परिजन इस वीर को घेर रहे हैं। साथ ही सूर्य की प्रशंसित किरणों से चमकने वाले हथियार धूलि समूह से आकाश को ढक रहे थे।।३८।।

इस समय गहोरा नगरी चारों ओर शस्त्रधारी सैनिकों के प्रयाण के द्वारा सुशोभित हुई। जिस प्रकार कुल को शान्ति देने वाले श्रीकृष्ण के द्वारका की ओर प्रयाण के समय शोभा हुई थी।।३९।।

यथाव वाचीमथ संयुतोऽसौ रिपुव्रजोच्छेदनलब्धवर्णः ।
प्रापत्तदल्पेतरदर्थगाढः श्री विक्रमादित्यपुरं च खड्गी ।।४०।।

तं विक्रमादित्यनृपः प्रपेदे युद्धाय चोन्मत्तकरीन्द्रयूथः ।
योधाग्रणीभिः परिहारजातैर्वृतो मरुत्वानिव देवजातैः ।।४१।।

अथाश्ववारा ययुरश्ववारान् पदातयः पत्तिगणान्निहन्तुम् ।
आधोरणा हस्तिपकान्निजघ्नुर्युद्धं बभूवेत्थमतीव घोरम् ।४२।

ढक्का जगर्जोभयतो गभीरं भृशं युयुत्सून्प्रति दत्तहर्षाः ।
यथोदधिर्गर्जति गोत्रमन्थो यथाऽम्बुदो वीरमवीरभीतिः ।४३।।

तिष्ठ स्थिरोऽस्मीत्यभिधाय योधाः स्वानृण्यमापुर्मृधविक्रमेण ।
नृपात्कृतानन्तसुखाद्रणाग्रे त्यक्त्वा तनुं केचिदवापुरीशम् ।।४४।।

उस शत्रुओं के विनाश में प्रसिद्ध उस राजा ने सेना से अपनी सलाह मशविरे की वाणी को जोड़ा। पुनः अल्पेतर अर्थात् बहुत विषयों में प्रतिपन्न, तलवार वाला वह राजा विक्रमादित्यपुर पहुँच गया।।४०।।

तब मतवाले बड़े हाथियों के झुण्ड वाला विक्रमादित्य राजा युद्ध के लिये बाहर आया। वह देवकुल में उत्पन्न लोगों से घिरे हुए इन्द्र के समान, युद्ध में अग्रगामी परिहार वंशी सैनिकों से घिरा हुआ था।।४१।।

अब घुड़सवार सैनिक घुड़सवारों को तथा पैदल सैनिक प्रतिद्वन्दी पैदल सैनिकों को मारने के लिये आपस में भिड़ गये। उस समय महावतों ने प्रतिद्वन्द्वी महावतों को मारा। इस प्रकार बहुत भयंकर युद्ध हुआ।।४२।।

दोनों ओर से गम्भीर ढोल बजे। युद्ध की इच्छा करने वाले सैनिकों के प्रति लोग खूब हर्षित हुए। जैसे समुद्र गरजता है, अथवा जैसे मेघ गरजता है, उसी प्रकार वीरमदेव वीर के गोत्र के पराक्रम का डर हुआ।।४३।।

योद्धाओं ने - 'खड़े रहो, मैं यहीं स्थिर हूँ' ऐसा कहते हुए युद्ध के पराक्रम से अपने को उऋण बनाया। अपने राजा से अनन्त सुख पाकर युद्धभूमि में कुछ लोग अपने शरीर को छोड़कर ईश्वर को प्यारे हो गये।।४४।।

श्रीवीरसिंहस्य बलेन शौर्यात् श्रीविक्रमादित्यचमूर्विजिग्ये।
जितां स्वसेनां महतीं विलोक्य स्वयं जगामाथ रणाय धन्वी ।।४५।।

श्रीवीरसिंहस्य बलं ममन्थ श्रीविक्रमादित्यनृपस्तरस्वी ।
गजैर्हयैः पत्तिभिरावृतोऽसौ स साहसाङ्कः किमु भूय आसीत् ।।४६।।

प्रमथ्यमाना युयुधेऽस्य सेना सा विक्रमार्केण निराकुलेन।
रामस्य सेनेव निशाचरेण मायाविना शस्त्रविदा विदीर्णा ।।४७।।

तथाविधां स्वां स समीक्ष्य सेनां श्रीविक्रमादित्यमियाय कोपात्।
तस्यायतं शौर्यविधिं विधूय जिगाय तं विक्रमभूमिपालम्।।४८।।

ततो गहोरामिव देशयुक्तां जितां पुरं चैत्यनरोऽभिधानाम् ।
स भासयामास वणिक्पथेन मनोरमां सर्वपदार्थभाजाण ।४९।।

श्री वीरसिंह (के सैनिकों ने) अपने शौर्य के कारण बल से विक्रमादित्य की सेना को जीत लिया। धनुर्धारी (विक्रमादित्य) अपनी सेना को हारा हुआ देखकर स्वयं युद्धभूमि को पहुँचा।।४५।।

शक्तिशाली श्री विक्रमादित्य राजा ने श्री वीरसिंह की सेना को मथ डाला। हाथी, घोड़े तथा पैदल सैनिकों से घिरा हुआ वह विक्रमादित्य क्या उन पर भारी नहीं था।।४६।।

बिल्कुल न डरने वाले विक्रमादित्य के द्वारा कुचली जाने वाली इस वीरसिंह की सेना ने युद्ध किया। जिस प्रकार निशाचर, मायावी शस्त्रविद् (इन्द्रजित्) के द्वारा राम सेना विदीर्ण कर डाली गई थी।।४७।।

वीरसिंह अपनी सेना की इस प्रकार की दशा देखकर बड़े क्रोध से विक्रमादित्य के पास पहुँचा। उसके विस्तृत शौर्य विधान को हिला कर उसने विक्रमादित्य को जीत लिया।।४८।।

तब गहोरा के समान स्थानों से परिपूर्ण मनोरम, सभी उत्तम पदार्थों के योग्य उस चैत्य नरो नाम वाली नगरी को जीतकर वह व्यापार मार्ग से सुशोभित हुआ।।४९।।

या कोट्टचक्रेण चकास्ति दीर्घा श्रीवीरसिंहेन विधापितेन।
यक्षाधिराजस्य पुरीव पुण्या माहिष्मती वोज्जयिनीपुरीव ।।५०।।

या भ्राजते वाटिकया नृपस्य वापीयुजा पुष्पफलप्रवृद्ध्या।
मातेव शुद्धप्रजया पवित्रा धरा सुराणां सरितेव साध्व्या ।५१।

पतिव्रताभिर्निलया यदीया देदीप्यमाना जगतो हरन्ति।
चेतांसि सर्वेऽपि गृहा न ताभिर्विना भुजङ्गैरिव सङ्गभाजः।।५२।।

यदीयहट्टो मृगलोचनानां मञ्जीरझङ्काररवेण रम्यः ।
जेह्रीयते मन्दगतिप्रसूनां लोकस्य दृश्यस्य विशेषकाणाम् ।।५३।।

यत्रोष्यते कान्तकथैर्विदग्धैर्जनैर्नृपाज्ञाद्रविणैः प्रकृष्टैः ।
इन्द्रस्य पुर्यामिव देववृन्दैरधर्मवैमुख्यविरोचमानै ।।५४।।

जिस प्रकार श्री वीरसिंह द्वारा बनाए गये दुर्गसमूह से यह सुविस्तृत (गहोरा नगरी) सुशोभित होती है। वैसे ही यह यक्षाधिराज की पुण्य नगरी के समान अथवा माहिष्मती या उज्जयिनी नगरी के समान यह (नरो नगरी) सुशोभित होती है।।५०।।

यह छोटे तालाबों से युक्त, फूल फल की बहार वाले राजा की वाटिका से प्रकाशित होती है। यह देवताओं की भूमि शालीन नदी के समान अथवा माता के समान शुद्ध प्रजाओं के द्वारा पवित्र थी।।५१।।

जहाँ के घर पतिव्रताओं से सुशोभित होकर लोगों के मन को हर लेते हैं। जिस प्रकार साँपों के साथ अन्य साँप रहते ही हैं, उसी प्रकार सभी घर पतिव्रताओं से वियुक्त नहीं थे।।५२।।

हिरन के समान आँखों वाली युवतियों के मजीरे की झंकार से सुरम्य इस नगरी का बाजार मन्द गति उत्पन्न करने वालों के तथा दृश्य को विशिष्ट बनाने वाले लोगों के मन को हर लेता था।।५३।।

जहाँ पर, राजा की आज्ञा ही जिनका धन है ऐसे प्रकृष्ट सुन्दर कथा करने वाले विद्वान् लोग रहते हैं। जैसे इन्द्र की पुरी में अधर्म से विमुखता से सुलक्षित देवगण विराजते हैं।।५४।।

परम्पराभिः परितः परीता प्रासादजातस्य विराजते या ।
साक्षादिव स्वः समुपेतमस्यां श्रीवीरसिंहस्य विशालधर्मैः ।।५५।।

तस्यां जयन् स प्रतिपक्षहन्ता रराज राजा रचितप्रमोदः ।
गढापतिं जेतुमगाच्च वीरः सेनावृतः शक्र इवाद्रिवर्गम् ।।५६।।

नरो नगर्यामुषितं नृपेण यावन्नयज्ञेन जगर्ज तावत् ।
गढापतिस्तस्य पुनः प्रयाणं श्रुत्वा दिशः सेवितवान् स भीतः ।।५७।।

पत्यौ गढायाश्च पलायमाने कृत्वा यशःपुञ्जमदभ्रकीर्तिः ।
कालं कियन्तं किल नर्मदायां स्नात्वा जगाम स्वनरो पुरीं सः।।५८।।

श्रीबान्धवाख्यं स ततश्च दुर्गं जग्राह भेदेन विनीतविश्वः।
नारायणाख्यान्नृपतेः कुरूणां वितीर्णदिशः परकौरवाय ।।५९।।

जो चारों ओर महलों की कतारों से युक्त थी। वहाँ पर श्री वीरसिंह के विशाल धर्माचरण से साक्षात् स्वर्गलोक जुड़ गया था।।५५।।

शत्रुओं का विनाशक वह राजा जीतने के पश्चात् वहां पर आमोद प्रमोद की रचना करते हुए वहाँ विराजता रहा। पश्चात् वह वीर सेना के साथ आवृत होकर गढ़ा के राजा को जीतने के लिये चला। जैसे इन्द्र पर्वत की यात्रा करे।।५६।।

उन नीतिज्ञ नृप ने तब तक नरो नगरी में निवास किया, जब तक युद्ध की गर्जना नहीं की। पुनः डरा हुआ गढ़ा का राजा उसके प्रयाण को सुनकर अन्य दिशाओं की ओर भाग गया।।५७।।

गढ़ा के राजा के भाग जाने पर वह यशस्वी, जिसकी कीर्ति कभी नहीं दबती थी ऐसा राजा वीरसिंह कुछ दिन तक नर्मदा में स्नान करने के पश्चात् अपनी नरो नगरी में लौट आया।।५८।।

पश्चात् उस विश्व को विनीत कर देने वाले (राजा वीरसिंह ने) अन्य कौरवों के लिये देश का वितरण करने वाले नारायण नामक राजा से कूटनीति से बान्धव नामक दुर्ग को हस्तगत कर लिया।।५९।।

दुर्गे स तस्मिन् मुमुदे नृपालो वसन् सदारः ससुतः ससैन्यः ।
देशं तदीयं कृतवान् निहत्य शत्रून्निवेशस्पृहलोकजातम् ।।६०।।

तत्र स्थितं ये कुरवः कदाचित्तं कोपयाञ्चक्रुरनल्पयत्नम् ।
तान् सोऽतिथीन् कारितवान् यमस्य प्रधानसार्थेन तथान्ययोधैः ।।६१।।

स कण्टकान्नीतिविदां वरिष्ठोऽवतीर्य तस्मान्निजघान भूयः ।
देशस्य सर्वस्य रराज तिष्ठन् गङ्गातटस्थे नगरेऽप्यलर्के ।६२।

दिल्लीपुरीस्वामिभिरस्य पूर्वे सन्धिं प्रचक्रुः सततप्रमत्तैः ।
म्लेच्छाधिराजैरिति सोयमृद्ध्यै दिल्लीपुरीशेन चकार सन्धिम् ।।६३।।

विभूतिमस्माद्विहिता प्रवादा विनाशमन्ये च नृपा अवापुः ।
यतः स तेषां प्रलयाग्नितुल्यः शशिप्रभोऽभूदितरेषु जिष्णुः ।।६४।।

वह राजा वीरसिंह अपनी रानियों, पुत्रों तथा सैन्यबल के साथ उस दुर्ग में रहते हुए प्रसन्न हुआ। उसने शत्रुओं का विनाश करके उस देश को ऐसा बनाया ताकि लोगों को वहां रहने की स्पृहा उत्पन्न हो सके।।६०।।

वहाँ कभी जिन कुरुओं ने वहाँ पर स्थित, महान् पराक्रमशील इस राजा को कुपित किया उनको उसने प्रधान साथियों के साथ अन्य योद्धाओं के द्वारा यम का अतिथि बनवा दिया।।६१।।

उस नीतिज्ञों में श्रेष्ठ राजा ने उस कण्टकपूर्ण प्रदेश से उतर कर (शत्रुओं को) खूब मारा। पुनः सभी देशों से सुन्दर गंगा तट में स्थित अलर्क नामक नगर में रहते हुए सुशोभित हुआ।।६२।।

इससे पूर्व के बघेल नरेशों ने सदा सावधान, दिल्ली पुरी के म्लेच्छ राजाओं से सन्धि की थी। अतः इसने भी वृद्धि के लिये दिल्ली पुरी के स्वामी से सन्धि किया।।६३।।

जिन्होंने इस राजा से व्यर्थ प्रवाद किया वे तथा ऐसे अन्य राजा विनाश को प्राप्त हुए। क्योंकि यह विजेता इनके लिये प्रलयकालीन अग्नि के समान सिद्ध हुआ। पर अन्य (अच्छे लोगों के लिये) चन्द्रकिरणों के समान शीतल था।।६४।।

यदा नृपो रत्नपुरस्य दर्पान्न शासनं मूर्धनि वीरसिंहम् ।
आदत्तवांस्तं स तदा विजित्य करं च तस्माद्बहुधा भयार्तात् ।। ६५ ।।

युग्मम्

जिता गढा रत्नपुरेण साकं जितो डहारः सहजोरदेशः ।
जिताश्च सर्वे परिहारराजाः श्रीबान्धवाख्यं जगृहे च दुर्गम् ।। ६६ ।।

जितो भराणां नृपतिर्नृशंसः श्रीवीरसिंहेन निजप्रतापात् ।
अत्राद्भुतं किं नयलीनचित्तात्तस्माद्भियं प्राप स बब्बरोऽपि ।। ६७ ।।

अन्यांस्तथैतान् स बहुं च कोशं जित्वा रिपून् प्रीतमनाश्चकार ।
दानानि सर्वाणि ददौ च वेदविधानतः श्रोत्रियमण्डलेभ्यः ।। ६८ ।।

विश्वं बघेलान्वयपुण्डरीकप्रकाशके शासति पूषणीव ।
न कोऽप्यनीतिं चकमे विधातुं धरा च पूर्णाऽभवदर्थजातैः ।६९।

जब रत्नपुर के राजा ने अपने घमण्ड से वीरसिंह के शासन को नहीं माना। तब उसने उसको जीत कर उस भयार्त से खूब कर वसूला।।६५।।

उसने गढ़ा के साथ डहार तथा सहजोर देश भी जीत लिया। सभी परिहार राजा जीत लिये गये तथा बान्धव देश को उसने अपने अधीन कर लिया।।६६।।

श्री वीरसिंह के निज प्रताप से भर देश का नृशंस राजा भी जीत लिया गया। राजनय में लगे हुए चित्त वाले इस राजा के प्रति यह क्या असम्भव है कि बाबर भी उससे डरा।।६७।।

इस प्रकार अन्य बहुत से शत्रुओं को तथा इनके बहुत से धन को जीत कर अपने लोगों को प्रसन्न मन वाला बना दिया। पश्चात् वेद पाठी ब्राह्मणों को वेद विधान के अनुसार सम्पूर्ण दान दिया।।६८।।

बघेल वंश के कमलों के प्रकाशक इस सूर्य के विश्व का शासन करने पर किसी ने भी अनीति करने की इच्छा नहीं की तथा धरती धन धान्य से परिपूर्ण हो गई।।६९।।

संस्थापयंस्तनुभवौ निकटे सुनीतिज्ञानाय तत्परिणयं निरवर्तयच्च ।
ज्ञात्वा नयं समधिगम्य सुतौ नृपाणां भातश्च तं सुखयतः स्म सुभाषितेन

मुनिसुरपितृसंघस्वर्णमुक्तः प्रभावात् श्रुतिविहितविधानैर्यज्ञपुत्रैश्च रेजे ।
विधुरिव परिमुक्तः पार्वणो मेघवृत्या सुरसरितमथासौ सेवितुं निश्चिकाय

अथ विबुधगणेभ्यो मुक्तिबीजानि शृण्व-
न्नवनिपतिरटन् स प्रापदर्कस्य पुत्र्या ।
सुरसरितमुदारां संगतां स्वप्रकाशां
कवलितकलिपापां स्वर्गलब्धेर्निदानाम् ।।७२।।

दाता श्रीवीरसिंहस्तत उरुनृपतीन् शासयन्नात्मजेन
ज्यायान् संत्यज्य देहं सुकृतमयमसौ जह्नुकन्यापयस्सु ।

उस राजा ने अच्छी नीति का परिज्ञान कराने के लिये अपने दो पुत्रों को अपने पास रखा। पश्चात् राजा का पुत्र समझते हुए उनका (राजोचित) विवाह कराया। वे दोनों नीति को जानते हुए सुशोभित होते थे तथा सुभाषितों से उसे प्रसन्न करते थे।।७०।।

वह अपने प्रभाव से मुनि, सुर, पितृसंघ के स्वर्ण या धन की (कामना से) मुक्त होकर वेद विहितों यज्ञों के विधान तथा पुत्रों से सुशोभित हुआ। जैसे बढ़ता हुआ चन्द्र मेघ के आच्छादन से मुक्त हुआ हो। पश्चात् उसने सुरसरिता गंगा के सेवन का निश्चय किया।।७१।।

इसके पश्चात् वह राजा विद्वानों से मुक्ति के कारणों का श्रवण करता हुआ यमुना से मिली हुई उदार, स्वप्रकाशित, कलिपापों को नष्ट करने वाली, स्वर्ग प्राप्ति की कारणभूत गंगा में स्नान किया।।७२।।

उसके पश्चात् वह दाता, प्रवृद्ध श्री वीरसिंह अपने पुत्र के द्वारा बड़े राजाओं पर शासन कराते हुए योगियों को भी दुर्लभ इस सूर्यपुत्री यमुना के सुन्दर जल से युक्त गंगा के जल में अपनी सुकृत देह को त्याग कर श्री देव ईश्वर के साथ मिल गया, इस प्रकार यह सर्वदा प्रशंसनीय है।।७३।।

युक्तेषु ब्रध्नकन्याललितजलभरैर्योगिनां दुर्लभेषु
श्रीशं सद्देवमीशं मिलित इति सतां सर्वदा श्लाघनीयः।।७३।।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्संजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गो द्वितीयोऽभवत् ।।७४।।

अच्छे लोगों का प्रिय, सर्वथा यशस्वी जो वैश्य कुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है, उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् श्री माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का शुभ चरित्र वर्णन विषयक द्वितीय सर्ग पूर्ण हुआ।।७४।।



तृतीयः सर्गः।

अथ तस्य स तातस्य विष्णुसायुज्यमीयुषः।
अन्त्येष्टिं विदधाति स्म वीरभानुर्यथाविधि ।।१।।

कुलकम्

अथालर्कात्स नगराद्गङ्गातीरप्रतिष्ठितात् ।
नत्वा गङ्गां सयमुनां सरस्वत्या समं शिवाम्।।२।।

शङ्करात्मजमार्तिघ्नं सशिवं समधुद्विषम् ।
गहोरां सैन्यशब्देन नभो याति स्म पूरयन् ।।३।।

भूधूलीलः जयन्नभ्रं तुरङ्गमखुरोद्धतः ।
तथा यथा निशाभ्रान्तिर्जाताऽदर्शनतो रवेः ।।४।।

अग्रेसरैर्जलाधारान् कारयन् स पथि स्थितान् ।
आविलान् सैनिकानां च व्रजैस्तान् कर्दमाधिकान् ।।५।।

अब वीरभानु ने विष्णु के साथ तादात्म्य प्राप्त करने वाले अपने पिता का यथाविधि अन्त्येष्टि संस्कार किया।।१।।

इसके पश्चात् गंगा तट में अवस्थित अलर्क नगर से चलकर कल्याणकारिणी यमुना तथा सरस्वती के साथ गंगा को प्रणाम करके कष्टों का विनाश करने वाले शिव सहित तथा मधु राक्षस के शत्रु श्रीकृष्ण! सहित शंकर के पुत्र कार्तिकेय को (प्रणाम करके) आकाश को सैन्य शब्द से गुंजाता हुआ गहोरा की ओर चल पड़ा।।२-३।।

घोड़ों के ख़ुरों स़े उठी हुई, आकाश को छूने वाली जमीन की धूलि का चलना ऐसा था कि सूर्य न दिखाई पड़ने से लोगों को रात का भ्रम होने लगा।।४।।

वह राजा आगे बढ़ने वाले सैनिकों के समूह के द्वारा मार्ग में पड़ने वाले पानी के स्रोतों को कीचड़ से युक्त गंदला बनाते हुए आगे बढ़ा।।५।।

सादिनस्तस्य वीरस्य मिथ्यायुद्धं पुरोगताः।
कौतुकाद्रचयन्ति स्म स्थिता शाखादिभिर्द्विधा ।।६।।

भ्राति स्म सोऽस्मिन् प्रसृते बलौघे तारकापतिः ।
यथोडुचक्रे तेजस्वी देवानीके यथाऽग्निभूः ।।७।।

श्रीशालिवाहनपुरं महाजनवृतं पुरा ।
अदर्शि युवराजेन प्रासादव्रजशोभितम् ।।८।।

अथावोचत्स नृपतिं रामचन्द्रं शुचिस्मितः ।
पितामहस्य नाम्नेदं वासितं नगरं पुरा ।।९।।

सखे भाति यथा यक्षपत्तनं धनसंभृतम् ।
हट्टश्चातीव रम्योऽस्मिन् गृहा राजन्ति मञ्जुलाः ।।१०।।

नानादेशेषु जातानि पश्य वस्तूनि बुद्धिमन् ।
अस्यापणेषु राजन्ति बहुमूल्यानि संप्रति ।।११।।

उस वीर के आगे चलने वाले सादी अर्थात् घुड़सवार सैनिक शाखा आदि के द्वारा दो भागों में बंट कर कौतुक से मिथ्या युद्ध रच रहे थे।।६।।

वह राजा वीरभानु इस सुविस्तृत सेना में वैसे ही सुशोभित होता था जैसे ताराओं के मध्य चन्द्रमा अथवा देवताओं की सेना में कार्तिकेय।।७।।

उस युवराज ने रास्ते में बड़े लोगों से घिरे हुए तथा महलों से सुशोभित शालिवाहन पुर को देखा।।८।।

उस समय राजा वीरभानु ने सुन्दर मुस्कान वाले नृपति रामचन्द्र से कहा कि यह नगर पुराने जमाने में पितामह के नाम से बसाया गया था।।९।।

हे मित्र, यह धन धान्य से भरपूर यक्षों का नगर तथा यहां के बाजार अत्यन्त सुरम्य हैं तथा यहां बहुत सुन्दर घर विराजते हैं।।१०।।

हे बुद्धिमान्! विभिन्न देशों में बनी हुई इन विभिन्न वस्तुओं को देखो। वे इस समय इस बहुमूल्य बाजार में विराज रही हैं।।११।।

कुलकम्

स्वधर्मनिरतान् पश्य लोकानत्रार्थकोविद ।
गोविन्दचरणाम्भोजध्याननतत्परमानसान् ॥१२॥

अदीक्षितानां लोकानां कर्मस्वनधिकारिताम् ।
दृष्ट्वा गोपालमन्त्राणां गृहयालून् क्षमाभृतः ॥१३॥

गोपालमन्त्रदीक्षाभिरूर्ध्वपुण्ड्रविराजितान् ।
यज्ञोपवीतेन कृतैरुत्तरीयैः शुचीनपि ॥१४॥

अद्विजातीनपि श्लाघ्यानार्यसंगतिशोभनान् ।
धृतोपवीतान् शुद्ध्यर्थं लौकिकाचारहेतुना ॥१५॥

गोपालभोगभोज्येन कृतभोगान् कृपापरान् ।
स्मरतः कृष्णनामानि बल्यादीनि च वैष्णवान् ॥१६॥

हे विषयों को भली प्रकार जानने वाले! यहाँ अपने धर्म में लगे हुए तथा श्रीकृष्ण के चरणकमलों पर ध्यान में लगे हुए मन वाले लोगों को देखो॥१२॥

साथ ही कार्यों में अनधिकृत (संन्यासी) लौकिक कार्यों में अदीक्षित लोगों का, राजा से गोपाल मन्त्र लेने वालों को देख कर ऊर्ध्व पुण्ड्र से विराजित लोगों को, दीक्षा प्राप्त करने वालों को, यज्ञोपवीत तथा बान्धे गये उत्तरीय के द्वारा पवित्र लोगों को, अब्राह्मण होकर भी आर्यों के साथ संगति में सुशोभित, प्रशंसनीय लोगों को, लौकिक आचार के पालन हेतु शुद्धि के लिये यज्ञोपवीत धारण करने वालों को, अन्य लोगों को गोपालभोग के भोज्य से भोग लगाने वालों को तथा कृष्ण के नाम को एवं बलि आदि वैष्णवों तथा कृष्ण के नाम को स्मरण करने वालों को देखो॥१३,१४,१५,१६॥

अस्य चोत्तरतः पश्य पितुर्मम महात्मनः ।
आरामं रचितारावं मयूरशुककोकिलैः ।।१७।।

पुष्पमासोचितं वृक्षाः पुष्पं पत्रं फलन्ति च ।
मञ्जरी सहकारस्य चेतो हरति मेऽनघ ।।१८।।

गुञ्जतः पश्य मधुरं भ्रमरानत्र वीणया ।
समस्वनान् विभातश्च वासन्तीकुसुमाश्रितान् ।।१९।।

एते फुल्लांस्तरूंस्त्यक्त्वा षट्पदा वल्लरीवृतम् ।
सहकारं समायान्ति सुराजानं यथा नराः।२०।।

मधुपान् कमलाक्षेमान् कामदूत्यविधायिनः ।
संभावये च तच्छिष्टिकारिणीः सृजतः स्त्रियः।।२१।।

इसके साथ ही इसके उत्तर में मेरे महात्मा पिता का, मोर, तोते तथा कोयल की गूंज वाले आराम या शरणस्थल को देखो।।१७।।

वृक्ष पुष्पमास या चैत्रमास या वसन्त ऋतु में होने योग्य फूल फल को फलते हैं। हे निष्पाप! आम की मंजरी मेरे मन को हर रही है।।१८।।

यहाँ देखो, वासन्ती फूलों पर बैठे हुए, एक साथ आवाज करके सुशोभित होते हुए, वीणा से भी अधिक मधुर गूंजते हुए भौंरे वर्तमान हैं।।१९।।

ये भौंरे फूले हुए पेड़ों को छोड़कर लता से घिरे हुए आम के पेड़ की ओर आ रहे हैं। जैसे लोग देवताओं के जन्मस्थान की ओर जा रहे हों।।२०।।

मैं यहाँ कामदेव के दूत का कार्य करने वाले, कमला के लिये कल्याणप्रद भौंरों को तथा कामदेव के शासन का मालन करने वाली स्त्रियों को उत्पन्न होता हुआ पाता हूँ।।२१।।

विवृत्य कुसुमान्येष राजते धरणीश्वरः ।
अशोकपादपः कान्तासनूपुरपदाहतः ।।२२।।

वनान्यत्र विराजन्ते तुलस्या कैटभद्विषः ।
प्रियायाः पूजया यस्याः पत्रैर्मोक्षोऽपि लभ्यते ।।२३।।

बिल्वं वनजतुल्याक्षतरुणीस्तनसन्निभम् ।
विभाति स्मारयत् पत्रैः शङ्करस्यापि पूजनम् ।।२४।।

द्राक्षेयं फलिता भाति तिरस्कृत्य सुधामपि ।
स्वादुत्वात्सदृशीभूता गिरा तव सुभाषित ।।२५।।

भजताऽऽशुपतीन्नार्यस्त्यक्त्वा मानं न लभ्यते ।
यौवनं गतमित्येव किं करोति पिकः स्वनम् ।।२६।।

अपने फूलों को खोल कर यह धरणीश्वर विराजता है। साथ ही कान्ता के नुपूरयुक्त पैरों से आहत अशोक का वृक्ष विराज रहा है।।२२।।

यहाँ विष्णु की तुलसी के वन विराज रहे हैं। जिनके पत्तों तथा जिस (विष्णु) की पत्नी की पूजा से मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है।।२३।।

वनज के तुल्य आँखों वाला तथा तरुणी के स्तनों के सदृश बिल्व का पेड़ अपने पत्तों से शंकर की पूजा की याद दिलाता हुआ सुशोभित होता है।।२४।।

यहाँ अमृत का भी तिरस्कार करने वाली दाख फली हुई दिखाई पड़ती है। यह अत्यन्त स्वादु होने से तुम्हारी सुभाषित पूर्ण वाणी के समान है।।२५।।

स्त्रियाँ शीघ्र ही अपने पतियों की सेवा करें। उन्हें छोड़ देने पर कभी सम्मान प्राप्त नहीं होता। यौवन चले जाने पर क्या कोई कोयल मधुर कूक पाती है।।२६।।

क्रीडन्ति तरुणैः सार्धं श्रुत्वा तं तरुणीजनाः ।
दिवा निशाभ्रमं गत्वा काममूढाः कलाविदः ।।२७।।

लवङ्गलतिकाः स्पृष्ट्वा वाति दक्षिणमारुतः ।
कामदेवसहायोऽयं वियोगिजनदुःसहः ।।२८।।

केतकी वासयत्याशा वियुक्तजनवैरिणी ।
इमां सहायं संप्राप्य जगज्जयति दर्पकः ।।२९।।

जाती जनितरागाऽसौ सुरभीकृतवाटिका ।
पश्य राजति कामस्य सफला शरसंहतिः।।३०।।

कुञ्जकानां प्रसूनानि भ्रातर्भान्ति विहायसि ।
भानीव मम चित्तस्य प्रीतिमुत्पादयन्ति च ।।३१।।

इस (कोयल की) कूक को सुन कर काम से मोहित, कलाओं को जानने वाली तरुणियाँ दिन में रात के भ्रम में होकर तरुणों के साथ क्रीडा करती हैं।।२७।।

दक्षिण से आने वाली वायु लौंग की लता को छूकर बह रही है। यह कामदेव की सहायक है तथा विरही लोगों के लिये दुःसह है।।२८।।

विरही लोगों की वैरिणी, केतकी या केवड़ा का फूल दिशाओं को सुगन्धित बना रहा है। कामदेव इसी की सहायता को प्राप्त करके पूरी दुनिया को जीतता है।।२९।।

यह राग को उत्पन्न करने वाली तथा वाटिका को सुगन्धित बना देने वाली 'जाती' नामक पुष्प है। देखो, यह कामदेव का सफल बाणों का समूह है।।३०।।

हे भाई, आकाश में तारों के समान ये कुञ्जकों के फूल सुशोभित होते हैं तथा मेरे मन में प्रीति उत्पन्न करते हैं।।३१।।

त्रिपुटा गन्धबाहुल्यान्मनो मे हरति ध्रुवम् ।
अनयाऽप्यर्चितो विष्णुः सिद्धिमिष्टां प्रयच्छति ।।३२।।

पैतृष्वसेय सौरभ्यान्मोदयित्वा चमूचरान् ।
कुसुमायुधसर्वस्वं राजते नवमालिका ।।३३।।

कदलीनां वनं पश्य सूर्यकन्याजलद्युति ।
विजेतुं तामिवोद्योगि परिणाहतयात्मनः ।।३४।।

जबीराणां परा पंक्तिर्विराजति परन्तप ।
भ्रमं मे जनयत्येषा पातिव्रातस्य (?) पल्लवैः ।।३५।।

बालाकुचोपमं येषां फलं राजति पश्य तान् ।
लकुचाख्यान् द्रुमानत्र बहुधा रोपितान्नृप ।।३६।।

एतान् पश्य महाबाहो पनसान् सर्वतः स्थितान्।
अमलां शर्करां जेतुं यत्फलं स्पर्धते रसात् ।।३७।।

त्रिपुटा नामक फूल गन्ध की अधिकता से निश्चय ही मेरे मन को हरता है। इससे सुपूजित विष्णु इष्ट सिद्धि प्रदान करते हैं।।३२।।

हे भाई, सैनिकों को अपनी सुगन्ध से प्रसन्न करती हुई कामदेव की सर्वस्व नवमालिका विराजती है।।३३।।

यमुना के जल की दीप्ति वाले केले के वन को देखो। (ऐसा लगता है) जैसे वे अपनी लम्बाई से उसकी (यमुना की) लम्बाई को जीतना चाहते हों।।३४।।

हे परन्तप! यह जबीर के वृक्षों की सुन्दर पंक्ति विराज रही है। यह पातिव्रत के कोपलों का भ्रम उत्पन्न कर रही है।।३५।।

हे राजन्! जिसके फल कन्या के स्तनों के समान विराजते हैं, ऐसे जगह जगह लगाये गये लीची के पेड़ों को देखो।।३६।।

हे महाबाहु! ये सब जगह लगे हुए कटहल के पेड़ों को देखो। ये अपने रस से निर्मल शक्कर को जीतने की स्पर्धा करते हैं।।३७।।

निम्बुकानां वनं सम्यग् विभाति वसुधाधिप ।
यत्फलानां प्रदानेन हृष्यन्ति द्विजदेवताः ।।३८।।

धात्री फलवती पङ्क्त्या लब्धशोभा विराजते ।
कलिपापविभीतानां शरणं प्राणिनामियम् ।।३९।।

बदरीफलभाग्राजन्नुद्यानत्राणकारणात् ।
रोपिता द्यौरिवाभाति सनक्षत्राचलद्युतिः ।।४०।।

नागरंगवनं प्राज्यं पृथगेतद्विभासते ।
करवीरद्रुमैर्मिश्रं पुष्पैर्धर्मविवर्धनैः ।।४१।।

बीजपूरफलं पक्वं सुधास्वादु विराजते ।
एतदीयफलव्याजात् सुधैवात्र किमागता ।।४२।।

हे धरती के राजन्! नींबू का यह वन भली प्रकार सुशोभित होता है। जिसके फलों के प्रदान से वनदेवता प्रसन्न होते हैं।।३८।।

यह फलों से परिपूर्ण धात्री या आँवले का वृक्ष सुशोभित होकर विराज रहा है। यह कलि के पाप से डरे हुए प्राणियों का शरण है।।३९।।

हे राजन्! उद्यान की सुरक्षा करने वाले होने के कारण बदरी या बेर नाम वाले वृक्ष वर्तमान हैं। जैसे नक्षत्रों वाले पर्वत की शोभा धारण करने वाला द्युलोक हो।।४०।।

धर्म बढ़ाने वाले पुष्पों तथा करवीर वृक्ष से युक्त नारंगी के प्रभूत वृक्ष अलग ही सुशोभित हो रहे हैं।।४१।।

यहाँ बीजपुर याने बिजौरा नींबू अथवा चकोतरा का अमृत के समान स्वादु पका फल विराजता है। लगता है कि इस फल के बहाने यहाँ अमृत ही आ गया है।।४२।।

चाम्पेयद्रुमवीथीयं चकास्ति सुखवर्धन ।
वीक्ष्य स्वानुदव्रजन्तीव मामसौ प्रतिकारिणी ।।४३।।

महादेवप्रिया नित्यमुन्मत्तालो रतिप्रदं ।
भेरीव रतिनाथस्य विभाति कुरु दृग्गतिम् ।।४४।।

अश्वत्थो भाति राजर्षे सौम्यपर्णपरंपरः ।
नारीवराङ्गसादृश्यं विवृण्वन् साधुभिर्दलैः ।।४५।।

प्रयागवटभूतोऽयं विभाति बहुपाद्वरः ।
अन्तरं मातुमौन्नत्यं भूमेर्दिव इवादधत् ।।४६।।

अम्लिकां पश्य राजन् तामपिधाय नभोऽन्तरम् ।
प्रत्यन्तपर्वताकारां फलपीयूषशालिनीम् ।।४७।।

हे सुख को बढ़ाने वाले! यह नागकेसर के पेड़ों की माला सुशोभित हो रही है। ऐसा लगता है जैसे यह बदला लेने वाली हमें देख कर हमें उठा रही हो।।४३।।

मतवाले भौंरों वाली तथा सदा आनन्द देने वाली महादेवप्रिया अथवा भाँग कामदेव की भेरी के समान प्रकाशित हो रही है, इसे देखो।।४४।।

हे राजर्षि! यह अपने सौम्य पत्तों के समूह वाला पीपल प्रकाशित हो रहा है। यह अपने अच्छे पत्तों से स्त्री के गुप्तांग के सादृश्य को प्रकट करता है।।४५।।

यह सुन्दर बहुत से पैरों वाला प्रयाग के (वटवृक्ष) जैसा बना हुआ वटवृक्ष प्रकाशित हो रहा है। ऐसा लगता है जैसे यह भूमि से द्युलोक की उँचाई के अन्तर को मापने के लिये खड़ा हो।।४६।।

हे राजन्! आकाश की दूरी को ढक कर अवस्थित विशाल पर्वत के आकार वाली, अमृत समान फल वाली अम्लिका अथवा इमली के पेड़ को देखो।।४७।।

राजते मुनिवृक्षोऽयं स्वल्पायुः पुरुषो यथा ।
परस्त्रीरतसंसक्तो यथाऽतिबलवैरकृत् ।।४८।।

शतपत्री विभात्येषा रक्तपुष्पैः सुगन्धिभिः ।
देवानामर्हणायोग्यैर्भोक्तुं धर्तुं च मूर्धनि ।।४९।।

द्रुमाश्चान्ये न बुध्यन्ते दूरभावात्स्वनामतः ।
देशेभ्यः करदैर्भूपैः प्रेषितास्तातरोपिताः ।।५०।।

कुलकम्

एवं वर्णयता तेन शिविरं यमुनान्तिके ।
प्रापि तद्गुरुणा दत्तां दधता युवराजताम् ।।५१।।

वेष्टनेन विचित्रेण कुण्डलेनाद्भुतेन च ।
राजता किरता तेजः फाल्गुनेनेव दिग्व्रजे ।।५२।।

यहाँ मुनिवृक्ष विराज रहा है। जैसे परस्त्री से रति में संसक्त, अतिबलशाली वैर करने वाला पुरुष हो।।४८।।

यहाँ अपने लाल फूल तथा सुगन्धि से परिपूर्ण शतपत्री या कमलिनी विराज रही है। यह देवताओं के पूजा के योग्य उपभोग के लिये तथा (राजमुकुट के रूप में) सिर पर धारण करने के योग्य है।।४९।।

दूर होने के कारण अन्य वृक्ष नामपूर्वक नहीं जाने जाते हैं। ये विभिन्न देशों के करद राजाओं के द्वारा भेजे गये हैं तथा पिता के द्वारा लगाये गये हैं।।५०।।

कुलक

इस प्रकार वर्णन करते हुए तथा उसके गुरु द्वारा दिये गये युवराजत्व को धारण करते हुए वह यमुना के समीप शिविर में पहुंच गया।।५१।।

विचित्र चादर तथा अद्भुत कुण्डल से विराजित सभी दिशाओं में वसन्त सदृश तेज को बिखेरने वालों के साथ (रामचन्द्र आदि भूपाल...श्लोक ६० का विशेषण)।।५२।।

यवनक्षयबीजेन स्फुरता निजरोषिचा ।
करवालेन भीमेन कल्किनेव विराजता ।।५३।।

तरवारिभृता चापतूणशक्तिभिरञ्जसा ।
महाभीतिं प्रददता चारलोचनभूभुजाम् ।।५४।।

पश्य पांशुपरीतेन हयं नर्तयताऽद्भुतम् ।
अश्ववारार्हवेषेण रेवन्तप्रतिकारिणा ।।५५।।

नागराणां दिदृक्षूणां रूपेण हरता मनः ।
भूमौ कृतावतारेण मन्मथेनेव मञ्जुना ।।५६।।

गाम्भीर्यस्निग्धताभाजा सैनिकानन्ददायिना ।
ढक्काशब्देन शत्रूणां शल्यं निरवनता हृदि ।।५७।।

यवनों के क्षय के बीज से बढ़ते हुए, अपनी दीप्ति से विशाल तलवार से कल्कि के समान सुशोभित होने वाले के साथ।।५३।।

तलवार धारण करते हुए तथा धनुष और तरकस की शक्ति से अनायास ही गुप्तचर की आँखों वाले राजाओं को अत्यधिक डर प्रदान करने वाले के साथ।।५४।।

देखो, धूल से व्याप्त, घुड़सवार के योग्य, वेश से घोड़े को अद्भुत रूप से नचाते हुए तथा धनी लोगों से प्रतिकार या बदला ले सकने वाले के साथ।।५५।।

देखने की इच्छा वाले नगर के लोगों के मन को अपने रूप से हरते हुए सुन्दर कामदेव के समान इस धरती पर अवतार लेने वाले के साथ।।५६।।

गाम्भीर्य तथा स्निग्धता के स्थान सैनिकों को आनन्द प्रदान करने वाले, ढोल के गम्भीर शब्द से शत्रुओं के हृदय में शूल जैसा चुभाने वाले के साथ।।५७।।

परिपूरयता व्योम ह्रेषाभिः परितः परैः ।
गजैरभ्रैरिवाकाशभ्रमं भूमेर्वितन्वता ।।५८।।

अस्पृशद्भिरिव क्षोणीं पतिभिर्दैवतैरिव ।
स्वरिवाचरतानन्तां चित्रयानविशारदैः ।।५९।।

रामचन्द्रादिभूपालास्ते ततः परिवारिणः ।
तद्विसृष्टान् नमस्कृत्य स्वं निवेशमरोचयन् ।।६०।।

युवराजोऽवतीर्यापि हयात्कर्माऽऽचरत्सुखम् ।
हयाधिकारिणं प्रोच्य हयान् सुखय तद्धितैः ।।६१।।

कालिन्दीं परितः सेना स्थिता शोभयति स्म ताम् ।
सा च तां योग्यसंसर्गः किं न सूते परोन्नतिम् ।।६२।।

विदधद्भिर्विधिस्नानमघमर्षणपूर्वकम् ।
विप्रैर्भाति स्म कालिन्दी स्वर्णदीव सुरर्षिभिः ।।६३।।

अपनी हिनहिनाहट से चारों ओर आकाश को भर देने वाले उत्कृष्ट घोड़ों के साथ, बादलों के समान भूमि में आकाश का भ्रम बिखेरते हुए हाथियों के साथ।।५८।।

दैवत पतियों के समान, अनन्त धरती को मानों न छूते हुए स्वर्ग लोक बनाने वाले विचित्र यान बनाने में निपुण लोगों के साथ।।५९।।

उनके द्वारा बिदा किये गये परिवार वालों को नमस्कार करके रामचन्द्र आदि राजाओं ने अपना निवास बनाया।।६०।।

युवराज घोड़े से उतर कर भी घोड़े से कार्य कराते हुए घोड़े के अधिकारी से बोले कि घोड़ों को उनके हित के लिये सुखी बनाओ।।६१।।

कालिन्दी अर्थात् यमुना के किनारे पर स्थित सेना ने उस कालिन्दी को सुशोभित किया। उसके साथ संसर्ग के योग्य राजा क्या परोन्नति नहीं करेगा।।६२।।

अघमर्षणपूर्वक तथा विधिपूर्वक स्नान करने वाले सुरर्षि तथा ब्राह्मणों को यह कालिन्दी स्वर्ण देने वाली जैसी प्रतीत हुई।।६३।।

वाटी सा वीरसिंहस्य बलैरध्युषिताऽभवत् ।
चरितार्थापरे ये न सुखं यान्ति परैः सह ।।६४।।

अभितोऽम्बरवेश्मानि निवेश्य वणिजां व्रजाः ।
विपणिं विभजन्ति स्म विविधद्रव्यबन्धुराम् ।।६५।।

रूपाजीवाः स्म तन्वन्ति पटवेश्मनि तत्क्षणम् ।
तानि गत्वा विटास्ताभिर्लभन्ते स्म स्वकामिताम् ।।६६।।

ये जना जितकन्दर्पास्तत्कटाक्षशराहताः ।
प्रमोहं प्राप्नुयुस्तेऽपि प्रेक्ष्य रूपवतीः स्त्रियः ।।६७।।

एके सुखं लभन्ते स्म वारयोषिद्भिरावृताः ।
विपरीतरतारम्भे शृङ्गाररस्य महोदधौ ।।६८।।

अन्ये ताम्बूलपुष्पाणि गृह्णन्ति स्म च कामुकाः ।
त्वरावन्तो निशापाताच्चन्दनेनाङ्गरागिणः ।।६९।।

वीरसिंह की वह वाटिका बल या सेना के साथ अधिष्ठित हुई। जो लोग अन्य लोगों के साथ असफ़ल हैं, वे सुख को प्राप्त नहीं होते।।६४।।

बनियों के समूह दोनों तरफ कपड़ों के घर अर्थात् राउटी बनाकर वहाँ विविध प्रकार के द्रव्यों से सुहावनी वस्तुएं बेचते थे।।६५।।

उन रावटियों में वेश्याएं अपना व्यापार कार्य कर रही थीं। सैनिक लोग उनके पास जाकर अपनी कामेच्छा पूर्ण कर रहे थे।।६६।।

जिन लोगों ने काम को जीत लिया है वे भी उन रूपवती स्त्रियों को देख कर तथा उनके कटाक्ष बाणों से आहत होकर मोह प्राप्त करते थे।।६७।।

अन्य लोग उस शृंगार के महासमुद्र में वेश्याओं से घिर कर विपरीत रति के चलने पर सुख प्राप्त करते थे।।६८।।

अन्य कामी चन्दन से अंगरागी लोग रात बीत जाने से जल्दियाते हुए ताम्बूल पुष्प का ग्रहण कर रहे थे।।६९।।

स्त्रियं सुललितां वीक्ष्य स्मराज्ञावर्तिनोऽभवन् ।
विजानन्तोऽपि मर्यादां कामः खलु दुरत्ययः ।।७०।।

तुरङ्गा बलसङ्घस्य भुञ्जते स्म गुडादिकम् ।
यद्भक्षणाद्भवेत् क्षिप्रममीषां श्रमसंक्षयः ।।७१।।

अश्वौघः शोभनं धावन् सुष्ठु रिङ्गन् शताङ्गगः ।
हर्षास्पदं जने जातः स्वयोग्यं कर्मशर्मणे ।।७२।।

अमी प्रक्षालिताः स्थानपालैर्भूमौ विलोडनम् ।
कुर्वन्तः सुखमापन्ना पदवीश्रमनोदिताः ।।७३।।

सुरेभतुल्याः कालिन्दीं विगाहन्ते स्म हस्तिनः ।
त्यक्तध्वजकुथाकक्ष्याश्छिन्नपक्षा इवाचलाः ।।७४।।

क्रीडन्तश्च गजास्तस्यां दीर्घचीत्कारशोभिनः ।

वे लोग अति सुन्दर स्त्रियों को देखकर मर्यादा को जानते हुए भी काम की आज्ञा के वशीभूत हो गए। सचमुच काम बहुत दुरन्त होता है।।७०।।

सैनिकों के घोड़े गुड़ इत्यादि खा रहे थे। जिसके खाने से इन लोगों की थकान तुरन्त दूर हो जाती है।।७१।।

अति सुन्दर दौड़ता हुआ घोड़ों का समूह अपने कार्य तथा सुख प्रदान के लिये लोगों के बीच हर्षास्पद हो गया।।७२।।

ये जमीन को कुरेदने वाले तथा पहरेदारों द्वारा नहलाए गये घोड़े पैरों का श्रम दूर होने से सुख को प्राप्त हुए।।७३।।

देवताओं के हाथी ऐरावत के समान वे हाथी अपने ध्वज, छींट की बनी झूल, तथा अपना तंग आदि को छोड़कर कटे हुए पंखों या भुजाओं वाले पर्वत के समान होकर यमुना में डूब रहे थे।।७४।।

वासयन्ति स्म तत्तोयं श्रवणान्मदवारिणः ।।७५।।

शिविरं हस्तिनस्तत्र स्रोतोभिर्मदवर्षिणः ।
परहस्तिमदाघ्राणादायान्ति स्म कथंचन ।।७६।।

अन्येषां मदमाघ्राय हास्तिकं तत्र संगतम् ।
तत्कर्तुं यतते स्मेदं यन्न वार्यं निषादिभिः ।।७७।।

एके मत्ताः स्म कुर्वन्ति व्याकुलं शिविरं गजाः ।
आधोरणैः कथंचित्ते यत्नात्तस्य बहिष्कृताः ।।७८।।

उष्ट्रा व्यराजन् प्रसृताश्चरन्तश्छदसंहतीः ।
न या लब्धा जनैर्जातु किं न लभ्यं महोन्नतैः ।।७९।।

बलाद्वृषा रुजन्ति स्म प्रीतिदं यमुनातटम् ।
मूर्खा इव वितन्वन्तो विपक्षं प्रतिनिस्वनम् ।।८०।।

वहाँ पर वे हाथी अपने लम्बे चीत्कार या आवाज से सुशोभित हुए तथा खेलते हुए कानों से निकले अपने मदजल से यमुना के जल को गन्धपूर्ण बना रहे थे।।७५।।

वहाँ पर दूसरे हाथी के मदजल को सूँघते हुए अपने स्रोत से मद बरसाते हुए किसी तरह अपने शिविर को वापस लौटते थे।।७६।।

हाथियों के वे झुण्ड मिलकर दूसरों के मदजल को सूँघ कर उस क्रिया के करने का यत्न करते थे, जिसे महावतों द्वारा नहीं रोका जाना चाहिये।।७७।।

कुछ मतवाले हाथी उसके शिविर को व्याकुलित बना देते थे। वे महावतों के द्वारा किसी प्रकार मुश्किल से बाहर किये जाते थे।।७८।।

घरों में इकट्ठे होते हुए तथा इधर उधर घूमते हुए ऊँट वहाँ सुशोभित हुए। जो विस्तार मनुष्यों ने नहीं पाया, वह क्या उन महाविस्तारशालियों के लिये अलभ्य है।।७९।।

वहाँ बैल भी उस सुखकारी यमुना तट को बलपूर्वक व्याकुलित बनाते थे। वे मूर्खों के समान पक्षविहीन प्रतिध्वनि को छोड़ते थे।।८०।।

यावता भूमिभागेन युवराजनिवेशनम् ।
तावान् प्राहरिकैराभाद्गणैरिव चन्द्रमाः ।।८१।।

सज्जना युवराजस्य तुष्टये द्वारमागमन् ।
विधाय वसतिं हृद्यामश्वविश्रामकारिणः ।।८२।।

अश्ववारा धनुष्मन्तः सतूणा मुक्तकङ्कटाः ।
सशक्तयः सखड्गाश्च द्वारभूमिं व्यरोचयन् ।।८३।।

तरसा द्वारमागच्छन् निशापतनकारणात् ।
गजव्रजा विराजन्तः कुथकङ्कटकेतुभिः ।।८४।।

तस्यारुचत्प्रतीहारक्षितिः पत्तिहयैर्गजैः ।
यथा यौधिष्ठिरी पूर्वं विविधायुधशोभितैः ।।८५।।

जिस भूमिभाग में युवराज का स्थान था, वह स्थान पहरेदारों द्वारा सुशोभित हुआ। जैसे गणों के द्वारा चन्द्रमा शोभित होता है।।८१।।

प्रसन्नतापूर्वक निवास करके घोड़ों को विश्राम कराने वाले अनेक सज्जन लोग युवराज की सन्तुष्टि के लिये उनके पास पहुंचे।।८२।।

घुड़सवार तथा धनुर्धारी लोग अपने बाण, हाथी को वश में करने वाला अंकुश, शक्ति, तलवार इत्यादि के सांथ उसकी द्वारभूमि पर उपस्थित हुए।।८३।।

हाथियों के समूह अपनी झूल, अंकुश ध्वजा इत्यादि के साथ विराजते हुए रात्रि आ जाने पर.अपनी शक्ति से उसके द्वार पर आ गये।।८४।।

उसके पहरेदारों की वह ड्योढ़ी पैदल सैनिक, घोड़े तथा हाथियों के द्वारा उसी प्रकार सुशोभित हुई जैसे कभी अनेक प्रकार के आयुधों से मनोहर युधिष्ठिर की ड्योढ़ी शोभित हुई थी।।८५।।

एतत्सर्वं विलोक्याथ युवराजोऽभिनन्दयन् ।
बन्धुभिः किङ्करैः साकं भोज्यं भुंक्ते स्म षड्रसम् ।।८६।।

शृणोति स्म ततो गीतं विष्णुनामाङ्कितं हितम् ।
वीणाभिर्मधुरालापैस्ततं स श्रुतिराजितम् ।।८७।।

युग्मम्

इत्थं संजातशोभेऽस्मिन् निवेशत् निवसन्नसौ ।
तमिस्राःकतिचिद्धन्वी नयति स्म प्रतापवान् ।।८८।।

त्रियामापञ्चमे यामे प्रबोधन्नीतिपण्डितः ।
मनीषास्वच्छताहेतौ प्रबोधाच्छुभदायिनि ।।८९।।

अथानन्दभरश्लाघ्यः सुदिने सोऽदिशज्जनान् ।
प्रयाणे पटहध्वनिं कारयन्त्विति हे जनाः ।।९०।।

शत्रूणामथ नाशयन्नभिमतश्रेणीर्दिशः सर्वशः
सध्वाना विदधत्कृतान्तभगिनीस्रोतश्च संरावयत् ।

यह सब कुछ देखते हुए तथा अन्यों का अभिनन्दन करते हुए युवराज ने अपने मित्रों तथा भृत्यों के साथ छहों रस वाला भोजन किया।।८६।।

इसके पश्चात् वह विष्णु नाम वाले, हितकारी वीणा के मधुर आलाप से सुन्दर श्रुतिसुखद गीत को सुनता था।।८७।।

इस प्रकार अत्यन्त शोभा से परिपूर्ण निवास में कुछ दिन रह कर उस प्रतापी धनुर्धारी ने कुछ रातें बिताईं।।८८।।

जागरण से अत्यन्त शुभदायी रात्रि के पाँचवें प्रहर में आनन्द से प्रशंसनीय, नीतिपण्डित ने प्रतिभा की स्वच्छता के लिये लोगों को आदेश दिया ए लोगों! प्रयाण के लिये ढोल बंजाना शुरू करो।।८९-९०।।

मित्राणामवतारयन् घनमुदं प्रस्थापयन् सैनिकां-
स्तस्यासीत्पटहध्वनिर्जिगमिषोः स्वां राजधानीं विभोः ।।९१।।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तसंजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते ।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गस्तृतीयोऽभवत् ।।९२।।

शत्रुओं का विनाश करते हुए, अभिमत रास्तों तथा सभी दिशाओं को गुंजाते हुए तथा यमुना के प्रवाह को चंचल बनाते हुए, मित्रों को अपने साथ लेते हुए तथा सैनिकों को अत्यधिक प्रसन्नता प्रदान करते हुए यह उस राजधानी की ओर जाना चाहने वाले राजा के ढोल की आवाज थी।।९१।।

अच्छे लोगों का प्रिय, सर्वथा यशस्वी जो वैश्य कलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है, उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् श्री माधव के सुपूजित,स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का चरित्र वर्णन विषयक तीसरा सर्ग पूर्ण हुआ।।९२।।



चतुर्थः सर्गः

युग्मम्

अथ प्रयातो वीरोऽयं कोटरं क्रमतोऽगमत् ।
कालिन्द्या विष्णुशर्वादिप्रतिमाभिरलंकृतम् ।।१।।

दहन्त्या स्नानमात्रेण जन्मिनां कलुषव्रजम् ।
तत्पापदाहसम्बन्धादिव श्यामलतोयया ।।२।।

दृष्ट्वाऽथ युवराजस्तां भगीरथमभाषत ।
कल्लोलैर्भाति पश्यैषा गिरिभूमिर्द्रुमैरिव ।।३।।

तीरवर्तिनमुद्दिश्य निकुञ्जं कुसुमाकुलम् ।
आयान्ति सह भृङ्गीभिः कामुका इव षट्पदाः ।।४।।

एतत्तटे निकुञ्जानि कम्पितानि नभस्वता ।
पुष्पावचयधीरेण चकासति धरासुर ।।५।।

अब वहां से चलकर यह वीर कालिन्दी यमुना के साथ विष्णु, शिव इत्यादि की मूर्तियों से अलंकृत कोटर की ओर क्रमशः पहुंचा।।१।।

वह यमुना अपने नीले जल के द्वारा स्नानमात्र से जन्म लेने वाले प्राणियों के पाप का दहन करती थी। जैसे इसका पाप के साथ दाह का सम्बन्ध हो।।२।।

युवराज इसे देखकर भगीरथ से यों बोले — देखो, यह पर्वत भूमि वृक्षों के द्वारा जैसे कल्लोल से सुशोभित हो रही हो।।३।।

तट प्रान्त में अवस्थित फूलों से भरे हुए कुञ्ज को लक्ष्य करके भौंरे कामियों के समान भौंरियों के साथ आ रहे हैं।।४।।

हे धरासुर (ब्राह्मण के लिये सम्बोधन) इसके तट पर फूलों को उड़ाने में धीर वायु के द्वारा प्रकम्पित निकुंज सुशोभित होते हैं।।५।।

अस्याः कुञ्जेषु यद्रेमे गोपीभिर्गरुडध्वजः ।
तद्युक्तमेव लावण्यमेतादृङ्न भुवस्तले ।।६।।

इत्युक्त्वा ब्राह्मणाग्रण्यं भगीरथमनल्पधीः ।
स्नातुं प्रचलितः सोऽयं यमुनां प्रणमन्निति ।।७।।

या पुनाति जगत्सर्वं दर्शनस्पर्शनाप्लवैः ।
या बिभर्ति हरेर्वर्णं वन्दे तां रविनन्दिनीम् ।।८।।

कालिन्दीमथ संप्राप्य वस्त्रद्वयविभूषितः ।
प्रक्षालितकराङ्घ्रिः स आचान्तः सकुशोऽभवत् ।।९।।

युग्मम्

नाभिपर्यन्तमासाद्य प्रवाहं स यमस्वसुः ।
त्रिःकृती मज्जनं कुर्वन् राजते स्म प्रसन्नधीः ।।१०।।

इसके कुंजों पर गोपियों के साथ जो कृष्ण ने रमण किया था यह (कुंज का) सौन्दर्य उनके ही अनुरूप है। ऐसा धरती तल पर अन्य कोई स्थान नहीं है।।६।।

इस प्रकार वह बुद्धिमान् ब्राह्मणों में अग्रणी भगीरथ से इस प्रकार कह कर यमुना को प्रणाम करके वहाँ स्नान करने के लिये चल दिया।।७।।

जो अपने दर्शन, स्पर्शन तथा स्नान से सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करती है तथा जो हरि या श्रीकृष्ण के वर्ण को धारण करती है, उस सूर्यपुत्री को नमस्कार करता हूँ।।८।।

उसने दो वस्त्रों से विभूषित होकर कालिन्दी में स्नान करके हाथ, पैर को धोकर कुश सहित आचमन किया।।९।।

पुनः वह प्रसन्न बुद्धि वाला यमुना के नाभि पर्यन्त प्रवाह को प्राप्त करके तीन बार डुबकी लगाकर सुशोभित हुआ।।१०।।

विधिं पद्मपुराणोक्तं स्नानस्याादृत्य शास्त्रवित् ।
मूलमन्त्रादिना तीर्थकल्पनादिकलक्षणम् ॥११॥

ततो वेदादिसद्दृष्टं विधानं विधिना चरन् ।
स श्रीराम इवादर्शि भूयो भूमिगतो जनैः ॥१२॥

बहिर्निर्गत्य कालिन्द्या दुकूलद्वयवानभूत् ।
शिरोजलापनोदाय धृतं वेष्टनमत्यजत् ॥१३॥

अथाचम्य विधानेन विधाय तिलकादिकम् ।
कोटराद्दिशि शुद्धायां दक्षिणस्यां विराजतः ॥१४॥

सूर्यादीन् पूजयन् देवांस्तत्तद्ध्यानसमाहितः ।
इदं वर्णयति स्मासौ देवाग्रे देवभक्तितः ॥१५॥

उस शास्त्रवेत्ता ने तीर्थ कल्पना इत्यादि से संसूचित स्नान की पद्मपुराण में कही गयी विधि का आदर करते हुए मूल मन्त्र इत्यादि से पूजन किया॥११॥

इसके पश्चात् वेद आदि ग्रन्थों में देखे गये विधान को विधिपूर्वक आचरण करते हुए इस राजा को भूमि में बैठे लोगों ने श्रीराम के समान देखा॥१२॥

पुनः उसने कालिन्दी से बाहर निकलकर दो दुकूल धारण कर लिये तथा सिर के पानी को झाड़ने के लिये बाँधी हुई पगड़ी को उतार दिया॥१३॥

इसके पश्चात् आचमन करके विधानपूर्वक तिलक आदि को धारण करके कोटर से शुद्ध दक्षिण दिशा में विराजने वाले सूर्य आदि देवताओं की पूजा करके उनके ध्यान में समाहित होकर देवताओं के आगे देवभक्ति के साथ उन्होंने इस प्रकार (देवताओं का) वर्णन किया॥१४-१५॥

रक्तकमल में अवस्थित, मणि, माणिक्य, मुकुट वाले अर्यमा त्रिलोचन या शिव, चतुर्बाहु या ब्रह्मा की जय हो तथा पूरे विश्व के लोगों का चक्षुः

रक्तपद्मोपविष्टोऽयं माणिक्यमुकुटोऽर्यमा ।
त्रिलोचनश्चतुर्बाहुर्जीयाल्लोकस्य लोचनम् ।।१६।।

अरुणः सारथिर्यस्य यो बिभर्त्यरुणां रुचिम् ।
गुणसिन्धुः स नो भूयाच्छर्मणे धर्मकर्मठः ।।१७।।

यन्नामस्मरणात् कृत्स्नकार्यसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ।
भक्तानुकम्पिनं वन्दे गजाननमरिन्दमम् ।।१८।।

निर्वर्त्यापचितिं यस्य त्रिपुरं दग्धवान् हरः ।
दमयन्ती नलं लेभे स्तौमि तं चिन्तितप्रदम् ।।१९।।

पवित्रयति यो वह्निश्चराचरमिदं जगत् ।
स ददातु धनं येन चतुर्वर्गोऽन्तिकायते ।।२०।।

जटामौलिं भुजैर्बिभ्रच्चतुर्भिः पद्मविष्टरः ।
इष्टशक्ति स्वस्तिकाभूर्जपाभः स्वर्णभूषणः ।।२१।।

स्वरूप, जिसका अरुण सारथि है तथा जो अरुण प्रकाश रखता है ऐसा सूर्य तथा गुणों का अगार धर्म में कर्मठ हमारे सुख के लिये हो।।१६-१७।।

जिसके नाम स्मरण मात्र से मनुष्यों के सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि हो जाती है, उन भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले तथा शत्रुओं का दमन करने वाले गजानन की वन्दना करता हूँ।।१८।।

जिसकी पूजा करके हर या शिव ने त्रिपुर का दाह किया तथा दमयन्ती ने नल को पाया, उस वाञ्छित वस्तु को प्रदान करने वाले की स्तुति करता हूँ।।१९।।

जो अग्नि सम्पूर्ण चर अचर जगत् को पवित्र करती है तथा जिससे चारों वर्ग समीप आते हैं, वह हमें धन प्रदान करे।।२०।।

यथेच्छ शक्ति वाले, स्वस्तिका के स्थान वाले तथा जपा पुष्प के समान कान्ति वाले तथा स्वर्ण के आभूषण वाले, पद्मासन वाले ब्रह्मा चारों भुजाओं से जटामौलि शिव को धारण करते हुए वन्दना करते हैं।।२१।।

वन्दे पद्मभवां पद्मां पद्माभनयनामिमाम् ।
वृतो यया विचार्यान्यान् हित्वा नारायणः पतिः ।।२२।।

यद्वीक्षणान्निवृत्ताधिर्लोकोऽस्ति सुकलः कलौ ।
सा दुग्धोदधिपुत्री नः स्वदत्ताः पातु सम्पदः ।।२३।।

सरस्वती शुभायास्तु वीणावादनतत्परा ।
यस्यास्तत्त्वपरिज्ञानाज्जनोऽपि लभते गतिम् ।।२४।।

याऽज्ञानतिमिरध्वंसात् प्रबोधयति विष्टपम् ।
सा न याच्या कथं विद्यां विद्यादानमहाव्रता ।।२५।।

दुर्गा दितितनूद्भूतहन्त्री विजयते च सा ।
यदाराधनमात्रेण कृतार्थः शोभते जनः ।।२६।।

कमल से उत्पन्न, कमल के समान आँखों वाली इस पद्मा को नमस्कार करता हूँ। जिसने विचार कर अन्यों को छोड़कर नारायण को पति रूप में स्वीकार किया।।२२।।

जिसको देखने मात्र से लोक कष्टों से मुक्त होकर इस कलि में भी अच्छी कलाओं वाला हो जाता है, वह क्षीरसागर की पुत्री लक्ष्मी स्वयं दी हुई सम्पत्ति की रक्षा करे।।२३।।

वीणावादन में लगी हुई सरस्वती शुभ के लिये होवे, जिसके तत्त्व को जान लेने से कोई भी मनुष्य सुगति को प्राप्त करतां है।।२४।।

जो अज्ञान रूपी अन्धकार के विनाश से पूरे विश्व को जगाती है, वह विद्या दान के महाव्रत वाली याचनीय नहीं है, यह मैं कैसे समझूँ।।२५।।

दिति के शरीर से उत्पन्न होने वाले दैत्य को मारने वाली दुर्गा विजय को प्राप्त कर रही है, जिसकी आराधना मात्र से मनुष्य कृतार्थ होकर सुशोभित होता है।।२६।।

मङ्गल्या या भगवती मङ्गलाय ममास्तु सा ।
द्विड्विनाशाय सैवास्तु या सृष्टिस्थितिनाशकृत् ।।२७।।

वामे करे वरं पात्रं दक्षिणे स्वर्णदर्विकाम् ।
चित्राम्बरधरा श्यामा या धत्ते स्वर्णभाजनम् ।।२८।।

यद्भेदाः सकला रामा या सूते भुवनत्रयम् ।
या सुखाय च दुःखाय सेविताऽसेविता भवेत् ।।२९।।

शिवः शिवाय नो नित्यं शिवर्द्धिशशिशेखरः ।
भूयाद्भूतिसितो भूयान् भगवान् भवभूतिदः ।।३०।।

शूश्रूषन्ते सुराः सर्वे यं पञ्चास्यं नमामि तम् ।
कश्चिन्निन्दति यज्जन्तुं तं ततस्तस्य का क्षतिः ।।३१।।

मंगल से परिपूर्ण भगवंती मेरे लिये मंगल करने वाली हो।वह सृष्टि, स्थिति तथा नाश करने वाली तथा द्वेषी शत्रुओं के विनाश के लिये हो।।२७।।

जो बाँए हाथ में सुन्दर पात्र को तथा दाहिने पात्र में सोने की करछुल रखती है, जो अन्य स्वर्णपात्र भी रखती है, ऐसी विचित्र वस्त्रों वाली श्यामा (मेरे लिये वन्दनीय है।)।।२८।।

सभी राम जिसके भेद हैं, जो तीनों लोकों को उत्पन्न करती है, जो दुःख के लिये सेवित नहीं, अपितु सुख के लिये सेवित है, (वह मेरे लिये वन्दनीय है)।।२९।।

मस्तक पर चन्द्र की ऋद्धि करने वाले शिव सदा कल्याण के लिये हों। भस्म से श्वेत भगवान् सदा कल्याण प्रदान करने वाले हों।।३०।।

देवगण जिन पाँच मुख वाले ब्रह्मा की सदा सेवा करते हैं, उन्हें नमस्कार करता हूँ। (ऐसा न करने वाले) व्यक्ति की यदि कोई निन्दा करे तो उससे क्या हानि है।।३१।।

हरौ संल्लग्नचित्तानां सर्वेषामेव जन्मिनाम् ।
यत्कल्याणं निरीक्षेऽहं तन्न पश्यामि वज्रिणि ।।३२।।

यं विरोध्यापि लोकेशं शिशुपालादिभूमिपाः ।
लेभिरे परमां मुक्तिं तं सेवन्ते न के जनाः।।३३।।

यस्याद्भुतानि वृत्तानि बालस्यापि जगद्गुरोः ।
तेन साम्यं लभन्ते के देवदानवमानवाः ।।३४।।

स्मृतो यच्छति यः श्रेयो हेलयाऽपि यदुद्वहः।
तेन तुल्योऽस्ति को लोको न दत्ते सेवयेतरः ।।३५।।

यस्योदरे विराजन्ति जगन्ति परमात्मनः ।
तस्याऽन्या काऽद्भुता वार्ता पर्वतोद्धरणादिका।।३६।।

हरि में चित्त लगाने वाले सभी प्राणियों का मैं जो कल्याण देखता हूँ, वह इन्द्र में नहीं देखता।।३२।।

जिस लोक के ईश (हरि) का विरोध करके भी शिशुपाल आदि राजा परम मुक्ति को प्राप्त हुए, उनका सेवन कौन नहीं करता।।३३।।

बालक होकर भी जिस जगद्गुरु का अचरजपूर्ण चरित है, उनसे कौन देव दानव तथा मनुष्य समानता स्थापित कर सकते हैं।।३४।।

अनायास ही विशाल भार वहन करने वाला, याद करने पर जो श्रेय प्रदान करता है, उसके समान विश्व में कौन है। अन्य लोग सेवा से भी नहीं देते।।३५।।

जिस परमात्मा के उदर में सभी जगत् विराजते हैं, उसके विषय में पर्वत उठाने आदि की अन्य कौन अद्भुत बात कही जावे।।३६।।

ज्ञातसंसारवृत्तोऽपि नरो यस्यैव मायया ।
न जहाति कुटुम्बाब्धिं मज्जयन्तं जयत्यसौ ।।३७।।

जीयाज्जलजपत्राक्षो जलदाभकलेवरः ।
जलधौ सेतुकर्ताऽसौ जलशायी जनार्दनः ।।३८।।

पद्मं शंखं च चक्रं च गदां दक्षिणतो दधत् ।
केशवोऽस्तु मुदेऽस्माकं स्मरणेन हि तुष्यति ।।३९।।

पद्मं शंखं गदां चक्रं बिभ्रद्भाति स दक्षिणात् ।
य एतैर्विधृतैरेवं दामोदर इति श्रुतः ।।४०।।

गृहीतैरायुधैरेभिर्भिन्नरीत्या हरिर्जयेत् ।
दधन्नामानि चान्यानि द्वाविंशतिमितानि सः ।।४१।।

जिसकी माया से मनुष्य इस विश्व की अन्तिम गति को जानकर भी, डूबते हुए भी इस कुटुम्बरूपी सागर को नहीं छोड़ता, उसकी जय हो।।३७।।

कमल पत्र के समान आँखों वाले, समुद्र पर पुल बनाने वाले, मेघ के वर्ण के समान शरीर वाले जनार्दन तथा जल में शयन करने वाले विष्णु की जय हो।।३८।।

दाहिनी ओर पद्म, शंख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाले केशव हमारी प्रसन्नता के लिये हों। वे स्मरणमात्र से प्रसन्न होते हैं।।३९।।

वे दाहिनी ओर से पद्म, शंख, गदा तथा चक्र को धारण करते हुए सुशोभित होते हैं। इन सबके धारण करने के पश्चात् ये दामोदर नाम से सुने गए हैं।।४०।।

इन आयुधों को भिन्न रीति से धारण करके हरि विजय को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार वे अनेक नाम तथा अन्य २२ नामों को भी धारण करते हैं।।४१।।

कर्मसु क्रियमाणेषु निषिद्धेषु भवत्यघम् ।
तत्फलं कृच्छ्रमाहत्य स्मृतो दत्ते स मङ्गलम् ।।४२।।

तमहं स्तौमि विश्वस्य जीवाधारं सनातनम् ।
अमरा यत्प्रसादेन सन्ति ते नारदादयः ।।४३।।

यः संरक्षति कान्तारे यो गिरौ हिंस्रदर्शने ।
यो रणे योधमुख्यानामग्रतोऽपि नमामि तम् ।।४४।।

कल्याणनिलयः सोऽयं कल्याणेप्सुभिरीहितः ।
सेवितुं नः सदा कुर्यान्मङ्गलानां परम्पराः ।।४५।।

एतस्मिन्नेव मे भक्तिरस्तु भूतानुकम्पिनि ।
एतस्मात्कः परो देवः संसारार्णवतारकः ।।४६।।

एनमेव विशन्त्यन्ये सुराः कल्पक्षये सति ।
अक्षयोऽयं जनास्तस्मात्सेवध्वं तं रमाप्रियम् ।।४७।।

निषिद्ध कर्मों को करने से पाप होता है। स्मरण करने पर उन कार्यों के सम्पूर्ण फलों का विनाश करके वह मंगल प्रदान करते हैं।।४२।।

मैं उन विश्व के प्राणियों के सनातन आधार की स्तुति करता हूँ। जिनके प्रसाद से नारद आदि अमर हैं।।४३।।

जो बीहड़ वन में, जो पर्वत में हिंस्र प्राणी के दिख जाने पर तथा जो संग्राम में योद्धाओं में अग्रणी की रक्षा करता है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ।।४४।।

जो कल्याण चाहने वालों के द्वारा सदा चाहा गया है तथा जो कल्याण का घर है वह सदा सेवन के लिये मंगलों की परम्परा बनावे।।४५।।

इन प्राणियों पर अनुकम्पा करने वाले पर मेरी भक्ति होवे। संसार रूपी समुद्र से तारने वाला इन से बड़ा देव और कौन हो सकता है।।४६।।

सभी देवता कल्प के समाप्त होने पर इनमें ही प्रवेश करते हैं। इस प्रकार ये अक्षय हैं। अतः सभी लोग इन रमाप्रिय अर्थात् लक्ष्मी के प्रिय विष्णु की सेवा करें।।४७।।

आसेवितोऽपि दत्तेऽयं चतुर्वर्गं महायशाः।
असाविव न कोऽप्यस्ति तस्मात्सेव्योऽयमच्युतः ।।४८।।

विना यस्यावतारेण तुरुष्कजलधिर्महीम्।
मज्जयत्येव शोकार्तां कल्किना तेन जीव्यताम् ।।४९।।

वामनीभूय देवानां भूतयेऽबन्धि यो बलिम् ।
परोपकारकः श्रीमान् श्रियं मे वितरत्वयम् ।।५०।।

व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय विष्णवे जिष्णवे नमः।
वेदस्मृतिपुराणानां साराय च नमो नमः ।।५१।।

व्यरमत्प्रणमन्नेष वर्णयित्वेत्थमच्युतम् ।
एकाग्रचित्तस्तं पश्यन् हरिभक्तावरज्यत ।।५२।।

इस महायशस्वी का सेवन न करने पर भी यह चतुर्वर्ग प्रदान करता है। इसके समान अन्य कोई नहीं है। अतएव यह अच्युत सदा सेवनीय है।।४८।।

जिनके अवतार के बिना तुर्कों (यवनों) का समुद्र शोकार्त धरती को डुबोता है, उन कल्कि के द्वारा सब जीवित रहें।।४९।।

जिन्होंने देवताओं के कल्याण के लिये वामन या बौना होकर बलि को बाँध लिया, वे परोपकारी श्रीमान् विष्णु मेरे लिये श्री या सम्पत्ति का वितरण करें।।५०।।

व्यक्त तथा अव्यक्त स्वरूप, सदा जीतने वाले, वेद, स्मृति पुराणों के सार विष्णु को सदा नमस्कार।।५१।।

इस प्रकार वह एकाग्र चित्त वाला राजा अच्युत का वर्णन करते हुए तथा उन्हें प्रणाम करते हुए रुका तथा उनका ही दर्शन करते हुए हरिभक्ति में रम गया।।५२।।

एतैश्चान्यैर्युतां देवैर्विश्वनाथेन चाप्यमुम् ।
कोटराद्दक्षिणामुर्वीं विन्ध्यपादविराजिताम् ।।५३।।

गुप्तवाराणसीं प्राहुः प्रपन्नभयभञ्जिकाम् ।
काशीसमानसन्नाम्नीं काशीलक्षणधारणात् ।।५४।।

यत्राक्षयवटोऽप्यस्ति यत्रास्ति मणिकर्णिका ।
दण्डपाणिः प्रभुर्यत्र यत्र ढुण्ढिर्विराजते ।।५५।।

इत्यादिलक्षणैरेषा गुप्तवाराणसीपदम् ।
दधाना लौकिकं धन्यं विराजति महीतले ।।५६।।

तामपि स्वयमभ्येत्य वीरभानुर्यथोचितम् ।
कर्म तत्र विधायाशु स्वनिवेशगतोऽभवत् ।।५७।।

कियतो वासरान्नीत्वा कोटरे प्रियदर्शने ।
गहोरागमनोत्कोऽसौ कुमारह्रदमागतः ।।५८।।

इन तथा अन्य देवताओं तथा विश्वनाथ के साथ इस कोटर से दक्षिण धरती पर विन्ध्यपर्वत के चरणों में विराजित गुप्तवाराणसी को लोग बताते हैं। यह प्राप्त भय की विनाशिका है तथा काशी के लक्षण को धारण करने के कारण काशी के समान पवित्र नाम वाली है।।५३-५४।।

यहीं पर अक्षय वट है, यहीं मणिकर्णिका घाट है तथा यहीं हाथ में दण्ड धारण किये हुए प्रभु ढुण्ढिदेव की मूर्ति विराज रही है।।५५।।

इन सभी लक्षणों से गुप्त वाराणसी पद को धारण करते हुए धरतीतल में यह धन्य लौकिक स्थान विराज रहा है।।५६।।

वीरभानु स्वयं वहाँ जाकर तथा शीघ्र ही यथोचित कृत्य करके अपने निवास में प्रविष्ट हो गये।।५७।।

इस प्रकार सुन्दर दर्शन वाले कोटर में कुछ दिन बिता कर गहोरा पहुंचने को उत्सुक वीरभानु कुमारह्रद पहुंच गये।।५८।।

कुमारह्रदमालोक्य तुष्टिमापत्परन्तपः ।
कमलप्रकराकीर्णं द्वितीयमिव मानसम् ।।५९।।

महादेवस्य यो मूर्त्या राजतेऽगाधजीवनः।
सोपानैः परभागाद्यैः प्रयागस्तैरिवार्चितः ।।६०।।

उषित्वा मतिमांस्तत्र दिनमेकं कुतूहलात् ।
चलन् गहोरामध्यास्त राजधानीं कुलस्य ताम् ।।६१।।

तदा गहोराध्वजतोरणाद्यैः कुतूहलार्थं रचितैः प्रजाभिः ।
भाति स्म साकेतमिव प्रवेशे रामस्य पौलस्त्यजयस्तुतस्य।६२।

पश्यन् स कौतूहलसंविधानं युवा प्रहृष्टोऽभवदिन्द्रलक्ष्मीः।
पौरैरहंपूर्विकया समुत्कैः श्रीरामवद्वन्दितपादपद्मः ।।६३।।

वह परन्तप कमल के समूह से घिरे हुए, दूसरे मानसरोवर के समान कुमारह्रद को देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुआ।।५९।।

जो अनन्त जीवन वाला महादेव की मूर्ति के साथ तथा सीढ़ी परकोटे इत्यादि के साथ विराजता है वह उनके द्वारा प्रयाग के समान सुपूजित किया गया।।६०।।

वहाँ पर वह बुद्धिमान् कुतूहल के साथ एक दिन रह कर वहां से चल कर उस कुल की राजधानी गहोरा में अवस्थित हुआ।।६१।।

वहाँ पर प्रजा द्वारा कुतूहल के लिये बनाए गये गहोरा के ध्वज, तोरण इत्यादि से वह इस प्रकार सुशोभित हुआ जैसे रावण की विजय से स्तुत राम साकेत में प्रवेश के समय शोभित हुए थे।।६२।।

इस कौतूहल पूर्ण संविधान को देखकर वह इन्द्र की लक्ष्मी वाला युवक अत्यन्त प्रसन्न हुआ। नगरवासी लोगों ने उत्सुकता से अहंपूर्विका अर्थात् 'मैं पहले मैं पहले' करते हुए श्रीराम के समान उनके चरण कमल की वन्दना की।।६३।।

अथ विमलमनीषः प्रीतिमान् द्वारदेवान्
प्रणमति युवराजः स स्म पूजां विधाय।
तदनु विशदहर्म्यं वालनेवालिपुत्र-
प्रथितगुणसमूहस्यायमध्यास्त धीरः।।६४।।

तत्राकरोदपचितिं विधिवत्स वास्तोर्गङ्गाजलोक्षिततनुर्जलजायताक्षः।
तत्सिद्धये व्यतरदेष महानुभावो दानं श्रुतिस्मृतिविदे द्विजपुङ्गवाय।।६५।।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्संजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गश्चतुर्थोऽभवत्।।६६।।

इसके पश्चात् स्वच्छ मति वाले तथा सदा प्रसन्न रहने वाले युवराज ने देवताओं के द्वार या मन्दिरों की पूजा करके प्रणाम किया। उसके पश्चात् वह धीर प्रतिष्ठित गुण समूह वाले विस्तृत महल में अवस्थित हुआ।।६४।।

इसके पश्चात् गंगाजल से सिंचित शरीर वाले तथा कमल के समान दीर्घ आँखों वाले युवराज ने महल की विधिपूर्वक पूजा की। इस पूजा की सिद्धि के लिये इस महानुभाव ने श्रुति, स्मृति को जानने वाले उत्तम ब्राह्मणों को दान का वितरण किया।।६५।।

अच्छे लोगों का प्रिय, सर्वथा यशस्वी जो वैश्यकुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है, उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् श्री माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का शुभ चरित्र वर्णन-विषयक चतुर्थ सर्ग पूर्ण हुआ।।६६।।



पञ्चमः सर्गः।

राज्याभिषेकार्हगृहे निषण्णं सिंहासने तं क्रतु-कर्म-दक्षाः ।
द्विजातयो राज्यधरं समन्त्रैस्तीर्थोदकौघैः स्नपयन्त्यथ स्म ।।१।।

तूर्याणि गम्भीरनिनादमस्मिन् क्षणे मनोज्ञं व्यसृजन्ननेन ।
तस्योदितं सार्वदिकं च भद्रं दिङ्मण्डलेषु प्रसृतेन लोकैः ।।२।।

अयं च भाति स्म विवृद्धतेजाः सुवर्णकुम्भस्थिततोयवर्षैः ।
त्रिपानु (?) सर्वार्थमुखैः स्वमन्त्रै (?) रामन्त्रमुक्तैर्द्विजवर्गमुख्यैः ।।३।।

श्रियाऽभिषेके स च राजति स्म गौरीगुरुर्जह्नुतनूजयेव ।
मूर्धानमारभ्य तदीयमूर्तिं पवित्रयन्त्या गिरिशोऽनयेव ।।४।।

राज्याभिषेक के योग्य गृह पर सिंहासन पर बैठे हुए उस राज्य का भार धारण करने वाले को ब्राह्मण लोग मन्त्रों सहित तीर्थों के जल से स्नान कराते थे।।१।।

इस समय भेरियों ने मधुर तथा गम्भीर ध्वनि की। इसके सभी दिशाओं में फैलने से लोगों के द्वारा इसका सर्वदा होने वाला कल्याण उदित हुआ।।२।।

यह बढ़े हुए तेज वाला राजा मुख्य ब्राह्मणों के द्वारा मन्त्रोच्चारपूर्वक फेंके गए सोने के कुम्भ में स्थित जल की वर्षा से प्रकाशित होता था।।३।।

वह सम्पूर्ण श्री के साथ अभिषेक के समय वैसे ही विराजता था, जैसे गंगा के द्वारा शंकर विराजते हैं। अथवा सिर से लेकर संपूर्ण मूर्ति को पवित्र करने वाली इस गंगा के द्वारा जैसे शंकर सुशोभित होते हैं।।४।।

तमस्तुवन् बोधकरास्तदानीं नानाविधैर्वृत्तशतैर्विनीताः ।
तस्माल्लभन्ते स्म धनानि यानि संख्या न तेषां निरचायि भूम्नः ।।५।।

अन्तेऽभिषेकस्य बहु द्विजेभ्यः स दक्षिणामर्पयति स्म दक्षः ।
तदाशिषस्तथ्यतमाः प्रशस्ता मूर्ध्नाऽऽददानः प्रणतेन भक्त्या।।६।।

स संयतान् मोचयति स्म सर्वान् वध्यानपि त्याजयति स्म सद्यः ।
अवाहकत्वं च धुरंधराणां गवामदोह्यत्वमचीकरच्च ।।७।।

नर्मप्रदान् पत्रिगणान् प्रविष्टो व्यसर्जयद्धर्ममतिः शुकादीन् ।
विमोक्षसंजातसुखा विरावैस्तदाशिषः किं जनयन्ति ते स्म ।।८।।

युग्मम्

स्रग्वी स भद्रासनमन्यदेत्य ततो विविक्तालयमध्यवर्ति ।
धूपेन सौरभ्ययुजश्च केशान् कृत्वा वपुश्चन्दनलेपशोभि ।।९।।

उस समय विनम्र स्तुति करने वालों ने अनेक प्रकार के सैकड़ों विशेषणों से स्तुति की। उन्होंने उससे जो धन प्राप्त किया, उसके विस्तार की संख्या को कोई गिन नहीं पाया।।५।।

अभिषेक के अन्त में वह बुद्धिमान् द्विजों को बहुत दक्षिणा देता था। साथ ही उनसे प्रशंसित तथ्यपरक आशीर्वाद को भक्ति से सिर झुका कर ग्रहण करता था।।६।।

वह (उस समय) सभी कैदियों को छोड़ देता था तथा मारने वालों को भी तुरन्त छोड़ देता था। बैलों को अवाहक तथा गायों को अदोह्य बनाया (अर्थात् उनसे काम नहीं लिया)।।७।।

उस धर्मबुद्धि वाले ने पिंजरे में बन्द सुख देने वाले तोते आदि पक्षिसमूह को छुड़ा दिया। अपनी स्वतंत्रता के सुख से वे शब्द करते हुए क्या अनेक आशीर्वाद नहीं देते थे।।८।।

वह माला धारण करने वाला अन्य सुन्दर आसन को प्राप्त करके वहां से बीच के एकान्त कमरे में जाकर धूप से केशों को सुगन्धित बनाकर शरीर में चन्दन के लेप से शोभित होता था।।९।।

उष्णीषमादत्त वरं द्विधाऽयं पट्टाम्बरेणापि तथा च भङ्ग्या।
चित्तं हरन्तं सकलप्रजानामनेकरत्नद्युतिभिर्मनोज्ञम्।१०।

आभाद्दधत्कुण्डलमेष वीरो विलासिनीमानसबन्धिधीरम्।
तत्तर्क्यते चित्तभुवः सुबुद्धेर्न्यासीकृतः पाश इतीह पुण्ये।।११।।

हारो नृपं मोदयति स्म देवच्छन्दो हृदिस्थो रमयन् जनौघम्।
मुक्ताफलस्थूलतमत्वदृष्ट्या सविस्मयं वर्णिततोयराशिम्।।१२।।

राजोर्मिकालङ्कृतहस्तशाखः केयूरमादाच्च विनीतवेषः।
किर्मीरितं कङ्कणमृद्धशोभं ततो मणीभिः स्मरवद्व्यलोकि।।१३।।

युग्मम्

स दर्पणेऽलङ्करणानि वीक्ष्य निजानि राजा विततप्रमोदः।
अगात्सभां भूपतिमण्डितां तां सभ्यैर्जनैर्जातरुचिप्रवीणाम्।।१४।।

उसने पट्ट वाले वस्त्र से दो बार मोड़ कर सभी प्रजाओं के मन को हरने वाली, अनेक रत्नों के प्रकाश से सुन्दर पगड़ी बांधी।।१०।।

वह विलासिनी स्त्रियों के मन को बाँधने में समर्थ कुण्डल को धारण करते हुए सुशोभित हुआ। वह सुबुद्धि कामदेव का पुण्य के ऊपर लगाया गया पाश प्रतीत होता था।।११।।

इसके सीने में स्थित १०० लट की मोतियों की माला लोगों को आनन्दित करती हुई उसे मुदित करती थी। वह मोटे मोती के फल की दृष्टि से विस्मयपूर्ण जलराशि लटकती प्रतीत होती थी।।१२।।

वह हाथ की उँगलियों में राजकीय अँगूठी से अलंकृत था। साथ ही उस नम्र वेश वाले ने केयूर धारण किया था। मणियों से समृद्ध शोभा वाले अनेक रंगों वाले उसके कंगन को लोगों ने कामदेव के समान देखा।।१३।।

वह राजा दर्पण में अपने निज़ी आभूषणों को देखकर बड़ी प्रसन्नता के साथ राजाओं से सुभूषित, सभ्य जनों के द्वारा उनकी रुचि तथा प्रवीणता से परिपूर्ण सभा में जाता था।।१४।।

शुभ्रातपत्रेण च चामराभ्यां तद्रामचन्द्रत्रितयेन जिष्णुः ।
उपास्यमानः कृतदृष्टिशब्दः श्रीरामवत्पार्वणचन्द्रचारुः ।।१५।।

सिंहासने सिंहसमानवीर्यः स्थितो बिभर्ति स्म पितुः स तत्र ।
शोभां निबद्धैर्बलरत्नवृन्दैर्यद्भाः किरत् त्वष्टृविसृष्टमूहे ।।१६।।

युग्मम्

अथ स्थिरेशाः स्थिरराज्यभाजो नार्यैर्गुणैः संसदि भासुरस्य ।
तस्याङ्घ्रिनम्रा उपदीकृतानि हस्त्यश्वरत्नानि निवेदयतः ।।१७।।

नृपादपि स्वस्य महत्त्वहेतोः प्रसादचिह्नग्रहणैर्गरिष्ठाः ।
आह्लादमाना हितमिष्टवाचः किलाभवन् जातमुखप्रसादाः ।।१८।।

वह जीतने वाला राजा चामर सहित अपने स्वच्छ श्वेत छाते के द्वारा तीनों रामचन्द्रों के समान प्रतीत हुआ। जिसके प्रति लोगों ने आँखें करना तथा बातें करना शुरू कर दिया है, ऐसा वह लोगों से उपासित राजा श्रीराम के समान बढ़े हुए चन्द्र के समान सुन्दर प्रतीत हुआ।।१५।।

वह सिंह के समान बल वाला सिंहासन में स्थित होकर अपने पिता की शोभा को धारण करता था। वह शोभा से परिपूर्ण रत्नसमूहों से प्रकाश को छोड़ता हुआ देवताओं के शिल्पी त्वष्टा द्वारा छोड़ी गयी कान्ति वाला प्रतीत होता था।।१६।।

वहाँ स्थिर राज्य के योग्य स्थिर राजा संसद में उस प्रकाशमान के गुणों को पूजते थे। चरणों में नम्र हुए वे लोग भेंट किये गये हाथी घोड़े तथा रत्नों को निवेदित करते थे।।१७।।

राजा से अपने महत्त्व के लिये प्रसन्नता के चिह्न से परिपूर्ण आह्लादकारी तथा हितकारी गम्भीर तथा इष्टवाणी लोगों के मुख की प्रसन्नता के लिये हुई।।१८।।

ततोऽनुगा यावकरागभाजोस्तत्पादयोर्नम्रतरा व्यराजन् ।
उपायनं चोत्तमवस्तुजातं समाहरन्तस्तदितस्वकामाः ।।१९।।

आरुह्य राजा द्विरदं सहर्षैरपक्ष्मपातैः प्रचरन् पुरस्थैः ।
पुर्यां यथा तन्नगरीस्थदेवैरैरावतस्थो मघवा व्यलोकि ।।२०।।

तं सार्वभौमं रिपुवर्गभीमं सर्वाङ्गरम्यं विलसन्मुखाब्जम् ।
विलोक्य ते तोषमुपेयिवांसः साफल्यमक्ष्णामलभन्त सद्यः ।।२१।।

राजा गहोरात्रिदशानथार्चत्तदिष्टवस्तुप्रकरैः पवित्रः ।
तेषां प्रसादाच्छुभकर्मजातं संजायते तेन त एव पूज्याः ।।२२।।

कौबेरदेवं प्रथमं स राजा संपूज्य लोकावगतप्रतिष्ठम् ।
तस्य स्तुतिं भक्तिमतां परार्ध्यः कृत्वेति पूजामकरोत्परेषाम् ।।२३।।

उसके पैरों के यावक अर्थात् लालिमा के रंग को प्राप्त होने वाले अनुचर और नम्र होकर प्रकट हुए। साथ ही वे उस राजा से उत्तम वस्तु वाले उपहार को प्राप्त करके अपनी पूर्ण कामना वाले हुए।।१९।।

उस समय हर्षित अपलक नेत्रों वाले नागरिकों के सामने राजा उस नगरी में बैठकर चले। वे मानों उस नगरी में देवताओं के द्वारा ऐरावत में चढ़े हुए इन्द्र के समान देखे गए।।२०।।

उस समय भूमण्डल में व्याप्त शत्रुओं के लिये भयंकर, सर्वांगसुन्दर मुखकमल वाले राजा को देखकर उन लोगों ने सन्तोष को प्राप्त किया तथा तुरन्त ही अपनी आँखों की सफलता पाई।।२१।।

राजा ने देवताओं के द्वारा आदिष्ट वस्तु समूह से पवित्र होकर गहोरा के तैंतीस देवों की पूजा की। सभी शुभ कर्म उनकी ही प्रसन्नता से सम्पन्न होते हैं। अतः वे ही पूज्य हैं।।२२।।

उस राजा ने लोक में जिसकी प्रतिष्ठा जानी गयी है ऐसे कौबेरदेव की पहले पूजा करके अन्यों की पूजा की। क्योंकि अधिकतम भक्तिशाली लोगों ने उसकी स्तुति करके ही अन्यों की पूजा की थी।।२३।।

अयं बघेलान्वयवृद्धिहेतुः सनातनीं नो विदधातु वृद्धिम् ।
एतत्प्रभावो यदहं निहन्मि रणे रिपुं सिंह इवेभराजम् ।। २४।।

कौबेरदेवः पृथुकायशोभी भक्तेप्सितं यो वितरत्यवश्यम् ।
यो मण्डनं नः कुलराजधान्याः स सर्वलोकस्य शुभाय भूयात् । २५।।

विराजमानो भुवि देहभाजां स्रष्टा विचारप्रवणेन हृद्यः ।
समीहिताप्त्यै कलुषापहारी यः स्थापितोऽभूत स करोतु भद्रम् ।। २६।।

उपत्यकाधिष्ठितमूर्तिरेष प्राकाररम्योच्चमठप्रतिष्ठः ।
प्रेक्ष्यो न विस्मापयते मनुष्यान् दृष्टोऽनुकूलं रचयन्नमीषाम् ।। २७।।

एतत्कथा विस्मयसिन्धुवीचिर्जनास्यचन्द्रेण विवृद्धिमाप्ता ।
न कस्य चेतांसि कुतूहलेन पूर्णानि पूर्णा कुरुते जगत्याम् ।। २८।।

यह बघेल वंश की वृद्धि का कारण (कौबेरदेव) सनातन वृद्धि को बनाए रखे। यह इस देव का ही प्रभाव है कि मैं संग्राम में शत्रु को वैसे ही मारता हूँ जैसे सिंह हाथियों के राजा को मारे।। २४।।

कौबेरदेव अपनी विस्तृत काया से शोभित हैं। ये भक्तों को ईप्सित वस्तु अवश्य प्रदान करते हैं। जो हमारी कुल राजधानी के भूषण हैं वे सभी लोकों के शुभ के लिये हों।। २५।।

इस धरती में विराजमान शरीरधारी लोगों की रचना करने वाले, अपनी विचारशीलता से हृदय को सुख देने वाले, इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिये पापों का विनाश करने वाले, जिनकी यहाँ स्थापना की गई है वे कल्याण करें।। २६।।

इनकी मूर्ति उपत्यका में अधिष्ठित की गई है, दीवाल से रमणीय ऊँचे मठ में इनकी प्रतिष्ठा की गई है। ये दर्शनीय लोगों को विस्मृत नहीं करते। क्योंकि ये लोगों के अनुकूल रचना करते हुए देखे गए हैं।। २७।।

यह विस्मय के समुद्र के तरंगों वाली, लोगों के मुखचन्द्र से वृद्धि को प्राप्त पूरी राजकथा इस विश्व में किसके चित्त को कुतूहल से पूर्ण नहीं बनाती।। २८।।

कौबेररामत्रिदशो गहोरां चेन्मण्डितां नो विदधीत मन्ये ।
स्वकीयवासेन कथं गहोरा ततो विराजेच्छिवतोऽलकेव ।।२९।।

एतन्नमस्कारकृतां जनानां न भीतिमूहे यमतोऽपि नित्यम् ।
महाप्रभावो महनीयकीर्तिः शिवांशभूर्नन्दिगणेन तुल्यः ।।३०।।

अस्मासु शर्माण्यनिशं तनोतु कौबेरदेवोऽयमनादिसिद्धः ।
परोपकारी परिणाहिशीलः सर्वेषु लोकेषु कृपासमुद्रः ।।३१।।

तस्याभिषेके प्रकृतिप्रसेके श्रुते विपक्षाः सकला विपक्षाः ।
जाता यथा सर्वजना विहीताः? सतां प्रभुत्वे वितते विधाता? ।।३२।।

यो लक्षणान्यत्र बिभर्ति राज्ञां विवेकिनां नीतिमतां सहिष्णुः ।
स केन राज्ञा तुलनामुपैति द्वितीयधर्मात्मज एष जातः ।।३३।।

कौबेर, राम आदि ३३ देवता यदि गहोरा को विभूषित न करें तो मैं समझता हूं कि इन लोगों के विराजने की इच्छा वाले लोगों के निवास से गहोरा अलकापुरी के समान किस प्रकार हो।।२९।।

इन्हें नमस्कार करने वाले मनुष्यों को यम से भी डर नहीं होता, ऐसा मै समझता हूँ। ये महाप्रभाव, सुपूजित कीर्ति वाले, नन्दिगणों के तुल्य, शिव अंश के समान हैं।।३०।।

यह अनादि काल से सिद्ध या परिनिष्पन्न कौबेरदेव सदा हमें आनन्द वितरित करें। यह परोपकारी, विस्तारशील तथा सभी लोगों के प्रति कृपा का समुद्र है।।३१।।

प्रकृति की उन्नति की दशा में उसके अभिषेक के समय, अच्छे लोगों के प्रभुत्व बढ़ जाने की स्थिति में सभी विपक्ष लोगों के हित के लिये हो गये।।३२।।

जो सहिष्णु, विवेकी तथा नीतिमान् राजाओं के लक्षणों को धारण करता है, उसकी किस अन्य राजा से तुलना हो सकती है। यह तो दूसरा धर्मपुत्र युधिष्ठिर उत्पन्न हुआ है।।३३।।

श्रुत्वा बहुभ्यो बहुधा बहूनि शिष्टेभ्य एष प्रतिपत्तिमागात् ।
यथा नलो राम इव प्रवीरः शक्रो यथा गीःपतितद्गुरुभ्यः ।।३४।।

अथात्मनीनं विगणय्य बुद्ध्या तदेव कुर्वन्निजधर्मनिष्ठः ।
त्रिवर्गलब्धेर्भुवि दुर्लभायाः पदं नृपोऽभूत्परमर्दनोऽसौ ।।३५।।

वंशस्थितिर्वंशकरैरपीशैर्दृढैव कार्या धनधर्मराज्यैः ।
देशादिभिर्मौलजनैश्च शुद्धैरिदं विविच्यात्र शुभं व्यधात्सः ।।३६।।

राज्यस्थितौ यच्चतुरत्वमस्य यल्लोकरागादिषु यद्विवेके ।
तच्चेद्दिवः स्वामिनि तर्कयेन्नु भूपे परस्मिन् क्व विभाति भूमौ ।।३७।।

अनेक विद्वान् लोगों से अनेक प्रकार का ज्ञान लेकर इसने धारण किया। जैसे नल अथवा जैसे वीर राम ने अथवा जैसे इन्द्र ने बृहस्पति से तथा उन्होंने अन्य गुरुओं से ज्ञान पाया वैसा ही इसने भी प्राप्त किया।।३४।।

यह धर्मनिष्ठ अपने कार्य को भली प्रकार बुद्धि से सोच कर वैसा ही करता था। इस शत्रुओं को दमन करने वाले को त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम के प्राप्त होने के कारण इसने धरती में दुर्लभ पद को प्राप्त किया।।३५।।

वंश बनाने वाले राजाओं के द्वारा भी धन, धर्म, राज्य की अपेक्षा वंशस्थिति को दृढ़ रखना चाहिये। विभिन्न स्थानों के प्राचीन बड़े लोगों से इसकी विवेचना करके उसने यह शुभ कार्य किया।।३६।।

प्रजा के रंजन के विषय में, विवेक के विषय में या राज्यस्थिति के विषय में चतुराई पर यदि विचार करें तो यह (द्युलोक में) वहाँ के स्वामी इन्द्र में है, ऐसा सोच सकते हैं। पर इस धरती में राजा के अलावा अन्य किसमें यह चतुराई प्रकाशित हो सकती है।।३७।।

य एष एतत्सततं समृद्धो व्यचारयज्जीवितकालमेत्य।
ग्राह्या परेषां धरणी यशस्या किमायुषो व्यर्थसमापनेन।।३८।।

अनेकदुर्गेषु यदेकदुर्गं तदाश्रितं पत्तनमावसन् सः ।
न शत्रुभीतिं मनसाऽथ वाऽऽपद्यथा हरिर्द्वारवतीमुपेतः ।।३९।।

स्थितिं तु तत्र स्म तनोति तेन द्विषज्जिगीषार्पितमानसोऽयम्।
यत्र स्थितो द्वेषणवर्गदेशप्रभुत्वमापत् परिणामरम्यम्।।४०।।

मृषा न चोक्तं न हठो व्यधायि न दैन्यमालम्बि महेश्वरेऽपि।
वाणी न रूक्षाऽभिहिताऽपि शत्रौ युधिष्ठिरेणेव नृपेण तेन।।४१।।

क्रियाशुकारी भवतीश्वरो यः स सर्वसंपन्निलयो विवेकात्।
तस्मादसौ शीघ्रतया विशिष्टः कार्याणि संसाधयति प्रहृष्टः ४२।

जिस समृद्ध ने सदा ही यह सोचा कि जीवन काल को प्राप्त करके दूसरों की यशस्वी धरती पर अधिकार करो। व्यर्थ ही आयु बिताने से क्या लाभ।।३८।।

वह अनेक दुर्गों के अन्दर रहने वाले एक विशेष दुर्ग में तथा उस दुर्ग पर आधारित नगर में रहते हुए मन से शत्रु के किसी डर से भीत नहीं हुआ। जैसे कृष्ण द्वारका को प्राप्त करके भयरहित रहे।।३९।।

इसलिये इस शत्रुओं को जीतने की इच्छा के प्रति लगे हुए मन वाले राजा ने ऐसी जगह पर अपनी अवस्थिति बनाई जहाँ पर रह कर परिणाम में रमणीय शत्रुओं के स्थान पर प्रभुत्व पा सके।।४०।।

इस राजा ने कभी झूठ नहीं बोला, कभी हठ नहीं किया, महेश्वर से भी अपनी दीनता नहीं दिखाई। राजा युधिष्ठिर के समान शत्रु से भी रूखी वाणी नहीं बोली।।४१।।

जो ईश्वर अपने विवेक से सभी क्रियाओं को अत्यन्त शीघ्र कर पाता है वही सम्पूर्ण सम्पत्तियों का स्थान होता है। इसलिये यह प्रसन्नतापूर्वक सभी कार्यों को शीघ्रता से संसाधित करता था।।४२।।

हितैषिणां प्राक्तनसेवकानां न द्वारवारोस्य कदाचिदेव ।
न नीतिविद्याविमलाशयानां प्रमाद्यति स्वान्तमिहोत्तमेषु ।।४३।।

दूरे हितानन्तिकतोऽसतश्च नास्थापयद्भद्रविचारदृष्ट्या ।
यथोक्तकारी ह्यसतां सतां च न वैपरीत्येन विधिं करोति ।४४।।

सन्तः समीपस्थितयो विधेयाः पृष्टा हि ते धर्ममुदीरयन्ति ।
निसर्गतोऽसाधुजना न सम्यग्वदन्ति तस्मात्स सतः समेति ।४५।

तथा स सप्ताङ्गविचारनिष्ठोऽभवद्यथा तद्भवति स्म तद्वत् ।
यथा करस्थं बदरीफलं स्यात्समस्तसंदृष्टविशेषवृत्ति ।४६।

हितैषी तथा पुराने सेवकों के लिये इसके दरवाजे में कभी प्रतिषेध नहीं था। क्योंकि नीतिविद्या से निर्मल चित्त वालों का मन उत्तम लोगों के प्रति कभी प्रमादी नहीं होता।।४३।।

उसने भद्र विचार की दृष्टि से हितकारी लोगों को कभी दूर नहीं रखा तथा खराब लोगों को कभी पास नहीं रखा। वह खराब तथा अच्छे लोगों के प्रति उपर्युक्त प्रकार का व्यवहार करने वाला था, कभी भी वह विपरीत प्रकार नहीं अपनाता था।।४४।।

अच्छे लोग पास में रह कर नम्र होते हैं तथा पूछने पर धर्माचरण बताते हैं। पर स्वभाव से असाधु लोग ऐसा नहीं करते। अतः वह अच्छे लोगों की ही संगति करता था।।४५।।

साथ ही वह जो चीज जिस प्रकार की है इस रूप में सप्तांग अर्थात् राज्य के सातों अंग-स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग तथा बल - इन विषयों पर विचार करता था। जैसे हाथ में प्रत्यक्ष बेर का फल हो, उस प्रकार सबकी विशेषताओं को देखते हुए स्पष्ट विचार करता था।।४६।।

राज्यस्य रक्षामकरोत्तथाऽयं यथा न दोषं भजते तदेतत् ।
तस्मिन्नदुष्टे सुलभोऽभिलाषस्ततः स कार्यो विधिरेष भूपैः ।४७।।

दुर्गे स्त्रियः पुत्रधनानि सन्ति द्विषश्च रन्ध्रेक्षणजागरूकाः ।
अतस्तदङ्गं सुतरामवेक्ष्यं हितैषिभिः पालयते स भृत्यैः ।४८।।

रक्षात्मनस्तेन विभीतिनाऽपि मौलैः कृता ते न भवन्ति जातु ।
भेद्या रिपूणां द्रविणैर्महार्घैः शीलं प्रमाणं कुलमत्र चास्ति।।४९।।

कामादिषड्वर्गजयप्रतिष्ठं कामोद्भवः क्रोधभवो गणश्च ।
कथं नृपं जेतुमलं स्वहेतोर्जयाज्जवादेव पलायतेति ।।५०।।

न चार्थसिद्धिश्चलमानसानां भवेदिति क्ष्मापतिनाऽवधार्य ।
स मानसस्थैर्यमकारि चित्ते स्थिरे हि तद्ब्रह्म बुधा लभन्ते ।।५१।।

वह राज्य की रक्षा इस प्रकार करता था जिससे कोई दोष न हो। उसके अदोषपूर्ण होने पर सभी अभिलाषाएं सुलभ होती हैं। अतः ऐसा ही कार्य राजाओं द्वारा करना चाहिये।।४७।।

दुर्ग में स्त्रियां, पुत्र तथा धन होते हैं तथा छिद्र देखने में जागरूक द्वेषी लोग भी होते हैं। अतः इस अंग को भली प्रकार देख कर वह हितैषी भृत्यों के साथ लोगों का पालन करता था।।४८।।

इसने डरते हुए भी अपनी रक्षा की। जैसी पुराने बड़े लोगों ने की थी। वे अब नहीं हैं। शत्रु के (दुर्ग को) बहुमूल्य धन से फोड़ लेना चाहिये। इसमें ही शील, प्रमाण तथा कुलीनता भी है।।४९।।

काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर इन ६ वर्गों के विजय पर ही मनुष्य की प्रतिष्ठा होती है। अतः काम या क्रोध का उद्भव किस प्रकार किसी राजा की विजय के प्रति सामर्थ्यशाली हो सकता है। यह तो विजय से शीघ्र ही दूर भाग जाता है।।५०।।

भूपति ने यह भली प्रकार समझ कर कि चंचल चित्त वालों से अर्थसिद्धि नहीं होती उसने सदा अपने चित्त में मन की स्थिरता बनाए रखी। बुद्धिमान् लोग स्थिर चित्त में ही ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।।५१।।

दातापि राजाऽचतुरो न हृद्यो लोकेऽभवद्यत्तत एव हेतोः।
चातुर्यमन्विष्यति शास्त्रदृष्ट्या लोकोक्तरीत्या च जगद्धितैषी ।५२।।

राज्यप्रकर्षाय स चिन्त्यमानात् सप्ताङ्गमन्त्राद्विजनोत्सुकोऽपि ।
मध्येसभं चोपविशन् व्यराजज्जनानुरागाय यतो हि सिद्धिः ।५३।।

नियोगिनस्ते विधिषु प्रयुक्तास्तेन स्वचिह्नं दधति स्म येऽमी।
वृद्धिक्षमा राज्यपदस्य भक्ता जिष्णोरिवात्यक्तकुलक्रमाश्च।।५४।।

अमात्यवर्गो नृपतेर्विकासी श्रियं परां पुष्यति तद्धितैषी ।
पद्मव्रजोऽर्कादिव सौरभेण गुणेन कान्तः कमलैकबन्धोः ।।५५।।

येऽमात्यवर्याः स्मृतिवेददृष्ट्या न लङ्घयन्ते पदवीं नृपेण।
ते कां न पूजां भुवने लभन्ते यथार्थवादप्रतिपन्नपुण्याः ।।५६।।

लोक में राजा दानशील होकर भी चतुर न हो तो वह हृदय को प्रिय नहीं होता। इसलिये जगत् के हितैषी लोग लोकोक्त रीति से तथा शास्त्र रीति से भी चातुर्य को खोजते हैं।।५२।।

वह राज्य की उन्नति के लिये सोचे जाने वाले सप्तांग मन्त्र के समय कभी एकान्त चाहते हुए भी सभा के मध्य बैठे हुए विराजित रहता था। क्योंकि कार्य सिद्धि सदा लोगों के प्रति अनुराग से ही होती है।।५३।।

कार्यों में लगाए गये जो अधिकारीगण इन (कर्तव्यरूपी) चिह्न को धारण करते हैं, वे ही वृद्धि करने में समर्थ, राज्य पद को पूर्ण करने वाले तथा जिष्णु के समान कुल परम्परा को न छोड़ने वाले होते हैं।।५४।।

जो अमात्य वर्ग राजा की उन्नति करने वाला हो, उसका हितैषी हो वह असीम शोभा पाता है। जैसे कमलों का अकेला मित्र सूर्य से (खिलने वाला) कमल अपने सुगन्धित गुण से कमनीयता प्राप्त करता है।।५५।।

जो अमात्य या मन्त्री स्मृति, वेद की दृष्टि से पद्धति का उल्लंघन नहीं करते वे यथार्थ वचन से पुण्यशाली लोग राजा से इस धरती में कौन सी पूजा प्राप्त नहीं करते।।५६।।

नियोगिनो यस्य निजाधिकारे परीक्ष्य दत्तेऽविकलाः प्रभान्ति।
सुखस्य राज्यस्य हि हेतुभूतैस्तैरप्रमत्तैर्नृपतेर्दृढत्वम्।।५७।।

गृह्णन् स मौलान् पुरुषान् जनेन विधापयंस्तर्कममुं विभाति।
यथाऽस्य चासीज्जनकोऽधिकर्द्धिस्तथा समृद्धो भविता नृपोऽयम्।५८।

दैनंदिनायव्ययचर्चकोऽयं तच्छ्रावकस्योत्तमनिश्चयस्य।
मानप्रदानेन करोति तुष्टिं मानेन सन्तः सुलभा हि भृत्याः।।५९।

यः स्मारकोऽभून्नृपतेर्विधीनां राष्ट्रोचितानां नृपतिश्च विज्ञः।
सत्कारदानादनुरञ्जयंस्तं स्मृत्वा विधीन् स्वानकरोद्विचार्य।६०।।

संसेवने दत्तहृदः समस्तान् सामन्तलोकानपि मानयन् सः।
तद्भूपरित्यागविवृद्धराज्यैस्तैः सैन्यकोशैरपि वर्धितोऽभूत्।६१।।

जिस राजा के अधिकारी अपने अधिकारों की भली प्रकार परीक्षा करके निर्णय देते हुए पूर्ण प्रतीत होते हैं। सुखी राज्य के कारणभूत उन अप्रमादी लोगों से ही राजा की दृढ़ता होती है।।५७।।

वह राजा लोगों के द्वारा बड़े पुराने लोगों को इकट्ठा करते हुए लोगों में इस परिकल्पना को प्रकाशित करता था कि जैसे इसका पिता अत्यधिक समृद्धिशाली था वैसे ही यह राजा भी समृद्ध होने वाला है।।५८।।

वह राजा सही निश्चय करने वाले अपने मुनीम के साथ प्रतिदिन के आय व्यय की चर्चा करता था। सम्मान के प्रदान से किसी को सन्तुष्टि दी जा सकती है। अच्छे भृत्य सम्मान से सुलभ रहते हैं।।५९।।

जो भी मनुष्य राष्ट्रोचित राजा के कार्यों का स्मरण कराने वाला होता था, उसे वह बुद्धिमान् राजा सत्कार तथा दान से प्रसन्न करते हुए उन कार्यों को याद करके तथा विचार करके पूरा करता था।।६०।।

राजा के सेवन में मन लगाने वाले सभी सामन्त लोगों का भी उसने सम्मान किया। अपनी जमीन के परित्याग से राज्य बढ़ाने वालों के द्वारा तथा सैन्य कोश के द्वारा भी वह समृद्ध हुआ।।६१।।

तस्यातिथौ सत्कृतिरस्ति नित्यं लब्धावपि श्रीमति सा गरिष्ठा।
आतिथ्यकर्म प्रवदन्ति धीराः शीघ्रं विधातुं विधिना विधिज्ञाः ।।६२।।

नीत्या गहोरामनुजान् विमुक्तांस्तिरस्करोति स्म स सिद्धिलिप्सुः।
समागतानाद्रियते कुलीनान् देशान्तरात्तत्करणीयसिद्ध्यै ।।६३।।

बलं विधेयं धरणीधरेण मृधक्षमं यद्भवति प्रशस्तम्।
द्विषो द्विषन्तः प्रबला ह्यनेन क्षतिं लभन्ते लघु तद्व्यधायि।६४।।

अश्वाः कियन्तोऽपि गृहाङ्गणस्थाः सज्जा विनीता विहिताश्च तेन।
अश्वैर्हि भूपैर्विजिता परोर्वी न तद्भयं तेषु समीपगेषु ।।६५।।

अन्यायमार्गप्रवणाः समूलं जग्मुर्गमिष्यन्ति च यान्ति नाशम्।
महीभृतस्तन्नयमार्ग एव प्रवर्तते, वृद्धिमुपैति चायम् ६६।

धन सम्पत्ति प्राप्त कर लेने पर भी उसमें अतिथि के प्रति गम्भीर सत्कार की भावना थी। धीर नीति को जानने वाले लोग विधिपूर्वक आतिथ्य कार्य के शीघ्र विधान के लिये कहते हैं।।६२।।

वह सिद्धि चाहने वाला गहोरा को छोड़ गए छोटे भाइयों का नीति से तिरस्कार करता था। अन्य देशों से आये हुए कुलीन लोगों का उनके कार्य की सिद्धि के लिये आदर करता था।।६३।।

धरती को धारण करने वाले राजा के द्वारा बल या सेना का विधान करना चाहिये। जो बल युद्ध के योग्य हो, वही प्रशंसनीय होता है। इस बल से प्रबल द्वेष करने वाले शत्रु क्षति को प्राप्त होते हैं। अतः इससे उसने (शत्रुओं के बल को) छोटा किया।।६४।।

उसने महल के आँगन में रहने वाले कितने ही विनम्र तथा सुसज्जित घोड़ों का विधान किया। उन घोड़ों को पास में रखने से घोड़ों द्वारा जीती गई दूसरे की धरती से कोई भय नहीं होता।।६५।।

अन्याय मार्ग की ओर ढुलने वाले लोग समूल नाश को प्राप्त हुए तथा नाश को प्राप्त होंगे भी। अतः राजा लोग नीतिमार्ग पर चलते हैं। उससे यह राजा भी वृद्धि को प्राप्त करता है।।६६।।

गोब्राह्मणानां वधतो ग्रहाच्च न दुर्गतिरुद्धरणं नराणाम् ।
तत्पूजया सर्वशुभानि नूनमिति प्रबुध्य द्विजगोहितोऽभूत् ।।६७।।

कृष्टा परीता च निवासिता च क्षितिर्नृपाणां वशगा फलाय ।
तस्मादसौ दुर्जनतर्जनेन क्षितिं व्यधान्नीतिबुधस्तथैव ।६८।

अथेश्वरं तं परितोषराजं भृत्याः स्वदुःखं विनिवेदयेयुः ।
यदा तदा तेन यथा विमुक्तास्तथाऽकरोत्सर्वहितोद्यतोऽसौ ।।६९।।

निरन्तरं यस्य सभासु चर्चा राज्यस्थिरत्वस्य भवत्यशेषा ।
द्वेषं च रागं च भयं च मुक्त्वा प्रस्तूयमाना सचिवैरदुष्टैः ।।७०।।

चर्चा कृता या निजभृत्यरत्नैरङ्गेषु सप्तस्वपि तां श्रृणोति ।
स चादरात्पर्यनुयोगशाली ततो न नश्येत्तदशेषकृत्यम् ।७१।।

गाय तथा ब्राह्मणों का वध अथवा उन्हें कैद करने से मनुष्यों का दुर्गति से उद्धार नहीं हो सकता। उनकी पूजा से निश्चय ही सभी शुभ होते हैं। यह सोचकर सदा ब्राह्मणों तथा गायों के हित में तत्पर रहा।।६७।।

राजा के अधीन जोती गई, उस पर संचरित तथा निवासित धरती सदा फल देने वाली होती है। इसलिये इस नीति के जानकार ने दुर्जनों को दबाते हुए धरती की व्यवस्था की।।६८।।

सभी भृत्य लोग इस अत्यन्त सन्तोषी राजा से अपने दुःखों का निवेदन करते थे। सबके हितों में उद्यत इस राजा ने ऐसा कार्य किया, जिससे वे भृत्य स्वतंत्र होकर कार्य करें।।६९।।

जिसकी सभा में राज्य की स्थिरता के विषय में निर्दोषी सचिवों के द्वारा द्वेष, राग तथा भय से मुक्त होकर प्रस्तुत की गई सम्पूर्ण चर्चा निरन्तर होती रहती है (वही राज्य स्थिर होता है)।।७०।।

अच्छे भृत्यों के द्वारा सातों अंगों के विषय में की गई चर्चा को वह सुनता है। साथ ही उनके विषय में भली प्रकार पूछताछ करता है। इससे उसके सम्पूर्ण कृत्य नष्ट नहीं होते।।७१।।

युग्मम्

स किं भवद्भिः क्रियते स्म चर्चा या राज्यलक्ष्मीहितकारिणीति ।
पृष्ट्वा विदित्वा सचिवप्रवृत्तिं चर्चावसाने सचिवान् गृहाय ।।७२।।

विसृज्यमानः स्वहिताहितज्ञो व्यभादयं तेऽवहिता इति स्युः ।
कार्येषु तस्मान्नृपतेर्विवेको राज्यप्रवृद्धौ करणं प्रदिष्टम् ७३।

कोशेन दण्डेन च जायमानः कामं प्रभूणां ज्वलति प्रतापः ।
तस्मान्नरेन्द्रोऽर्जुनवन्नयज्ञः कोशेऽपि दण्डेऽप्यभवत्सयत्नः ।७४।

कोशेन राज्यं दृढतामुपैति स न्यायमार्गाचरणादवाप्यः ।
अतः स तत्सिद्धिविधानधीरो न्यायप्रवृत्तो विदधाति कोशम् ।।७५।।

क्या आपके द्वारा वह चर्चा की जा रही है जो राज्य की लक्ष्मी बढ़ाने के लिये हितकारी हो, यह पूछ कर तथा सचिवों की प्रवृत्ति को जानकर चर्चा के अन्त में सचिवों को घर जाने की अनुमति देते हुए अपने हित अहित को जानने वाला वह राजा सुशोभित होता था। ताकि वे सचिव सावधान रहें। इस प्रकार विभिन्न कार्यों में राजा का विवेक ही राज्य वृद्धि का कारण बताया गया है।।७२-७३।।

कोश तथा दण्ड से उत्पन्न होने वाला राजाओं का प्रताप ही सर्वत्र प्रदीप्त होता है। अतः अर्जुन के समान नीति जानने वाला वह नरेन्द्र कोश तथा दण्ड दोनों के प्रति यत्नशील रहता था।।७४।।

कोश से राज्य दृढ़ता को प्राप्त करता है, उसे न्यायमार्ग के आचरण से प्राप्त करना चाहिये। अतः उसकी सिद्धि बनाने में धीर वह राजा न्याय से चलता हुआ कोश का निर्माण करता था।।७५।।

क्लृप्तं स राष्ट्रस्य सुशिक्षितस्य विचार्य गृह्णाति सुतीक्ष्णबुद्धिः ।
विचारसाध्यं सकलं जगत्यां कार्यं यतो नीतिमतां नृपाणाम् ।।७६।।

राष्ट्रोद्भवं द्रव्यमसौ विदित्वा पृथक् पृथक् ग्राहयति क्षितीशः ।
अलब्धमासादितमाशु जानन् हितोक्तितस्तेन धनैर्वृतोऽभूत् ।।७७।।

वणिक्पथान् कोशविवृद्धिहेतोर्विधापयत्येष धनैर्हि भूपः ।
संपूज्य ते कोशमृते त्यजन्ति यथावृतं दुष्टजनैर्जनास्तम् ।।७८।।

यद्वस्तुजालं निखिलं स्वकीयं तत्पालयत्येव तथा स यत्नैः ।
यथा न तद्दोषलवैः कदाचित् संस्पृश्यतेऽदुष्टमिदं सुखाय ।।७९।।

अस्यानिशं राजवरस्य सैषा विचारणा हृद्यभवत्प्रसन्ना ।
यदैहिकामुष्मिकशर्मयोग्यं तत्कर्म कर्तव्यमनीदृशं नो ।।८०।।

वह तीक्ष्ण बुद्धि वाला राजा सुशिक्षित राष्ट्र के करणीय कार्य को विचार करके हाथ में लेता था। क्योंकि इस जगती में नीति वाले राजाओं का सभी कार्य विचार से सिद्ध होता है।।७६।।

वह राजा राष्ट्र में उत्पन्न द्रव्य या धन को जानकर लोगों को अलग अलग दिलवाता था। उन्होंने हितपूर्वक अलब्ध को प्राप्त कर लिया, यह जानकर (ही निश्चिन्त होता था)। इससे वह धन सम्पत्ति से परिपूर्ण हो गया।।७७।।

यह राजा कोश की वृद्धि के लिये अपना धन त्याग कर व्यापार मार्गों को तैयार कराता था। सामान्य जन कोष के विहीन होने पर राजा को छोड़ देते हैं। जैसे लोग दुष्ट जनों से घिरे हुए किसी मनुष्य को छोड़ देते हैं।।७८।।

वह अपनी सम्पूर्ण वस्तुओं का यत्नपूर्वक पालन करता ही था। (वह ध्यान रखता था कि) सुख के लिये दोष की रेखा से युक्त अदुष्ट वस्तु का भी स्पर्श न हो जाय।।७९।।

इस उत्तम राजा के हृदय में सदा ऐसा प्रसादपूर्ण विचार रहता था कि सदा ऐहिक या इस लोक के तथा आमुष्मिक अर्थात् परलोक के सुख के योग्य ही कार्य करना चाहिये, विपरीत नहीं।।८०।।

वारी नृपाणां गजबन्धहेतुर्गजैश्च भूमिः स्थिरतामुपैति ।
खनिश्च राजास्पदकामधेनुर्नृपस्तदेतासु कृतादरोऽभूत् ।।८१।।

वन्यान् गजान् बन्धयति प्रसह्य निवेशयत्येष च शून्यदेशान् ।
वार्तादिकर्मस्वपि सिद्धिमार्गी न वस्तुलोभात्किल राजनीतेः ८२।

श्रीवीरसिंहेन समृद्धिमेता इताः प्रजास्तेन विवृद्धिभाजः ।
अतीव भूता नयपारगेन ततोऽस्य कोशं परिपूरयेयुः ।।८३।।

वित्तव्ययं कर्तुमवेक्ष्य राजा जानाति चोपार्जयितुं स लक्ष्मीम् ।
एतद्द्वयं वेत्ति न यः क्षितीशः स राज्यवृद्धिं लभते न जातु ८४।

आयोचितं साधु करोति पूर्णम् व्ययं नृपाणां करसंग्रहोत्कः ।
संपादनीया खलु कोशसंपद्यया स्थिरः स्यान्नृपतिः स्थिरायाम् ।।८५।।

वारी अर्थात् हाथी को बाँधने का रस्सा या पिंजरा राजाओं के हाथियों को बाँधने का कारण होता है। हाथियों से ही राज्य की भूमि स्थिरता को प्राप्त होती है। खानें राजा के योग्य अभिलाषाओं की कामधेनु होती हैं। अतः यह राजा इन सबके प्रति आदर रखता था।।८१।।

यह जंगली हाथियों को जबर्दस्ती बांध लेता था तथा इन्हें एकान्त में बैठा देता था। यह व्यापार के प्रति भी सिद्धि का मार्ग अपनाता था। वस्तु के लोभ से केवल राजनीति के प्रति नहीं।।८२।।

श्री वीरसिंह के द्वारा ये प्रजा समृद्ध की गई। इस नीतिविशारद के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाली प्रजा अत्यन्त उँचाई तक पहुचाई गयी। इसलिये सभी इसके कोश को पूरा करें।।८३।।

राजा धन के व्यय को भली प्रकार जान कर लक्ष्मी का उपार्जन करना भी जानता है। जो राजा इन दोनों को नहीं जानता वह राज्य की वृद्धि को प्राप्त नहीं करता।।८४।।

राजाओं के कर के संग्रह को उत्सुक यह राजा आयोचित व्यय को पूरी तरह भली प्रकार करता है। कोश की सम्पत्ति अवश्य बनानी चाहिये। ताकि राजा का शासन स्थिर बना रहे।।८५।।

लोकद्वयक्षेमदकर्मसक्ता ऋणं नृपा जातु न चिन्तयन्ति ।
उत्थानवीरः प्रतिभान्वितोऽयं तस्मादृणं नैच्छदपि ग्रहीतुम् ।।८६।।

असद्व्ययं नैव करोति राजा समृद्धलक्ष्मीरपि यद्धनानि।
असद्व्ययात् क्षीणतराणि भूत्वा न धर्मकामावपि वर्धयन्ति ।।८७।।

हस्त्यश्वपादातनिजक्रियादेर्व्ययस्य योग्यस्य विधौ विदग्धः ।
राज्यस्य सप्तस्वपि सावधानः सोऽङ्गेषु दीर्घां लभते स्म लक्ष्मीम् ।८८।

स्वायव्ययानां नृपतेर्विधेया लेखेन संख्या सुपरीक्षितेन ।
राज्यस्थिरत्वप्रकटप्रभावा तस्मादसावत्र कृताभियोगः ।।८९।।

आये व्यये तेन नृपेण नित्यं निश्चित्य षड्वर्गजितो नियुक्ताः ।
तत्रान्यथा चेत्कुरुते तदानीं किं कोशवृद्धिर्भवतीश्वराणाम् ।९०।

दोनों लोकों में कल्याण देने वाले कार्यों में लगे राजा ऋण लेने के विषय में नहीं सोचते। इसलिये प्रतिभा से परिपूर्ण उन्नति कार्यों में वीर इस राजा ने कभी ऋण लेना नहीं चाहा।।८६।।

यह राजा समृद्ध लक्ष्मी वाला होकर भी गलत कार्यों में कभी व्यय नहीं करता था। क्योंकि गलत व्यय से धन अत्यधिक क्षीण होकर धर्म तथा काम की वृद्धि नहीं करते।।८७।।

हाथी, घोड़े तथा पैदल सेना के निजी कार्यों के उचित व्यय के सम्पादन में यह निपुण था। यह सावधान राजा राज्य के सातों अंगों में भरपूर लक्ष्मी प्राप्त करता था।।८८।।

राजा के आय व्यय का अच्छे प्रकार परीक्षित लेखन के द्वारा संख्या-पत्रक बनाना चाहिये। राज्य की स्थिरता के प्रति इसका प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट होता है। इसलिये यह राजा इस लेखन के प्रति प्रबल प्रयास करता था।।८९।।

उस राजा ने आय व्यय के विषय में पूरा निश्चय करके काम, क्रोध आदि ६ वर्ग को जीतने वाले अधिकारी नियुक्त किये। यदि कोई राजा इसके विपरीत करे तो क्या उसके कोश की वृद्धि हो सकती है।।९०।।

पक्षेऽपि मासेऽपि यथावकाशं व्ययायसंख्यामवबुध्यमानः।
श्रियं निजां स प्रतिवर्धनीयां प्रावर्धयत्सर्वसुखानि यस्याः।।९१।।

यत्कार्यमद्धाऽऽरभते विना तत्फलं न मुञ्चत्यवनीश्वरोऽयम्।
आरभ्य ये कार्यमुदासते ते न सिद्धिभाजः कथिता नयज्ञैः ९२।

प्रभुः स्वयं यावदिदं न पश्येत्तावन्न सम्यक् फलयोगि कार्यम्।
हेतोरतः पश्यति तत्तरस्वी स्वयं स यत्नात्प्रतिबुध्यमानः।।९३।।

अयं वितन्द्रः सृजति स्वकार्यं लघु प्रमुक्तव्यसनो विचार्य।
वदन्ति कर्तुं झटिति स्वकार्यं चिरेण विघ्नाः किल पातयन्ति।।९४।।

धर्मप्रवीणैः सह धर्मवेत्ता न्यायान् स वादप्रतिवादभाजोः।
पश्यन् परिच्छेदमथो वितन्वन् प्राप्नोति पुण्यानि यशांसि तद्वत्।।९५।।

वह एक पखवाड़े में भी, एक महीने में भी-जब भी समय मिले तब आय व्यय की जानकारी लेता था। वह अपनी बढ़ाने योग्य श्री को सदा बढ़ाता रहा, जिसके कारण सभी सुख हैं।।९१।।

यह धरती का राजा जिस कार्य को आरम्भ करता था, उसे फल प्राप्त हुए बिना छोड़ता नहीं था। जो किसी कार्य को आरम्भ करके उसके प्रति उदासीन हो जाते हैं, वे नीतिविशारदों के द्वारा सिद्धि के भागी नहीं कहे गये।।९२।।

राजा स्वयं जब तक कार्य को न देखे तब तक वह कार्य भली प्रकार फल से युक्त नहीं होता। इसलिये वह शक्तिशाली सभी कार्यों को स्वयं प्रयत्नपूर्वक तथा जागरूक रह कर देखता था।।९३।।

यह आलस्यरहित, व्यसनों से मुक्त राजा सभी कार्य को भली प्रकार विचार कर आरम्भ करता था। विद्वान् लोग सही कार्य को शीघ्र प्रारम्भ करने के लिये कहते हैं। देर करने से विघ्न उसे नष्ट कर डालते हैं।।९४।।

वह धर्मवेत्ता, यशस्वी धर्मप्रवीण लोगों के साथ वादी तथा प्रतिवादी के प्रकरण को देखकर पुनः अपना निर्णय प्रकाशित करके पुण्य यश को प्राप्त करता है।।९५।।

स ब्रह्मयज्ञादिरतः शुभार्थी दिनान्यवध्यान्यखिलानि कुर्वन् ।
पुराणवेदस्मृतिसादरात्मा जयन् द्विषो राजति भीमसेनः ।९६।

भागेषु रात्रेर्दिवसस्य राजा यथोक्तकर्माणि करोति नित्यम् ।
धर्मेण तेनैव नृपस्य राज्ये किमप्ययोग्यं भवतीह जातु ।९७।।

यमान् विवेकी नियमानुपास्ते हरिप्रसक्त्यै विजितेन्द्रियोऽयम् ।
हरिप्रसादेन नरैर्दुरापा धर्मादयो नित्यजनः कृतार्थः ९८।

भवन्नुमावल्लभपादपद्मसेवोऽपदुःखानि समीहितानि ।
न कानि राजा लभते न कस्य कामं सदा पूरयति प्रहृष्टः ।९९।

युक्तं परीवादविमुक्तकीर्तिर्वैमुख्यमापन्न रणे रणज्ञः ।
यत्कामशास्त्राविकलः परस्त्रीर्दृष्ट्वाऽद्भुतं तत्स पलायते स्म ।।१००।।

वह ब्रह्मयज्ञ आदि में निरत, शुभ चाहने वाला राजा सम्पूर्ण दिन को अजेय या अमर बनाता था। वह पुराण वेद तथा स्मृतियों में आदर बुद्धि रखने वाला शत्रुओं का विनाश करते हुए प्रकाशित होता है।।९६।।

यह राजा रात्रि तथा दिन के विभिन्न भागों में नित्य ही यथोचित कार्य करता है। इस राजा के राज्य में धर्म के द्वारा क्या कुछ भी अयोग्य या अप्राप्य होता है।।९७।।

यह विवेकी तथा जितेन्द्रिय हरि के साथ लगाव के लिये यम नियम की उपासना करता है। हरि की प्रसन्नता से मनुष्य के द्वारा दुष्प्राप्य धर्मादि सदा हो जाते हैं। अतः उनसे मनुष्य कृतार्थ होता है।।९८।।

यह राजा उमा के वल्लभ शंकर के चरणकमलों की सेवा के लिये कौन से दुःखों को सहन नहीं करता तथा इससे कौन सी अभीष्ट वस्तु प्राप्त नहीं करता तथा वह प्रसन्न होकर किसकी कामना की पूर्ति नहीं करता।।९९।।

शिकायतों से मुक्त कीर्ति वाला जो संग्राम को जानने वाला राजा युद्धभूमि में कभी मुँह पीछे नहीं करता, वह कामशास्त्र का पूरा जानकार दूसरे की स्त्रियों को देखकर अद्भुत रूप से भाग जाता था।।१००।।

कामोऽपि पत्नीभिरवश्यमार्यैः प्रसूतिहेतोर्भजनीय एव ।
इत्यादयोऽप्यस्ति च यस्य कामे न तं बलादिच्छति जेतुमेषः ।।१०१।।

चाराक्षिभिर्मण्डलमीक्षतेऽसौ धर्मं सदा चिन्तयति प्रभूतम् ।
कोपापलापं प्रणयापलापमयं विधत्ते रणजन्यभूमिः ।१०२।

स्वेषां परेषां निखिलं चरित्रमन्योन्यमश्रान्तमबुध्यमानैः ।
अबोधि चारैः प्रहितैर्नृपालः क्रियाफलं ह्येति परीक्षणेन ।१०३।।

पात्राणि राज्ञा समुपागतानि सत्कृत्य शक्त्या द्रविणानि दत्वा ।
सेवां विनैवाशु विसृज्य वाग्मी तदाशिषः कामगवीरुपैति ।।१०४।।

तं ये सकृद्याचनकाः प्रपन्ना न ते पुनर्याचकतां भजन्ति ।
सपुत्रपौत्राः प्रथमाप्तकष्टमबुध्यमाना बहुवित्तलाभात् ।१०५।।

आर्यों के द्वारा पत्नियों के साथ प्रजनन के लिये काम का सेवन भी अवश्य ही करना चाहिये। जिसके काम के प्रति ये सभी उद्देश्य हैं, वह काम को बलपूर्वक नहीं जीतना चाहता था।।१०१।।

वह सभी चारों ओर के स्थानों को गुप्तचर या भेदिया की आँखों से देखता था। वह सदा अत्यधिक धर्म का सेवन करता था। वह रण में प्राप्त स्थान वाला आवश्यकतानुसार कोपपूर्वक तथा प्रणयपूर्वक बातचीत करता था।।१०२।।

यह राजा एक दूसरे को न जानने वाले सावधान गुप्तचरों के द्वारा अपने लोगों की तथा दूसरे लोगों की पूरी जानकारी रखता था। वास्तव में क्रिया का फल परीक्षा से ही प्राप्त होता है।।१०३।।

राजा के द्वारा अभ्यागत पात्रों का सत्कार करके यथाशक्ति धन दान करते रहना चाहिये। वाग्मी पुरुष शीघ्र दान करके सेवा के बिना ही इच्छापूर्ति करने वाली वाणी वाले आशीर्वाद को प्राप्त कर लेता है।।१०४।।

उस राजा के पास एक बार जो याचक बन कर आए वे अत्यधिक धन को प्राप्त करने के कारण पिछले कष्ट को भूलकर पुत्र पौत्रों सहित याचक नहीं रह गए।।१०५।।

मन्त्रं करोति प्रतिवासरं स प्रसिद्धमन्त्रिप्रवरैः कदाचित् ।
ज्ञातोऽभवत्कैरपि नैष मन्त्रस्ततो जयो भूमिभुजां हि लोके ।१०६।।

तथा चरत्येष विशुद्धबुद्धिर्लोका विरक्ता न यथा भवेयुः ।
ते चेद्विरक्त्या किल युज्यमानाः साम्राज्यमप्यस्ति दृढं न मन्ये ।१०७।

वैराग्यमुत्पन्नमयं जनानां दूरेऽपि कर्तुं पृथुवत् वरिष्ठः ।
न तस्य हेतुं कुरुते च सर्वे रक्ता जना कामदुघा भवन्ति ।१०८।।

राजा विधात्रा विहितः पृथिव्यां प्रजानुरागादिव वृद्धिहेतुः ।
तथैव सोऽभूत्परमार्थदृष्टिः पितामहाज्ञाविकलो हि कः स्यात् ।१०९।

वह प्रसिद्ध सम्मानित मन्त्रियों के साथ प्रतिदिन किसी समय गोपनीय विचार करता था। यह मन्त्र या विचार किसी को भी नहीं ज्ञात हो पाता था। इससे ही लोक में राजाओं की विजय होती है।।१०६।।

वह विशुद्ध बुद्धि वाला राजा ऐसा आचरण करता था कि लोग उससे विरक्त न हो जायें। यदि वे विरक्ति से युक्त हो जाएं तो साम्राज्य भी दृढ़ नहीं है, ऐसा मैं समझता हूँ।।१०७।।

यह पृथु के समान वरिष्ठ राजा, यदि लोगों में वैराग्य उत्पन्न हो जाय तो उनके दूर रहने पर भी उनकी सहायता करने को तैयार रहता था। सभी लोग ऐसे व्यक्तियों के लिये कुछ नहीं करते। रागी लोग केवल इच्छाओं को दुहने वाले होते हैं।।१०८।।

विधाता ने राजा को इस धरती में प्रजा के बढ़ते अनुराग के समान प्रजा की वृद्धि के लिये बनाया है। यह राजा इसी प्रकार परमार्थ को दृष्टि में रखने वाला हुआ। पितामह ईश्वर की आज्ञा का असम्मान करने वाला कौन हो सकता है।।१०९।।

संसारिकैः कष्टशतैरजस्त्रं तप्ताः प्रजाः सन्ति दयाजलौघैः ।
सेव्या भवन्तीति विचार्य राजा दयापरस्तास्वसृजत् सुखानि ।।११०।।

सन्तानवृद्धिर्धनवृद्धिरिष्टा रिपोश्च हानिर्निखिलाभिलाषः ।
प्रजोपकाराद्भवति क्षितीशस्तस्मात् प्रजानां हितमातनोति ।।१११।।

न्यायेन यद् द्रव्यमुपार्जि भूपैस्तद्भूपतीनां शुभमक्षयं च ।
आकर्ण्य सद्बुद्धिरिति प्रवीणो न्यायात्स्वमादत्त भुवः सकाशात्

देशेऽश्रुपातोऽनयहेतुको यः स भूमिभर्तुर्न शुभाय जातु ।
तस्मादयं सत्पथदत्तदृष्टिर्न्यवारयत्तूर्णममुं शरण्यः ।।११३।।

नीचप्रसङ्गं विजहाति सङ्गं पापावधिब्रह्मवधादिकर्तुः ।
स नीतिभाजामकरोच्च सङ्गं सभासदां निर्मलमानसानाम् ।।११४।।

यह प्रजा संसार के सैकड़ों कष्टों से निरन्तर संतप्त है। अतः दयारूपी जल से इनकी सेवा करना चाहिये, यह सोचते हुए राजा दयाशील होकर उन पर सुखों का वितरण करता था।।११०।।

सन्तान की वृद्धि, धन की वृद्धि, शत्रुओं का विनाश तथा इस प्रकार सम्पूर्ण अभिलाषाओं की पूर्ति प्रजा के उपकार से होती है, अतः यह राजा सदा प्रजाओं का हित करता था।।१११।।

राजाओं के द्वारा जो धन न्यायपूर्वक अर्जित किया गया, वही उन राजाओं का शुभ तथा अक्षय होता है। इस तथ्य को सुन कर वह प्रवीण शुभ बुद्धि वाला राजा न्यायपूर्वक जमीन से लगान आदि धन प्राप्त करता था।।११२।।

इस देश में अनीति के कारण यदि किसी के आँसू गिरें तो वह राजा के लिये शुभ नहीं होता। अतः यह सन्मार्ग पर दृष्टि रखने वाले तथा लोगों को शरण देने वाले इस राजा ने शीघ्र ही इस अश्रुपात का निवारण किया।।११३।।

वह नीच कार्यों को तथा पाप की अन्तिम सीमा ब्राह्मणवध आदि करने वाले लोगों के संग से दूर रहता था। वह सदा नीतियुक्त निर्मल मन वाले सभासदों का संग करता था।।११४।।

रहः स मन्त्रं द्रढयन् स्वबुद्ध्या कार्यं विधत्ते भुवि दुष्करं यत्।
ततः कुबेराधिकजातलक्ष्मीः श्रीरामवद्भूमिपतिः प्रतीतः ।।११५।।

अगम्यदुर्गस्थितशत्रुवृन्दमुपेक्षते स्माखुबिलं न सिंहः ।
खनत्यनन्तं तदवाप्य रन्ध्रं षाड्गण्ययोगेन वशीकरोति ।।११६।।

न तद्भयं के दधति स्म लोका न तस्य भीतिर्भुवनेऽन्यतोऽभूत्।
बिभेति यत्केवलमेष मानी लोकापवादात्तदिदं न हृद्यम्।।११७।।

देवालयानामपि कान्तिभाजां जलाशयानामपि पुण्यहेतोः ।
निर्मापकोऽभूदिह रक्षकोऽपि यदूद्भवो वाऽखिललोकबन्धः ।११८।

लक्ष्म स्वकीयं निजमन्त्रिणो ये बिभ्रत्यवश्यं स्मृतिवाक्यनिष्ठाः ।
तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रयता नृपेण विदग्धचूडामणिनैवं भूतम् ।।११९।।

वह अपनी बुद्धि से एकान्त में गुप्त विचार का निश्चय करके वह कार्य कर लेता था जो विश्व में दुष्कर है। उसके पश्चात् वह कुबेर से भी अधिक लक्ष्मी वाला होकर श्री राम के समान राजा प्रतीत हुआ।।११५।।

सिंह चूहे के बिल की उपेक्षा कर देता है। पर इसके विपरीत यह अगम्य दुर्ग में स्थित शत्रुसमूह की उपेक्षा नहीं करता था। वह उस छिद्र को प्राप्त करके पूरा खन डालता था। तथा षड्गुण से उनको अपने अधीन बना लेता था।।११६।।

उससे कौन लोग भय नहीं खाते थे। पर उसे विश्व में कहीं अन्य से डर नहीं हुआ। यह सम्मानित व्यक्ति केवल लोकापवाद से जो कि हृदय को अप्रिय हो, उससे ही डरता था।।११७।।

वह पुण्य के लिये कान्ति से पूर्ण देवालयों का तथा जलाशयों का भी निर्माता तथा रक्षक हुआ। इस प्रकार वह यदुकुल के समान सब लोकों को अपने में बाँधने वाला था।।११८।।

जो स्मृतियों के वाक्यों में निष्ठा रखने वाले उसके निजी मन्त्री लोग अपनी विशिष्टता या पहचान रखते थे, उन मंत्रियों से मंत्रणा करते हुए यह राजा विद्वानों में चूड़ामणि हो गया।।११९।।

राज्यं नृपाः प्राप्य न ये चरन्ति सुराजधर्मं मदंदग्धचित्ताः ।
ते पूर्वपुण्यादपि लब्धराज्याः पतन्ति राज्यादिति सेवते स्म ।।१२०।।

ये ये नृपा न्यायमपास्य मोहादन्यायमार्गे स्म चरन्ति मूढाः ।
तेषां न सिद्धं किमपि स्वकार्यं तस्मादयं न्यायपथानुवर्ती ।।१२१।।

दुष्टाबलानामुपसर्पणेन सौन्दर्यभाजामपि देहभाजाम् ।
अधर्मवृद्धेरसुखं शरीरे रक्तो न तस्मात्कथयाऽपि तासाम् ।।१२२।।

ते चाहुवाणादिकुलप्रसूताः पापाः क्षितीशाः पतिताः स्वराज्यात् ।
सुखस्य मोक्षस्य च हेतुभूताद्विचिन्त्य चैतत्स करोति धर्मम् ।।१२३।।

निषिद्धकर्माणि विधातुमेष न सस्पृहोऽभूत्सुकृतप्रसक्तः ।
पुण्ये यदि स्यात् पुरुषस्य सक्तिस्तदा त्रिवर्गोऽपि करस्थ एव ।।१२४।।

जो मद से जले चित्त वाले राजा राज्य को प्राप्त करके अच्छे राजधर्म का पालन नहीं करते, वे अपने पिछले पुण्य से राज्य प्राप्त करने के पश्चात् भी राज्य से गिर जाते हैं। इसलिये यह राजा (अच्छे राजधर्म का) सेवन करता था।।१२०।।

जो जो मूढ़ राजा मोहवश न्याय को छोड़कर अन्याय मार्ग में चलते हैं, उनका कोई भी अपना कार्य सिद्ध नहीं होता। इसलिये यह राजा न्यायमार्ग का अनुसरण करता था।।१२१।।

दुष्ट अबलाओं के पास जाने से सौन्दर्य से परिपूर्ण देह वालों की भी अधर्म की वृद्धि होने से शरीर दुःखपूर्ण हो जाता है। अतः वह कथा के लिये भी उनमें अनुरक्त नहीं था।।१२२।।

वे चौहान कुल में उत्पन्न पापी अनेक राजा सुख और मोक्ष के कारणभूत अपने राज्य से नीचे गिर गये। यह सोच कर यह राजा सदा धर्माचरण करता था।।१२३।।

यह सुकृत में लगा हुआ राजा निषिद्ध कार्यों के करने का कभी इच्छुक नहीं हुआ। यदि मनुष्य की आसक्ति पुण्य के प्रति हो तो त्रिवर्ग - धर्म, अर्थ, काम भी हाथ में है।।१२४।।

स्वराज्यचर्चानिरतैः क्षितीशैर्वचोगतिस्थानमुखं च कर्म ।
विना स्वकार्यं न विकाश्यमस्मात्स्वकार्यतोऽयं वचनादिसक्तः ।।१२५।।

प्रजानुरागाद्दृढतामुपैति प्रजाविरागात्परहस्तगामि ।
राज्यं भवेन्नीतिरियं प्रसिद्धा तस्मात्प्रजारञ्जन एव सक्तः ।।१२६।।

शत्रुप्रजानामपि चानुरागात्तद्देशलाभोऽपि नृपस्य साध्यः ।
यतोऽनुरागः स्वपरप्रजानां वशक्रियायां परमं निदानम् ।।१२७।।

प्रजाधनानां हरणात्प्रसह्य मौलापमानाच्च नृपा विनष्टाः ।
वेनादयस्तत्वत इत्यवेत्य न तत्करोति स्म स शुद्धबुद्धिः ।।१२८।।

एतन्नृपे वागमृतं यदस्ति तत्तत्त्वपीयूषगुणातिशायि ।
तज्जीवयत्येव हि देवलोकमिदं मनुष्यानपि कर्णपेयम् ।।१२९।।

अपने राज्य की चर्चा में लगे राजा द्वारा केवल वाणी के संचालन द्वारा स्थान प्राप्त करने वाले कर्म स्वयं कार्य के बिना प्रसृत नहीं किये जाने चाहिये। अतः यह राजा अपने वचन से युक्त अपने कार्य मे दृढ़ रहता है।।१२५।।

कोई भी राज्य प्रजा के अनुराग से ही दृढ़ता को प्राप्त करता है तथा प्रजा के विराग से वह दूसरे के हाथ मे चला जाता है, यह नीति प्रसिद्ध है। अतः यह राजा प्रजा को प्रसन्न करने में ही लगा रहता था।।१२६।।

यदि कोई राजा शत्रु की प्रजा के प्रति भी अपना प्रेम दिखा सके तो राजा को उसके देश का लाभ प्राप्त हो सकता है। अतः अपनी या दूसरी प्रजा के प्रति प्रेम ही उन्हें वश में करने का सबसे बड़ा निदान है।।१२७।।

प्रजा के धन को जबर्दस्ती लूटने से तथा प्राचीन बड़े लोगों का अपमान करने से वेन इत्यादि राजा विनष्ट हो गए, यह समझते हुए यह विशुद्ध बुद्धि वाला राजा इस प्रकार का कार्य नहीं करता था।।१२८।।

किसी भी राजा में जो वाणी रूपी अमृत है, वह तत्त्व पीयूष के गुण से भी बढ़ कर है। यह देवलोक को भी जीवित रखता है तथा मनुष्यों के कानों के लिये भी सुखद है।।१२९।।

एवं नृपस्तासु कृतासु रागैर्युक्तासु सर्वैरहितैरलङ्घ्यः ।
अभूद्यथा योगिजनो जितेषु सर्वेन्द्रियेषु प्रतिपन्नतत्त्वः ।।१३०।।

अङ्गानि राज्यस्य सुमार्गचारात्पुष्णाति शक्तित्रयसद्विवेकः ।
स षड्गुणानामुपयोगविज्ञः कार्येषु कार्येष्वभवद्वृषेव १३१।

बलं बिभर्ति स्वशरीरतुल्यं स षड्विधं संयुगसाधु धीमान् ।
सुत्रामतेजा विनियोगमस्य योग्येषु कार्येषु किलेति युक्तम् १३२।

अमुष्य दुर्गं परिपन्थिवर्गैः पूर्णं पदार्थैरनिरीक्ष्यमासीत् ।
द्विषां निहन्ता यदसौ करोति दुष्प्रापमेतत्स सुराजधर्मः ।।१३३।।

स चात्मकार्यं निभृतं वितन्वन्नवेक्षया पापभयाद्विमुक्तम् ।
अनेकभद्रास्पदमेष जातः शुभालयस्तत्क्षणसिद्धसाध्यः ।।१३४।।

इस प्रकार यह राजा सभी उचित कृत्यों में वर्तमान था तथा सभी अहित राग या अनुरक्ति में न पड़ने वाला था। जिस प्रकार योगी लोग सभी इन्द्रियों के जीत लेने पर उचित तत्त्व को प्राप्त कर लेते हैं।।१३०।।

राज्य की ३ प्रकार की शक्तियों (प्रभु शक्ति, मन्त्र शक्ति, उत्साह शक्ति) के प्रति विवेकशील राजा राज्य के सभी अंगों को अच्छे आचरण द्वारा परिपुष्ट करता था। वह ६ गुणों के उपयोग को जानने वाला प्रत्येक कार्य के प्रति बलशाली हुआ।।१३१।।

वह संग्राम में निपुण, बुद्धिमान् अपने शरीर के समान ६ प्रकार का बल रखता था। सुत्राम अर्थात् इन्द्र के समान तेज वाला यह राजा इस सेना का योग्य कार्यों में विनियोग करता था।।१३२।।

इसका विभिन्न पदार्थों से भरा दुर्ग शत्रुओं की आँखों से ओझल ही रहता था। शत्रुओं का विनाश करने वाला यह राजा जो करता था वह अन्यों के लिये दुष्प्राप्य था तथा अच्छे राजा का धर्म था।।१३३।।

वह अनेक कल्याण का स्थान, पाप के भय से सर्वथा मुक्त अपने कार्य को सावधानी के साथ तथा निश्चयपूर्वक पूर्ण करते हुए शुभालय हो गया तथा तुरन्त ही साध्य को सिद्ध करने वाला बन गया।।१३४।।

प्रधानगौणादिनिरीक्षणेन कार्येषु तान्याशु वितन्वता प्राक् ।
पश्चाच्च भूमीपतिना निकामं विज्ञत्वमाप्तं स्पृहणीयमार्यैः ।। १ ३ ५ ।।

यस्य प्रमत्ताः सचिवा भवेयुर्न तस्य राज्यं चिरकालमासीत् ।
इदं विदित्वा नृपतिः प्रमत्तानमात्यवर्गानवमन्यते स्म ।। १ ३ ६ ।।

स्वायत्तसिद्धिर्यदसौ विधत्ते न तद्विधेयं मनसापि शिष्टैः ।
स्वकार्यनिष्ठैः स्वजिघृक्षुचित्तैरसूयया मत्सरिभिः कटूक्तैः ।। १ ३ ७ ।।

लुब्धाः स दृष्ट्वा प्रकृतीः परस्वे तिरस्करोति स्म विचारनिष्ठः ।
ततस्तमीशं कुशलं क्रियासु प्रजाः स्तुवन्ति प्रतिपन्नकामाः ।। १ ३ ८ ।।

क्रोधेन लोभेन च मोहबुद्ध्या स्वीयं विधिं तन्निहतं निरीक्ष्य ।
तासां मुखान्यैक्षत न स्वबुद्ध्या नादण्डयत्ता नय एव सक्तः ।। १ ३ ९ ।।

वह कार्यों के प्रधान गौणभाव को भली प्रकार समझ कर उन्हें क्रमशः शीघ्र पूर्ण करता था। इससे उसने अन्य राजाओं के द्वारा आर्यों के लिये स्पृहणीय विज्ञत्व को प्राप्त कर लिया।। १ ३ ५ ।।

जिसके मन्त्री प्रमादी हों, उसका राज्य चिरकाल तक नहीं रह सकता। यह समझते हुए यह राजा प्रमादी मन्त्रियों की उपेक्षा या अनादर करता था।। १ ३ ६ ।।

जो भी कोई स्वतंत्रता का विधान करे, इसे शिष्टों के द्वारा या अपने कार्य में लगे लोगों के द्वारा अथवा अपने को ग्रहण करने वाले चित्त वालों के द्वारा असूया, मात्सर्य अथवा कटूक्ति से कभी नहीं करना चाहिये।। १ ३ ७ ।।

यह विचारशील राजा प्रजा को किसी दूसरे के धन प्रति लुब्ध देखकर उनका तिरस्कार करता था। इससे पूर्णकाम जनता इस क्रियाओं में कुशल राजा की प्रशंसा करती थी।। १ ३ ८ ।।

क्रोध, लोभ अथवा मोहबुद्धि से अपने कानून को नष्ट होता हुआ देखकर यह राजा अपनी बुद्धि से उनके मुँह को देखता नहीं रह गया (अपितु दण्ड दिया)। राजनीति में लगा व्यक्ति अदण्ड के अधीन नहीं हो सकता।। १ ३ ९ ।।

उत्कोचभाजां चतुरत्वभाजा नृपेण हस्त्यश्वहिरण्यजातम्।
उद्धारलक्ष्येण गृहीतमासीच्चातुर्यमृद्धेः किल बीजमुक्तम्।१४०।

उत्कोचमादाय विनाशयन्ति यास्तच्छ्रियं तच्छ्रियमग्रहीत्सः।
दण्डेन सूर्यः सलिलं गृहीत्वा त्यागेन भूमेरिव रेणुभूतिम्।।१४१।।

कार्यव्यवस्थाहतिसंप्रवृत्तैर्नियोगिभिः शिष्टपदं वहद्भिः।
राज्यं विपर्यस्तमयं विलोक्य यथोचितं दण्डमधादमीषाम्।।१४२।।

उद्धृत्य तेभ्यः स्वमतिप्रकाशाद्राज्यं प्रभुस्तद्दुरितं दधद्भयः।
निवृत्तशोकः शुचिसाधुभृत्यैस्तत्पालयंस्तत्सुखमश्नुते स्म।।१४३।।

सामन्तलोकानपि दण्डयित्वा स्वकं च कोशं परिवर्ध्य राजा।
तेषामनीतिं भजतां च भूम्या स्वभूमिदेशस्य समर्धकोऽभूत्।।१४४।।

चातुर्य रखने वाले राजा के द्वारा घूसखोर लोगों के उद्धार की दृष्टि से उनके हाथी, घोड़े तथा सोना छीन लिये गये। वास्तव में चतुराई को ही समृद्धि का बीज बताया गया है।।१४०।।

जो लोग घूस लेकर लोगों का विनाश करते हैं, उनकी श्री को या उनकी कही जाने वाली श्री को उसने छीन लिया। जैसे सूर्य अपने किरणरूपी दण्ड से पानी खींचकर जमीन को बंजर बनाकर छोड़ देता है।।१४१।।

कार्य की व्यवस्था को नष्ट करने में लगे हुए शिष्ट पद को धारण करने वाले अधिकारियों के द्वारा राज्य उलट पुलट किया गया, यह देख कर इन्हें यथोचित दण्ड प्रदान करता था।।१४२।।

वह शोक से रहित राजा अपनी बुद्धि के प्रकाश से पापपूर्ण आचरण करने वालों से राज्य को छीन कर पवित्र साधु जनों से पालन कराते हुए सुख प्राप्त करता था।।१४३।।

सामन्त लोगों को भी दण्डित करके तथा अपने कोश को बढ़ा कर यह राजा उन अनीति करने वालों की भूमि के द्वारा अपनी भूमि तथा देश को बढ़ाने वाला हुआ।।१४४।।

म्लेच्छाधिपेभ्योऽपि स सामयोगाद्दण्डोपयोगादिव वृद्धिमद्भ्यः ।
संगृह्य लक्ष्मीमपि कोटिसंख्यां स्थिरोदयीं वृद्धिमतीव यातः ।।१४५।।

अयं प्रभुर्वीरमवंशकेतुः प्रमादमापन्न तमो यथार्कः ।
जाज्वल्यमानो निजतेजऋद्ध्या राज्यस्य वैरी स यतः प्रमादः ।।१४६।।

अनेन राज्ञा परवित्तलिप्सा स्वप्नेऽपि नालिङ्गि विनापराधम् ।
भीमोद्भवानां प्रकृतिः सतीयं न यत्परस्वं खलु गृह्णते ते।।१४७।।

प्रभुः स सर्वाधिकृतान् परीक्ष्य प्रसाददण्डौ विदधाति विद्वान् ।
ताभ्यां निकामं प्रतिबोधितास्तेऽनयं न कुर्युर्विनयं भजन्तः ।।१४८।।

सामाद्युपायेषु नृपः प्रयुङ्क्ते येनैव साध्या रिपवस्तमेव ।
युक्तप्रयोगे कुशलो ह्यमीषां प्रपद्यते सिद्धिमिलाधिनाथः ।।१४९।।

उन्नति की ओर बढ़े हुए म्लेच्छ राजाओं के साथ दण्ड के उपयोग के समान साम का भी प्रयोग करते हुए करोड़ों संख्या वाली लक्ष्मी का संग्रह करके अत्यन्त स्थिर तथा वर्धमान वृद्धि को प्राप्त किया।।१४५।।

वीरमदेव के वंश का यह प्रधान पुरुष कभी प्रमाद को प्राप्त नहीं हुआ। जैसे सूर्य अन्धकार को प्राप्त नहीं हो सकता। वह अपने तेज की समृद्धि से सदा प्रदीप्त था। क्योंकि प्रमाद सदा राज्य का वैरी होता है।।१४६।।

इस राजा ने बिना अपराध के दूसरे के धन की लिप्सा स्वप्न में भी नहीं की। यह भीमदेव के वंश के राजाओं की शुभ प्रकृति है कि वे दूसरे के धन को नहीं ग्रहण करते।।१४७।।

यह विद्वान् राजा सभी अधिकारियों की परीक्षा करके उन्हें पुरस्कार तथा दण्ड प्रदान करता था। उसके द्वारा हर समय जागरूक रखे गये ये लोग विनय धारण किये हुए कभी अनीति का आचरण नहीं करते थे।।१४८।।

यह राजा साम आदि अनेक उपायों के बीच जिनसे शत्रु वश में आ सकें, उनका ही प्रयोग करता था। इनके सही प्रयोग में कुशल धरती का राजा ही सिद्धि को प्राप्त करता है।।१४९।।

तस्याटवी सार्थसुखप्रसादा तस्याद्रयो राजपथा इवेष्टाः ।
तस्य स्रवन्ती पथिकव्रजानां स्वगेहवापीव तनोति शर्म ।।१५०।।

शक्तित्रयात् शत्रुमनांसि भिन्दन् शक्तिक्षयं तेषु निशम्य चारैः ।
उच्छिन्नवांस्तानयमुग्रतेजास्ततश्च कीर्तीर्लभते सुखानि ।।१५१।।

स शक्तियुक्तोऽपि विचारशीलस्तं प्रत्ययाद्राजमणिर्द्विषन्तम् ।
जुषोऽस्ति यो मत्तमतङ्गजोऽपि न सिंहयायी जितयूथनाथः ।।१५२।।

शक्त्यादिभिश्चेदधिको नृपः स्याद् द्विषस्तदानीमहितं प्रयातिं ।
तथाविधश्चेद्द्विषतो न च स्याद् गृहे स्थितः शर्मयशांसि गृह्णन् १५३।

उसके अटवी या जंगल व्यापारियों के काफिले को सुख देने वाले थे। उसके पर्वत राजपथ के समान लोगों को अभीष्ट थे। वहाँ बहती हुई नदियाँ राहगीर लोगों को अपने घर की वापी या छोटे तालाब के समान सुख या आनन्द देती थीं।।१५०।।

वह गुप्तचरों से सुनकर शत्रुओं के मन को भेदते हुए तीनों शक्तियों से उनकी शक्ति का नाश करता था। इस प्रकार इस उग्र तेज वाले राजा ने उनको नष्ट कर डाला। इससे उसने प्रतिष्ठा तथा सुख को प्राप्त किया।।१५१।।

यह राजाओं में मणि विचारशील तथा शक्ति सम्पन्न होकर भी अपने समान शत्रुओं के पास गया। मतवाला हाथी सिंह के साथ चलने वाला होता है। वह हारे हाथियों के झुण्ड का नेता नहीं होता।।१५२।।

यदि कोई राजा अपने द्वेषी शत्रुओं से शक्ति आदि में अधिक हो तो वह उनका अहित कर सकता है। पर यदि वह उन शत्रुओं से अधिक न हो तो घर में सुख तथा यश को प्राप्त करके भी (उनका अहित नहीं कर सकता)।।१५३।।

नृपप्रतापोर्मिभिरुन्नतोऽसौ न सोढुमर्होऽभवदेव राजा ।
युक्तं यदा याति रिपून् स रुष्टः सोढव्य आसीन्न परस्सहस्रैः ।।१५४।।

प्रायेण सर्वे रिपवोऽस्य पित्रा जिता न जेतुं परिशेषितास्ते ।
श्रीवीरभानोरिति शत्रुयात्रा सुदुर्लभाऽभून्मृधशार्ङ्गिणोऽपि ।।१५५।।

आडम्बरं यस्य निरीक्ष्य भूपा वैरायमाणाः समरं विधातुम् ।
न शक्नुवन्ति स्म हतप्रमोदाः क्व नीतिभाजां हि भयं रिपुभ्यः ।।१५६।।

वृद्धिः परेषां न शुभावहेति ज्ञात्वा नृपस्तानविशत् प्रशस्तः ।
भवन् सुखी स्याद्धि विपक्षजेता यशांसि शर्माणि चिनोति लोके।।१५७।।

तेनोज्जटः शत्रुविनाशहेतोर्देशस्तदीयो विहितोऽभियुज्य ।
निःस्वास्ततस्ते विपदं प्रपन्ना नृपेण तद्राष्ट्रमनायि नीत्या ।१५८।।

राजा के प्रताप रूपी तरंगों से उन्नत यह राजा अन्यों के सहन करने योग्य नहीं था। जब वह क्रोधित होकर शत्रुओं के पास जाता था तो सैकड़ों शत्रु भी उसे सहन नहीं कर सकते थे।।१५४।।

इसके पिता के द्वारा प्रायः सभी शत्रु जीत लिये गये थे, कोई भी जीतने के लिये बचे नहीं थे। अतः संग्राम में धनुर्धारी श्री वीरभानु की शत्रु के प्रति यात्रा दुर्लभ हो गई थी।।१५५।।

इससे वैर की इच्छा करने वाले सामान्य राजा इसके आडम्बर या विशालता को देखकर विश्वास से रहित होकर इससे युद्ध नहीं कर सकते थे। वास्तव में नीति में चलने वालों को शत्रुओं से किस प्रकार का डर हो सकता है।।१५६।।

दूसरे (शत्रुओं की) वृद्धि अच्छी नहीं होती, यह जान कर इस प्रशंसनीय राजा ने उन्हें बैठा दिया। वास्तव में, कोई भी राजा विपक्ष को जीत कर ही सुखी होता है तथा वही इस विश्व में यश तथा सुख प्राप्त करता है।।१५७।।

उसने शत्रु के विनाश के लिये उज्जट देश पर आक्रमण किया तथा वहां के राजा को प्रबन्ध करके पकड़ लिया। इस प्रकार वे धनहीन होकर विपत्ति को प्राप्त हो गये। राजा ने इस राष्ट्र को नीति से वश में किया।।१५८।।

स आश्रितानां परमं महत्त्वं तनोति विद्विड्जयजातहर्षः ।
विचक्षणानां रणमूर्ध्नि सम्यक् कृतज्ञमूर्धन्यविभूषणानाम् ।।१५९।।

मूर्तं वदान्यं निजभाग्यमेनं लब्ध्वं शुभं भृत्यजना वदन्ति ।
तथाहि तल्लब्धसमस्तकामा धनस्य वृद्ध्या धनदं हसेयुः ।।१६०।।

देशस्यायस्य संख्यां निजमनुजकृताद्वञ्चनान्मुच्यमानां
बुद्ध्वा राज्यस्थिरत्वे व्यभजदयमिमां चातुरीं रोचमानाम् ।
भूमीशास्तावदेव स्वपदसुरगृहं भुञ्जते यावदेते
वैदग्ध्यं पालयन्ति प्रभुमदरहिता लोकपालांशभूताः ।।१६१।।

वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से हर्ष प्राप्त करने वाला राजा संग्रामभूमि में अत्यन्त कृतज्ञ विद्वान् आश्रितों को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करता था।।१५९।।

मूर्त औदार्य या वैदुष्य या अपना भाग्य प्राप्त हो जावे तो उसे आश्रित लोग शुभ बताते हैं। इस प्रकार इनसे समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले लोग धन की वृद्धि से धन देने वाले के प्रति प्रसन्न होते हैं।।१६०।।

उसने सामान्य मनुष्यों के द्वारा की गई ठगी के द्वारा अलग की गई देश की आय की संख्या (काला धन) को जान कर राज्य की स्थिरता के लिये इस चतुराई को अलग कर दिया। राजा लोग तभी तक देवगृह का उपयोग करते हैं, जब तक वे लोकपाल देवता के अंश बनकर राजमद से रहित होकर विद्वत्ता के साथ देश का पालन करते हैं।।१६१।।

क्या इस युद्ध के द्वारा अन्न के भण्डार से परिपूर्ण दुर्ग का कार्य प्रशंसनीय रहेगा। क्या इस युद्ध से ६ प्रकार के कर्मठ बल द्वेषी शत्रुओं के विनाश में उपयुक्त हो सकेंगे। क्या इस युद्ध के द्वारा इस देश या अन्य देश से कोश की वृद्धि हो सकेगी - इस प्रकार विचार करते हुए उसने देश को (युद्ध या अयुद्ध से) अलग कर दिया तथा उसकी आय शुभकारी हुई।।१६२।।

किं सङ्ख्येन च सस्यसंभृतिमुखो दुर्गस्य शस्यो विधिः
किं सङ्ख्येन च षड्विधं बलमिति द्वेष्यक्षये कर्मठम् ।
किं सङ्ख्येन च कोशवृद्धिरियता देशेन वा येन वा
देशस्तेन विभाजितो विमृशता चायः शुभायाऽभवत् ।।१६२।।

इति वरनयमार्गादानतः सर्वलोकैः
कृतनुतिरयमादान्नीतिमेवार्थहेतुम् ।
अनयविहितबुद्धिर्दुर्गतिं याति सर्वो
जनविरचितनिन्दस्तन्नयो ग्राह्य एव ।।१६३।।

पूर्वोद्भूतां व्यवस्थां नरपतितिलकः स्थापयित्वा स्वराज्यं
शास्ति प्राज्यैरमात्यैः कथितबहुगुणामन्यलोकैश्च शुद्धैः ।
दुष्टैः सर्वैर्विगीतां विधृतकुलनुतिं कार्यसिद्धिप्रवीणां
कर्मश्रद्धामिव स्वां मतिमिव शुभदां सद्गतिं कीर्तिसिन्धुम्।।१६४।।

इस प्रकार सुन्दर नीति के मार्ग को ग्रहण करने से सब लोगों द्वारा सुपूजित अर्थपूर्ण नीति को ही इस राजा ने स्वीकार किया। अनीति में बुद्धि लगाने वाला राजा लोगों द्वारा की गई निन्दा को तथा वह दुर्गति को प्राप्त करता है। अतः नीति का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।।१६३।।

इस राजाओं में श्रेष्ठ राजा ने अपने श्रेष्ठ मन्त्रियों के द्वारा तथा अन्य शुद्ध लोगों के द्वारा स्वराज्य को स्थापित करके तथा अनेक गुणों वाली सभी से प्रशसित, सब कुलों के द्वारा नमस्करणीय कार्य सिद्धि में श्रेष्ठ पहले से चली आ रही व्यवस्था को स्थापित करके अपनी सुन्दर बुद्धि तथा श्रद्धा के समान सद्गति तथा शुभ प्रदान करने वाले प्रतिष्ठा के समुद्र को प्राप्त किया।।१६४।।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्संजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते ।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गोऽभवत्पञ्चमः ।।१६५।।

अच्छे लोगों का प्रिय, सर्वथा यशस्वी जो वैश्यकुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित हैं, उनसे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् श्री माधव के सुपूजित स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का शुभ चरित्र वर्णन-विषयक पञ्चम सर्ग पूर्ण हुआ।।१६५।।



षष्ठः सर्गः।

स वैभवाय स्पृहयालुचित्तस्तस्यानुकूलं विदधज्जिगीषुः।
अभूद् ध्रुवं द्वादश राजचक्रे यथाऽभवद्दाशरथिः सुमन्त्रः ।।१।।

वृद्धिं प्रपन्नानि न शिष्टिभाञ्जि स्तोकानि कार्ये न लगन्त्यमूनि।
इतीश्वरो मध्यमजीविकाभिर्मित्राणि सन्तोषयति प्रसन्नः ।।२।।

सप्ताङ्गवृद्धोऽपि स राजसिंहो न नीतिपद्यां विजहाति जातु।
सुखस्य हेतुं यशसश्च मूलं वेलां सरस्वानिव वर्धितोऽपि ।३।।

एकं न तैक्ष्ण्यं न मृदुत्वमागाज्जगद्वशं प्रापयति स्म भव्यः।
स मध्यमेनैव नृपाधिराजः क्रमेण मुन्युक्तपथप्रवृत्तः ।।४।।

वह विभिन्न कार्यों की स्पृहा तथा विजय की इच्छा वाला राजा ऐश्वर्य के लिये तदनुकूल कार्य करता हुआ राज्य के १२ प्रकार के कार्यों में स्थिर हुआ। जैसे अच्छे मन्त्र वाले दशरथ के पुत्र राम हुए।।१।।

वृद्धि को प्राप्त पर शासन कार्य के अयोग्य लोग छोटे कार्यों में नहीं लगते, यह सोच कर यह प्रसन्न राजा मध्यम जीविकाओं से मित्रों को प्रसन्न रखता था।।२।।

यह राजसिंह ७ अंगों वाले कार्यों में निपुण होकर भी नीति के रास्ते को कभी नहीं छोड़ता था। जैसे बढ़ा हुआ समुद्र भी अपनी वेला या तट को नहीं छोड़ता।।३।।

वह सुन्दर राजा केवल कठोरता या केवल कोमलता नहीं रखता था तथा इस प्रकार जगत् को अपने वश में रखता था। इस प्रकार यह राजाधिराज मुनियों द्वारा बताए गए मध्यम मार्ग से चलता था।।४।।

राज्ञा रिपुव्रातविधीयमानं विधिं स्वबुद्ध्यैव विनिघ्नता द्राक् ।
अकारि कृत्यं स्वमवाप्य रन्ध्रं रिपुर्व्यभेदि स्वमगोपि चैतत् ।५।

माधुर्यसौन्दर्यमुखा नृपस्य द्विषत्स्वपि स्थानमवाप्नुवन्ति ।
गुणा न चित्रं खलु चात्र किंचित्तेषां गुणानां न किमप्यलभ्यम् ।।६।।

किं नाद्भुतं स्वाचरितं तदीयं वृत्तं यतोऽयं व्यभजन्महः स्वम् ।
द्विधा ततः कान्तमशेषमेतद् गृहे निधत्ते परुषं परेषु ।।७।।

तस्यावववादं शिरसा वहेयुर्निरातपत्रेण रसाधिनाथाः ।
उत्थाय लेखेन विराजमानं निर्माल्यवच्चक्रधरस्य लोकाः ।।८।।

चिकीर्षिते नास्य पराद्धयं स्यात् परस्य च स्यान्नृपतेरमुष्मात् ।
नीतेर्नयेऽन्यत्र पदं निदध्युस्तेभ्योऽभयं सर्वगमस्ति युक्तम् ।९।

शत्रुसमूह के द्वारा की गई चाल को अपनी बुद्धि से नष्ट करने वाले इस राजा ने सब कार्य किये। अपने छिद्र को प्राप्त करके अपने छिद्र को बन्द किया तथा शत्रु के छिद्र को खोला।।५।।

राजाओं के माधुर्य तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण चेहरे शत्रुओं के मध्य भी उचित स्थान प्राप्त कर लेते हैं। उनके गुण (स्वाभाविक होने से) विचित्र नहीं थे। उन गुणों के द्वारा कुछ भी अलभ्य नहीं था।।६।।

क्या यह उसका अद्भुत चरित्र नहीं था कि उसका विवरण सभी प्रशंसित स्वर्गादि लोकों में फैल गया। पुनः उसने अपने स्वरूप को बाँट कर सौन्दर्य अपने घर रखा तथा कठोरता दूसरे के लिये रखी।।७।।

छत्र आदि से विहीन धरती के छोटे राजा लिखित पत्र में विराजमान आदेश को उठ कर सिर से स्वीकार करते थे। जैसे लोग चक्रधारी श्रीकृष्ण के आदेश को मानते थे।।८।।

अन्यों के द्वारा युद्ध की इच्छा करने पर भी इसे दूसरों से डर नहीं था। दूसरे राजाओं को भी इससे डर नहीं था। राजनीति में अन्यत्र हस्तक्षेप रखना होता है। पर सर्वत्र उन्हें अभय बनाये रखना ही उचित है।।९।।

जानन्नपि व्याजमृधं यशस्वी सद्वर्त्मयुद्धं रचयन् कृतास्त्रः ।
जयश्रियाऽभाजि गुणातिरेकाद्गुणैर्न किं किंकरतामुपैति ।।१०।।

वर्णाश्रमाणां परिपालनानि क्षितीशकार्याणि मनूदितानि ।
कुर्वन् कुमाराध्यवसाय एव षष्ठांशभाक्तैः स्वकृतेरकारि ।।११।।

एका दशा साऽपि महीपतीनां यत् ते धनद्ध्यैव समुत्तरन्ति ।
स तर्कयन्नित्यमभून्नृपाणां दण्डास्त्वराष्ट्राच्च धनर्द्धिकर्ता ।।१२।।

युग्मम्

ऋणानि सर्वाणि शरीरभाजां निन्द्यानि भूमाविति राजवर्यः ।
एतान्यगृह्णन् स समग्रशक्तिः कृत्यानि संसाधयते स्ववित्तैः ।१३।

ऋणानि यानि प्रतिभान्ति लोके दैवार्षपित्र्याणि च तद्विमुक्त्यै ।
यत्नो विधेयो न पुनश्चतुर्थमृणं नृभिः कार्यमिदं विमृश्य ।।१४।।

वह अस्त्रों को धारण करने वाला यशस्वी कूट कपटपूर्ण युद्ध को जानते हुए भी सदाचरणपूर्वक युद्ध करते हुए अपने गुणों से विजयश्री को प्राप्त करता था। गुणों से किसे अपने वश में नहीं बनाया जा सकता।।१०।।

मनु के बताए हुए राजा के कार्य - वर्णाश्रमों के परिपालन इत्यादि करते हुए युवराजत्व से ही निश्चय करते हुए अपने राज्य के कार्य के लिये (प्रजा की आमदनी का) छठा अंश तय किया।।११।।

अन्य राजाओं की यही एक दशा है कि वे धन की वृद्धि के लिये ही सब कुछ करते हैं। पर यह राजा तर्क करते हुए दण्ड से तथा अपने राष्ट्र की भलाई के द्वारा धन-संग्रह करता था।।१२।।

शरीर वाले प्राणी के लिये सभी प्रकार के ऋण इस धरती में निन्द्य हैं, अतः यह सम्पूर्ण शक्ति वाला श्रेष्ठ राजा ऋण न लेते हुए अपने धन से सब कार्य सम्पादित करता था।।१३।।

लोक में जो दैव आर्ष तथा पित्र्य ऋण प्रकटतः परिज्ञात हैं, उनसे मुक्ति के लिये यत्न करना चाहिये। यह सोचते हुए कि मनुष्यों द्वारा चौथे प्रकार का ऋण ग्रहण करना ठीक नहीं।।१४।।

राजा यथा रक्षति भूमिमेतां तथैव भूमिस्तनुतेऽस्य वृद्धिम्।
वन्यैर्गजैराकररत्नदानैः कृष्या निरीत्या फलवृद्धिमत्या ।१५।

न केवलं शत्रुगणात्प्रजाः स्वाः स पालयंस्तत्प्रणयं तनोति।
किन्तु स्वकाद्वल्लभपूरुषाच्च प्रवृद्धमाप्नोति ततः प्रजाभिः ।।१६।।

ऋणादिदानात्किल या गृहीता यैरुत्तमर्णैः क्षितिकामधेनुः।
तां त्याजयंस्तद्द्रविणं स दत्वा तयापि पूर्णस्वमनोरथोऽभूत् ।१७।।

द्रागदण्ड्यान् दण्डपातैरवनिपतिरयं संजयत्येव हृद्यो
नादण्ड्यान् दण्डयोग्यान् रचयति पुरुषांस्तीक्ष्णदर्भाग्रबुद्धिः।
ये दण्ड्यान् दण्डयन्ति क्षितिपतिमणयस्ते न दोषं भजन्ते
दण्ड्यानामप्यदण्डादिति भवतितमां सर्वधर्माप्रकर्षः ।१८।

यह राजा जैसे जैसे भूमि की रक्षा करता था वैसे ही भूमि भी इसके लिये वन्य हाथी, खनिज रत्नों के प्रदान के द्वारा, कृषि के द्वारा तथा फलवृद्धि वाले उपायों के द्वारा इसे वृद्धि प्रदान करती थी।।१५।।

यह राजा अपनी प्रजा को शत्रुगण से बचाते हुए तथा इस प्रकार उनका पालन करते हुए केवल इन प्रजाओं के ही प्रेम का विस्तार नहीं करता था। अपितु अपने प्रिय पुरुषों से भरपूर प्रेम प्राप्त करता था। फिर प्रजाओं से भी प्रेम प्राप्त करता था।।१६।।

ऋण आदि देते हुए जिन महाजनों ने किसी की जमीन रूपी कामधेनु को ले लिया था उस जमीन को धन देकर छुड़ाते हुए वह पूर्ण मनोरथ हुआ।।१७।।

यह हृदय को प्रिय लगने वाला राजा दण्डयोग्य लोगों पर दण्डप्रहार करते हुए उन पर विजय प्राप्त करता था। यह कुशाग्र के समान तीक्ष्ण बुद्धि वाला दण्ड के अयोग्य लोगों को दण्डनीय कभी नहीं बनाता था। राजाओं में उच्च लोग यदि दण्डनीय को दण्ड देते हैं तो उन पर कोई दोष नहीं लगता। क्योंकि दण्डनीय को दण्ड न देने से सभी धर्मों का ह्रास होता है।।१८।।

लोकाँल्लोकमनोहरोऽयमशिषद्भद्रोक्तिभिः प्रत्यहं
पन्थानं न शुचिं विमुञ्चत जना यूयं स्वकामादितः।
संमोहाद्यदि मोक्ष्यते शुचिपथस्तच्छ्रूयतां साध्वसं
यन्मत्तो भविता भविष्यति दृढं सर्वस्वजीवक्षयात् ।।१९।।

येन स्याद्दुरितं न तद्वितनुते कर्म प्रमादादपि
श्रेयो येन स वर्धते प्रतिदिनं तत्कर्म कुर्वन् सदा ।
हर्षेणैव समं दिनं गमयति क्वास्त्येनसः सम्भवः
पुण्यानामिति शाश्वतः सुखभरः स्थाने भवत्यद्भुतः ।।२०।।

एकेनानेककार्यं विरचयितुमयं नोपलब्धिं विधत्ते
पृथ्वीनाथः प्रथीयानधिगतचरितः पूर्वजानां मनस्वी ।
एकेनानेककार्यं विदधदपि भृशं तस्य सिद्धिर्न यायात्
एतत्सर्वं विचिन्त्य प्रतिजनममदः कार्यहेतोर्नियुङ्क्ते ।।२१।।

लोगों को सुन्दर लगने वाले इस राजा ने लोगों को प्रतिदिन अपनी कल्याणमयी युक्तियों से यह कहा कि कोई भी जन अपने काम आदि के वशीभूत होकर अच्छे रास्ते को न छोड़ें। कोई भी मतवाला अगर मोह से अच्छे रास्ते को छोड़ेगा तो वह सम्पूर्ण जीवन के क्षय को प्राप्त होगा, यह हुआ भी है और आगे भी होता रहेगा - इसे सभी लोग आतंकपूर्वक सुन लें।।१९।।

जिस कार्य से पाप फैलता हो ऐसे कार्य को वह भूल कर भी नहीं करता था। जिस कार्य से श्रेय बढ़ता है उसी कार्य को वह प्रतिदिन करता था। वह सदा प्रसन्नता से दिन बिताता था, इसमें पाप का अवकाश कहां है। पुण्यों का यह सम्मिलन नित्य तथा सुखद था तथा अपने आप में अद्भुत था।।२०।।

यह विशाल पृथ्वी का पालक, पूर्वजों के चरित को जानने वाला मनस्वी एक से अनेक कार्यों को कराने का अवकाश नहीं रखता था। एक से अनेक कार्य कराने वाला सिद्धि को प्राप्त नहीं करता। यह सब कुछ सोच कर यह अप्रमादी राजा अलग अलग पुरुषों को अलग अलग कार्यों में लगाता था।।२१।।

पुण्याधिकारिपुरुषान् स नियुज्य राष्ट्रे
मङ्क्षु स्वकीयधनमेभ्य उपाददानः ।
तद्रागवृद्धिकुशलश्चतुरः स्वकृत्ये
तैः साधयन् विजयते गुरुराजकार्यम् ।।२२।।

जयति जयति राजा धार्मिकान् पुण्यकार्ये
विबुधवरसमूहानर्थकार्ये नियुज्य ।
निजगुणकृततोषान् प्राकृतान्नीचकार्ये
युवतिषु खलु षण्ढान् बुद्धनीतिप्रभावः ।।२३।।

शत्रूणामयमात्मनोऽपि निभृतं तीर्थानि तत्कर्मभि-
र्जानन् भाति विशङ्कतां च लभते सर्वद्विषद्भ्योऽनिशम् ।
तीर्थानां शुचिभावतो दृढमिदं राज्यं नृपाणां भवेत्
तस्मात्तानि परीक्षयन्ति सुधियः सर्वप्रयत्नैर्नृपाः ।।२४।।

वह राष्ट्र में पुण्यशाली अधिकारी पुरुषों को लगाकर तथा शीघ्र ही इनसे अपना धन प्राप्त करके उनके राग को बढ़ाने में कुशल यह चतुर गम्भीर राजकार्यों को सम्पादित करते हुए विजय प्राप्त करता था।।२२।।

यह राजा धार्मिक लोगों को पुण्यकार्य में तथा दुनियावी चतुर लोगों को धनकार्य में लगाता था। जो अपने गुणों की प्रशंसा से ही संतुष्ट हैं, ऐसे प्राकृत लोगों को नीच कार्यों में तथा नपुंसकों को युवतियों के कार्य में लगांता था। इस प्रकार अपनी नीति के प्रभाव को जानने वाले राजा की जय हो।।२३।।

शत्रुओं के निवास को उनके कार्यों से भली प्रकार जानते हुए तथा अपने गुप्त स्थानों को भी निश्शंक भाव से जानते हुए सुशोभित होता था तथा सभी शत्रुओं से निश्शंकता को भी प्राप्त करता था। स्थानों की पवित्रता से राजाओं का राज्य सुदृढ़ होता है। इसलिये बुद्धिमान् राजा पूरे प्रयत्न से इनकी परीक्षा करते हैं।।२४।।

अथ यदधिकशीलं ज्ञातवान् बुद्धिमत्वात्
तदुचितविधिजातं कारयन्नेष तेन।
भुवनहृदयहारी योग्यतीर्थप्रयोगात्
विधिषु जयति सूते स्वौचिती, किं न राज्ञि।। २५।।

स्थाने यत्र नियुक्तवान् स सुजनांश्चेत्तत्र सम्यक् कृतं
वंश्यैस्तैर्नृपशर्मकर्मनिपुणैस्ते तल्लभन्ते ततः।
अस्मिन् राज्ञि कृतज्ञतेयमसमा विद्योतमाना भृशं
चित्राय क्षितिमण्डले न सुलभा, यस्मादियं प्रायशः।। २६।।

एषां विसर्गोऽस्ति कुतः स चास्मादेवं कृती राष्ट्रसुचिन्तनेषु।
यथा नृपाणां निजराष्ट्रचिन्ता कल्याणदात्री न तथा हि चान्या। २७।

यह राजा अपनी बुद्धिमत्ता से लोगों के स्वभाव को भली प्रकार ज्ञात कर लेता था तथा उनसे विधिपूर्वक तथा औचित्यपूर्वक कार्य कराता था। इस प्रकार यह विश्व के हृदय का हरण करने वाला उचित स्थान के प्रयोग से विधि कार्यों में विजय प्राप्त करता था तथा औचित्य को उत्पन्न करता था। ऐसे राजा में क्या नहीं होता।। २५।।

वह अच्छे लोगों को ज़िस स्थान में लगाता था, यदि उन्होंने वहां अच्छा कार्य किया तो वे अच्छे वंश में उत्पन्न, राजा के सुखकारी कार्यों को जानने मे निपुण (अधिकारियों) से (धन आदि) प्राप्त करते थे। क्योंकि इस राजा में अनुपम कृतज्ञता का भाव था। यह भाव सर्वत्र प्रकाशमान, धरती में आश्चर्यप्रद तथा लोगों के लिये दुर्लभ था।। २६।।

जो राष्ट्र की चिन्ता में इतना योग्य है, उसके द्वारा ऐसे कार्यों का विसर्ग या परित्याग किस प्रकार हो सकता है। जैसी राजाओं को कल्याण देने वाली, अपने राष्ट्र की चिन्ता होती है, वैसी अन्य किसी को नहीं।। २७।।

यस्मिन् राष्ट्रे भवति नियतं यः प्रसिद्धोऽनुवृत्यै
ग्रामः सोऽयं मनुजपतिना दीयते दत्तदेशः ।
नानानृभ्यो बहुलमनुजैस्तत्र नीतिः कथं स्या-
दित्यामर्शान्निजनयविधेः स्थापितस्तत्र भृत्यः ।।२८।।

सामादेशं सुनीतेः प्रतनुमपि रिपुर्नास्य शक्तो ग्रहीतुं
जाग्रद्रूपस्य नित्यं निखिलरिपुनृपैर्देववत्पूजनीयः ।
सैन्यं कोशं स सूते पथिकजनसुखं किं च चौराद्यभावं
तन्नाम स्यात्किमुर्व्यां न सुभगफलदं यत्नतः पालितं यत् ।।२९।।

नानानीतिविशारदैरनुचिते प्रोत्साहमापादितो
नर्मोक्तिप्रगुणैरसावनुचितं नाकारयत्कर्हिचित् ।
नीतौ लग्नधियां सदा क्षितिभृतां नर्मोक्तिकृन्मन्त्रणै-
र्मुन्युक्तस्य विधेर्विभाति परुषावज्ञा भ्रमेणाऽपि किम् ।।३०।।

जिस राष्ट्र में जो ग्राम व्यवहार के लिये अच्छा प्रसिद्ध है, वह प्रजाओं के पति-राजा के द्वारा (मुख्य कार्यालय के रूप में) दे दिया जाता था। विभिन्न मनुष्यों के लिये विभिन्न अधिकारियों द्वारा क्या नीति अपनाई जाय, यह विचार करके वह अपनी नीति का अनुचर नियुक्त करता था।।२८।।

इस जागरूक राजा की नीति के छोटे से छोटे व्यवहार या आदेश को इसके शत्रु नहीं जान सकते थे। इसलिये यह सदा शत्रु राजाओं के द्वारा भी देवताओं के समान पूजा जाता था। यह चोर आदि के अभाव से परिपूर्ण, राहगीर लोगों को सुख देने वाले सैन्य तथा कोष की सृष्टि करता था। इस धरती में ऐसा क्या है जो प्रयत्नपूर्वक पालित होने पर सौभाग्य तथा फल प्रदान करने वाला न हो।।२९।।

अनेकविध नीतिं जानने वालों के द्वारा अपने प्रेमपूर्ण वचनों से अनुचित कार्य के प्रति प्रोत्साहित किये जाने पर भी इस राजा ने कभी अनुचित नहीं कराया। क्या नीति में लगे रहने वाले राजाओं के द्वारा प्रेमोक्ति पूर्ण विचारों से मुनियों द्वारा कहे गये विधान की कठोर अवहेलना भ्रम से भी सम्भव हो सकती है।।३०।।

कोशस्तेन महात्मना हिततमेष्वेवाहितो लेखितः
क्ष्मागर्ते च गृहे च गुप्तमुपलैः प्रोत्थापितो कौशलात् ।
तत्संख्याक्षरमालिकां स्मृतिपथे कुर्वन्नभूत्साधकः
साधीयान्निजसंपदामितिविधिः कोऽन्योऽपि नाङ्गीकृतः ।। ३१ ।।

राजेन्द्रोहितसंमतं निजविधिं संसेधयन् शोभनं
लोकानामनुरञ्जकं स लभते काष्ठां गतं वैभवम् ।
भृत्यानामपि भाग्यसंततिरहो संजायते तद्भवे
नो चित्रं क्षितिपालमस्तकमणेर्दृष्टेः फलं जृम्भते ।। ३२ ।।

सद्भिः कार्या न हिंसा निजनयनिरतैरल्पसौख्याऽऽत्तधर्मै-
रेवं विद्वान् विदित्वा त्यजति स मृगयां वेदशास्त्रानिषिद्धाम् ।

उस महात्मा ने कोश का कार्य अपने अत्यन्त हितकारी लोगों के अधीन रखा तथा उनसे ही हिसाब लिखवाया। उसने धन को धरती के अन्दर गड्ढे में अथवा घर में गुप्त पत्थरों से छिपा कर कुशलतापूर्वक रखा। (ताले की चाभी का) नम्बर या अक्षर को याद रखने के लिये साधक को लगाया। अपने निजी सम्पत्ति की सुरक्षा की इतनी बढ़िया व्यवस्था किसी ने भी स्वीकार नहीं की थी।। ३१ ।।

वह लोगों को प्रसन्न करने वाले तथा बड़े राजाओं के द्वारा सोचे गये तथा उनके द्वारा सम्मत अपने विधान या कानून को भली प्रकार चरितार्थ कराता हुआ सर्वोच्च वैभव को प्राप्त करता था। उसके उत्पन्न होने पर भृत्यों के भी सौभाग्य की परम्परा उत्पन्न हुई थी। इसमें सन्देह नहीं कि यह राजा के मस्तक की भाग्यरेखा तथा उसकी दृष्टि का फल फलीभूत हो रहा था।। ३२ ।।

अपनी नीति में लगे रहने वाले, धर्माचरण करने वाले अच्छे लोगों के द्वारा थोड़े समय के लिये सुख देने वाली हिंसा को नहीं करना चाहिये। इस विद्वान् ने ऐसा समझ कर वेद शास्त्रों में अनिषिद्ध हिंसा (अश्वमेध आदि) का भी परित्याग कर दिया। जिसकी बुद्धि में मुनियों द्वारा प्रोक्त त्याग का बीज

यत्रास्यां त्यागबीजं मुनिवरवचनं मञ्जु जागर्ति तस्या-
स्त्यागे किं चित्रमस्तु श्रुतिविहितविधौ जागरूकस्य तस्य ।। ३३।।

तस्याततायिवध एव विनिर्मितोऽभू-
द्राज्ये प्रजास्थितिकरः शुभकृन्नृपाणाम् ।
यद्बोधिता विविधपापविधानदक्षा
वाञ्छन्ति कर्तुमवमं न विधिं पुमांसः ।।३४।।

राजा द्रव्यं तथाऽऽदाज्जनपदमनुजात् येन पीडा न तस्मिन्
सैषा शस्ता न चास्मिन्निति मुनिवचने सस्पृहः कर्मशाली ।
तद्रक्षासावधानः सुखमतिविपुलं रोपयंस्तस्य नित्यं
चित्ते चास्य न्यवात्सीदयमसुररिपुर्वैष्णवानां यथाऽर्च्यः ।३५।।

अश्वानामपि हस्तिनामपि नृपः पुष्टौ सयत्नोऽभवत्
शिक्षायामपि निर्भरं गजहयाः पुष्टा विनीता बुधैः ।

जाग रहा है, उसके त्याग में इस वेदानुकूल आचरण करने वाले जागरूक के लिये क्या अचरज है।।३३।।

राजाओं का शुभ करने वाले तथा राज्य में प्रजा की स्थिति करने वाले इस राजा का निर्माण या उद्भव आततायी लोगों के वध के लिये ही हुआ था। वे आततायी जिनके द्वारा बहकाए गये लोग विविध पाप में दक्ष होकर अधम कार्य ही करना चाहते हैं, पुरुषोचित कार्य नहीं।।३४।।

राजा ने जनपद के लोगों से इस प्रकार कर लिया जिससे उन्हें पीड़ा न हो, यही प्रशंसनीय है, पीड़ायुक्त कर में कार्य करना प्रशंसनीय नहीं है, इस मुनिवचन में यह कर्मयोगी स्पृहा रखता था। उन प्रजाओं की रक्षा के प्रति सावधान यह राजा उन्हें अत्यधिक सुख प्रदान करता था। इस प्रकार वह असुरों का शत्रु प्रजा के चित्त में निवास करने लगा। जैसे वैष्णवों के लिये विष्णु पूजनीय होते हैं।।३५।।

सङ्ग्रामश्रियमर्जयन्ति यशसां संवर्धयन्ति व्रजम्
तद्युग्मे कृतकृत्यता प्रभवति क्षोणीभुजां कामसूः ।।३६।।

सर्वैरिवाश्वजातैर्विपुलहयगृहे संयतैः शिक्षितैः स्यात्
युद्धारम्भो गरीयान् रिपुजनहृदयस्फोटनः सर्वकालम् ।
स्मारं स्मारं स इत्थं हयकुलमखिलं शिक्षयत्येव बद्ध्वा ।
युद्धायातं रिपूणां तृणमिव सततं मन्यमानः स्वशौर्यात् ।।३७।।

गजैर्विना नो रणभूर्विभाति शूरैरिति क्ष्मापतिना विचार्य ।
प्रणायिता हस्तिगणाः सशौर्या इत्थं च कार्यान्तरमप्यकारि ।।३८।।

यह राजा हाथी तथा घोड़ों की पुष्टि के प्रति भी प्रयत्नशील रहा। इस प्रकार सिखाने वाले बुद्धिमान् लोगों के द्वारा वे पुष्ट हाथी, घोड़े शिक्षा या ट्रेनिंग से विनीत बना दिये गये। ये लोग संग्राम की श्री को अर्जित करते हैं तथा अनेक प्रकार के यश को बढ़ाने वाले होते हैं। यदि राजा को उनकी जोड़ी बनाने में सफलता मिल जाय तो यह जोड़ी कामनाओं को पूरी करने वाली होती है।।३६।।

सभी प्रकार के घोड़ों को अपनी विशाल घुड़साल में संयत तथा शिक्षित होना चाहिये। ऐसा होने पर युद्ध का आरम्भ सदा दुश्मनों के हृदय को फाड़ने वाला होता है। इस तथ्य को बार बार याद करते हुए वह सभी घोड़ों को बाँध कर खूब शिक्षा देता था। इस प्रकार वह अपने शौर्य से युद्ध के लिये आये हुए दुश्मनों को सदा तिनके के समान मानता था।।३७।।

सैनिकों के द्वारा हाथियों के बिना युद्धभूमि सुशोभित नहीं की जा सकती। अतः उसने शौर्य वाले हाथियों को विनम्र या अपने वश में किया। इस तरह के अनेक अन्य कार्य भी किये।।३८।।

देवताओं के योद्धा के समान विन्ध्यभूमि में उत्पन्न उसके हाथी बाहर निकले हुए वज्र के समान दाँतों से निरंकुश तथा दूसरे के बलों या सेना में विप्लव करने वाले वृद्धिशाली थे। इसके साथ ही हथियारों से सुसज्जित वीर

विन्ध्यादिप्रभवास्तदीयकरिणः शूराः सुराणामिव
प्रोद्यद्वज्ररदोद्धुराः परबलप्रद्रावववर्धिष्णवः ।
सन्त्येवात्र तथापि वीरपुरुषाः शस्त्रोत्कटा भूभृतां
यन्तारः प्रतिरोपिता रिपुचमूरेभिर्विना को जयेत् ।।३९।।

वर्षे मेऽस्ति कियान् वरो व्यय इयानित्यादि सञ्चिन्तयन्
गोधूमाज्ययवादिकस्य नियतं दुर्गेषु सर्वेषु सः ।
शत्रोर्मानविमर्दनो वितनुते संभारमब्दैः शतै-
र्न क्षीणो भवति प्रकल्पितमहांस्तद्भुज्यमानोऽपि यः ।।४०।।

चेद्वर्तेऽनुगसञ्चयेषु समदृक् स्तुत्येषु मन्देषु च
स्तुत्यास्तर्हि न कुर्वतेऽसमकृतिं राज्यस्थिरत्वक्षमाम् ।
इत्यामृश्य विशेषकारिपुरुषान्नित्यादृतान् स्थापयन्
मन्दानपि सम्मानयन् पटुतरः पृथ्वीं स भुङ्क्ते सुखम् ।।४१।।

पुरुषों को तथा हाथियों को चलाने वाले महावत आदि को भी उस राजा ने लगाया था। इनके बिना दुश्मनों की सेना को कौन जीत सकता है।।३९।।

पूरे वर्ष में कितना व्यय करना उत्तम है, इसे सोचते हुए अपने सभी दुर्गों में गेहूँ, घी, जौ आदि की निश्चित आमदनी का ध्यान रखता था। वह शत्रुओं के सम्मान को नष्ट करने वाला १०० वर्षों के लिये भी राशन रखता था। वह महान् अन्न भण्डार निरन्तर खाये जाते हुए भी क्षीण नहीं होता था।।४०।।

यदि मैं स्तुत्य तथा मन्द तथा अनुचरों के प्रति समदर्शी का व्यवहार करूँ तो स्तुत्य लोग विषम कार्य कभी नहीं करते, वे सदा राज्य को स्थिर बनाने वाला कार्य करते हैं, यह सोच कर अधिकारी पुरुषों के द्वारा उन्हें सदा आदरपूर्वक रखते हुए तथा मन्द लोगों का भी सम्मान करते हुए इस अत्यन्त चतुर राजा ने पृथ्वी का सुखपूर्वक उपभोग किया।।४१।।

ये ये मे द्रव्यदेशं परिणतमतयो भुञ्जते यन्निमित्ता-
त्तेषां के तन्निमित्तं विदधति पुरुषाः केन वा लब्धकामाः ।
इत्याद्येतान् परीक्ष्यानुचितकृत इतः पातयन् सुष्ठु कार्यान्
रक्षन् सैन्यैः स ऋद्धः प्रतिभयचरितश्चारुवृत्तोऽपि वित्तैः ।४२।।

पत्नीभिः कामलीलां विदधति नृपतौ पुष्पदामाभिरामे
भ्रूभिः कन्दर्पचापप्रकृतिभिरजितं तं वशं कुर्वतीभिः ।
बाणक्रीडैः कटाक्षैः सरसनृपममुं कम्पयन्तीभिरच्छैः
कामोद्दीपावतंसैः सुरुचिरवदनं याति कालो विशालः ।।४३।।

इत्थं राजा चरन् कीर्त्या कल्याणानि सहेत्यसौ ।
यथा दाशरथिः श्रीमान् वैरसेनिर्यथोत्तमः ।।४४।।

जो जो बड़े लोग वैभवपूर्ण देश का उपभोग करते हैं वे किस अधिकार से करते हैं तथा उन्हें किस प्रकार यह सुविधा प्राप्त है, इन सबकी परीक्षा करते हुए अनुचित करने वालों को गिराते हुए, अच्छे कार्यों की रक्षा करते हुए वह सैन्य से परिपूर्ण, अपने धन से सुन्दर चरित्र वाला निर्भय चरित्र वाला होकर कार्य करता था।।४२।।

पुष्पों की माला से मनोहारी (स्थान में) पत्नियों के साथ राजा के कामलीला करने पर वे (पत्नियाँ) उस अजित को अपने कामदेव के बाणों जैसी भौंहों से वश में करते हुए, अपने बाणों जैसे कटाक्ष से उस सुन्दर मुख वाले सरस राजा को खूब कँपाते हुए कामोद्दीपन से युक्त करती थीं। इस प्रकार उसका वह दीर्घ समय व्यतीत होता था।।४३।।

इस प्रकार यह राजा कीर्ति तथा अनेक कल्याण के साथ कार्य करते हुए श्रीमान् दशरथ के पुत्र या उत्तम वीरसेन के पुत्र के समान सुशोभित हुआ।।४४।।

नोत्सेकवान् वयोलक्ष्मीरूपैरुन्मत्तताप्रदैः ।
निजोदयेऽनिशं यत्नं कुर्वाणः कृष्णवत्कृती ।।४५।।

कां कामहं नीतिमिति ब्रवीमि क्षितीशवन्द्यस्य तदादृतस्य ।
याऽनेन वाच्या नवमे च सर्गे सुताय तां संश्रयता प्रवृद्धम् ।।४६।।

कल्याणं श्रीशशम्भू गणपतिगिरिजे भानुवह्नी क्रियास्ताः
लक्ष्मीवाण्यौ शुभोक्ती सुचरितमहितौ कार्यसंसिद्धिहेतू ।
आरोग्यद्रव्यसृष्टं सकलतनुभृतां किञ्च सर्वेष्टनिष्ठौ
भूभर्तुर्वीरभानोः प्रकृतिहितकृतो लोकपालानुहर्तुः ४७

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्संजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते ।

वह उन्मत्त बना देने वाली, अमर, धन-सम्पत्ति तथा अपने रूप से घमण्ड नहीं करता था। वह कार्य में सफल राजा कृष्ण के समान अपनी उन्नति के लिये सदा प्रयत्नशील रहता था।।४५।।

मैं इस आदरणीय तथा वन्दनीय राजा की कौन कौन नीति बताऊं, जो इसके द्वारा यहाँ तथा पुत्र का पालन करते हुए नवें सर्ग में कही जाने योग्य है।।४६।।

सबके इष्ट कार्यों में लगे हुए ईश तथा शम्भु, शिव तथा पार्वती, सूर्य तथा अग्नि देवता - इस प्रजा के हित करने वाले का, लोकपाल के अनुकरण करने वाले श्री वीरभानु का तथा सभी शरीरधारी प्राणियों का कल्याण करें। साथ ही शुभ वचन बोलने वाले, अपने चरित से पूजनीय लक्ष्मी तथा वाणी भी वे कल्याण की क्रिया करें।।४७।।

काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गश्च षष्ठोऽभवत् ।।४८।।

अच्छे लोगों का प्रिय, सर्वथा यशस्वी जो वैश्यकुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित हैं, उनसे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् श्री माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का शुभ चरित्र वर्णन विषयक छठा सर्ग पूर्ण हुआ।।४८।।

सप्तमः सर्गः।

अथ राजमती देवी दिव्यसौन्दर्यशोभिनी ।
सर्वासां धर्मपत्नीनां तस्यासीच्चित्तहारिणी ।।१।।

तस्यां फुल्लारविन्दाक्ष्यां रममाणेन भूभुजा ।
सम्प्राप्य समयं गर्भः स्थापितः स्थाणुतेजसा।।२।।

प्रिया च दधती गर्भं तल्लक्षणविराजिता ।
सीतेव रघुनाथस्य तस्यानन्दाय कल्पते ।।३।।

दिने दिने तदीयोऽपि गर्भः पुष्टो यथा यथा ।
तथा तथा नृपः पूर्णः सुखसौभाग्यसम्पदा।।४।।

अथ स्वप्ने शुचिर्देवी गर्भधारणधीमती।
अवतीर्य क्रियानिष्ठं हरिमित्थं निरैक्षत।।५।।

इस राजा की दिव्य सौन्दर्य शोभा वाली सभी धर्मपत्नियों में अधिक मनोहारिणी धर्मपत्नी राजमती देवी थी।।१।।

उस खिले हुए कमल के समान आँखों वाली धर्मपत्नी में स्थिर तेज वाले राजा ने रमण करते हुए समयानुसार गर्भ स्थापित किया।।२।।

रानी के लक्षणों से विराजित वह पत्नी गर्भ धारण करते हुए वैसे ही आनन्दित हुई जैसे रघुनाथ रामचन्द्र की पत्नी सीता आनन्दित हुई थीं।।३।।

प्रतिदिन जैसे जैसे उसका गर्भ पुष्ट हो रहा था, वैसे वैसे यह राजा भी सुख, सौभाग्य तथा सम्पत्ति से परिपुष्ट हो रहा था।।४।।

अब गर्भ धारण से बुद्धिमती पवित्र देवी ने सपने में उतर कर क्रियाशील हरि को इस प्रकार देखा।।५।।

आरोपयन्तं चतुरो वेदवृक्षान् निमज्जतः ।
विधाय मूर्तिं मत्स्यस्य प्रलयाब्धौ न या ममौ ।।६।।

दधानं कूर्मसंस्थानं जगद्रक्षानिमित्ततः ।
भुवो भारादपि स्वस्थं नाप्तखेदं कदाचन ।।७।।

वाराहीं बिभ्रतं मूर्तिं ययोद्विग्नः क्षयार्णवः ।
धरोद्धरणमुद्दिश्य विक्रामन्तं लयोदधौ ।।८।।

नारसिंहं वपुर्दिव्यं हिरण्यकशिपोर्वधे ।
बिभ्राणं विहितक्रोधं महालक्ष्मीनिषेवितम् ।।९।।

प्रातरयन्तं काप्येन निषिद्धं बलिमर्षणे ।
वामनं वाङ्मयावेद्यं लङ्घमानं जगत्रयम् ।।१०।।

मत्स्य की मूर्ति बनाकर, जो कि प्रलयकालीन समुद्र मे नहीं नापी जा सकी, (इस मूर्ति के द्वारा) डूबते हुए चारों वेदरूपी वृक्षों को उठाते हुए देखा।।६।।

जगत् की रक्षा के लिये कूर्म या कछुवे का शरीर धारण करते हुए, धरती के भार को उठाकर भी स्वस्थ, खेद न प्राप्त करने वाले अवतार को देखा।।७।।

प्रलयकालीन समुद्र में डूबती हुई पृथ्वी को बाहर निकालने के लिये वराह की मूर्ति को जिससे क्षय समुद्र विचलित हुआ ऐसे अवतार को (देखा)।।८।।

हिरण्यकशिपु के वध में नरसिंह के दिव्य शरीर को धारण करने वाले, अत्यन्त क्रोधी महालक्ष्मी से सेवित (अवतार को देखा)।।९।।

बलि द्वारा (दान देने की) सहनशीलता के समय अपनी चपलता से निषिद्ध धोखा प्रदान करते हुए, वाङ्मय में अवेद्य वामन रूप को तथा उससे तीनों लोकों को लाँघते हुए (वामन अवतार को देखा)।।१०।।

पित्राज्ञयाऽपि रचितं निन्दन्तं मातृमारणम् ।
क्षत्रक्षयकृतं क्रूरं गृह्णन्तं तं परश्वधम् ।।११।।

पौलस्त्यमृत्यवे जातं मञ्जुमूर्तिं रघोः कुले ।
लोकानां शिक्षकं विज्ञभ्रातृसन्मानरक्षकम् ।।१२।।

यमुनाकर्षणं प्राज्ञं हलायुधविभीषणम् ।
नीलवस्त्रद्वयोपेतं सितं कामपरायणम् ।।१३।।

पाखण्डाम्नायवर्त्मज्ञं सर्वहिंसापराङ्मुखम् ।
बुद्धं परमयोगस्थं दुष्टवञ्चनतत्परम् ।।१४।।

कुलकम्

कल्किनं विष्णुयशसस्तनयं यशसोज्ज्वलम् ।
दुष्टम्लेच्छान् विनिघ्नन्तं सादिनं खड्गशोभिनं ।।१५।।

निन्दित होते हुए भी पिता की आज्ञा से किये गये माता का वध तथा क्षत्रियों का विनाश करने वाले उस क्रूर परश्वध या विशेष कुल्हाड़ी को धारण करने वाले (परशुराम को देखा)।।११।।

रावण के विनाश के लिये रघुकुल में उत्पन्न, अत्यन्त सौम्य मूर्ति, लोक के शिक्षक, समझदार भाइयों के सम्मान की रक्षा करने वाले (श्रीराम को देखा)।।१२।।

बुद्धिमान्, अपने हल रूपी आयुध से भीषण, यमुना को (अपने हल से) खींचने वाले, दो कृष्ण वस्त्रों को धारण करने वाले, श्वेत कामनाओं की पूर्ति करने वाले (बलराम को) देखा।।१३।।

वेद के पाखण्डरूपी रास्तों को जानने वाले, सभी प्रकार की हिंसा से विमुख, दुष्टों को ठगने में तत्पर, परमयोगी बुद्ध को (देखा)।।१४।।

विष्णुयशस् के पुत्र, अपने यश से उज्ज्वल, दुष्ट म्लेच्छों का विनाश करने वाले, तलवार से सुशोभित, घुड़सवार (कल्कि को देखा)।।१५।।

मूर्तिमद्विष्णुयशसः किं यशोनीतिमूर्छितम् ।
कलिकालं विलुम्पन्तं कृतकालप्रवर्तिनम् ।।१६।।

नष्टानां भूमिरत्नानां धर्मादीनां प्रवर्तकम् ।
देवानां च द्विजातीनां क्षुधानिर्वाणकारकम् ।।१७।।

सृजन्तं झटिति स्वीयं चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मकृत् ।
असाध्यसाधकं देवं त्रैलोक्यत्रासनाशनम् ।।१८।।

नित्यं राजमती देवी सुप्ताऽलोकत कल्किनम् ।
उक्तस्वरूपं दिव्याङ्गं दिव्यभूषणभूषितम् ।।१९।।

अवतारानिमानन्यान् पश्यन्ती सा मधुद्विषः ।
प्रतिस्वप्नं प्रतीताऽऽसीच्चक्रवर्त्यात्मजोद्भवे ।।२०।।

गङ्गाद्या देवताः स्वप्नेऽवेक्षमाणा शुभाशया ।
आनन्दातिशयं प्रापत् पुत्रोत्पत्तिसमुत्सुका ।।२१।।

साक्षात् विष्णुयशस्, यशोनीति में संलग्न, कलिकाल को लोप करके सतयुग को प्रारम्भ करने वाले कल्की को देखा।।१६।।

नष्ट भूमि के रत्न तथा धर्म आदि के प्रवर्तक, देव तथा ब्राह्मणों की भूख को मिटाने वाले (कल्की को देखा)।।१७।।

चार वर्ण की व्यवस्था को तुरन्त प्रारम्भ करने वाले, अपना धर्म स्थापित करने वाले, असाध्य को सिद्ध करने वाले, तीनों लोकों के कष्ट को नष्ट करने वाले देव (कल्की) को देखा।।१८।।

सोई हुई राजमती देवी ने नित्य ही उक्त स्वरूप वाले, दिव्य अंगों वाले, दिव्य आभूषणों से विभूषित कल्की को (स्वप्न में) देखा।।१९।।

उसने श्रीकृष्ण के इन तथा अन्य अवतारों को देखते हुए चक्रवर्ती पुत्र के जन्म का प्रतिस्वप्न देखा था।।२०।।

वह सुन्दर विचारों वाली स्वप्न में गंगा आदि देवताओं को देखती हुई, पुत्र जन्म को उत्सुक होती हुई परम प्रसन्न हुई।।२१।।

कल्किनः सर्वदा स्वप्ने दर्शनाच्चारुलोचना ।
श्रद्धालुस्तं नमस्यन्ती साऽतर्कयदिदं तदा ।।२२।।

कल्पिरूपो हरिः साक्षात् दुष्टम्लेच्छापनुत्तये ।
मम निर्वर्तते कुक्षौ मत्पुत्रत्वेन सृष्टिकृत् ।।२३।।

प्रहृष्टा स्वप्नचरितं सा नृपं वक्ति पण्डितम् ।
गर्भागारागतं वृत्तं पृच्छन्तं स्वप्नगोचरम् ।।२४।।

अवतारान् विलोकेऽहं स्वप्ने हरिकृतान् प्रभो ।
विशिष्य कल्किनं वीरं खड्गपाणिं हयस्थितम् ।।२५।।

कालिन्दीसंयुतां गङ्गां पश्यन्ती सुषमामिव ।
जगन्निहतपापौघां त्वरमाणौघशोभिनीम् ।।२६।।

उस श्रद्धालु तथा सुन्दर आँखों वाली ने कल्की को सदा सपने में देखते हुए तथा उसे नमस्कार करते हुए यह सोचा।।२२।।

दुष्ट म्लेच्छों के विनाश के लिये कल्की के रूप में साक्षात् सृष्टिकर्ता हरि मेरी कुक्षि में मेरे पुत्र के रूप में आ गये हैं।।२३।।

स्वप्न के चरित से प्रसन्न (इस रानी ने) गर्भगृह में समाचार पूछने के लिये आये इस पण्डित राजा से स्वप्न में देखे वृत्तान्त को कहा।।२४।।

हे प्रभो, मैंने स्वप्न में हरि के अवतारों को देखा है। विशेष रूप से तलवार हाथ में लिये हुए, घोड़े पर बैठे हुए वीर कल्कि को (देखा है)।।२५।।

मैंने जगत् के पापों का विनाश करने वाली, शीघ्र प्रवाह से सुशोभित, कालिन्दी यमुना में मिलने वाली गंगा की सुषमा के समान (चित्र को) देखा।।२६।।

शङ्खचक्रगदापद्मान् विलोके भ्रूणरक्षिणः ।
जल्पतो जय सर्वेश क्षमां सुखय जन्मना ।।२७।।

कृतस्नाना मया प्रेक्ष्या जाह्नवीस्रोतसीक्षिताः ।
मरीचिप्रमुखा मन्त्रैर्मुनयो गर्भरक्षिणः ।।२८।।

कुलकम्

नारदोऽपि मया स्वैरीं महतीं वादयन्निमाम् ।
भूमिः कलिमलाक्रान्ता शोच्या जल्पन्नितीक्षितः ।।२९।।

वैकुण्ठनाममाहात्म्यं भाषमाणः पुनः पुनः ।
सप्तलोकस्थिरतरं प्राणिनां कल्मषापहम् ।।३०।।

नास्ति लोकेऽभयं किञ्चित् केवलं हरिकीर्तनम् ।
तत्परैमानवैस्तस्मात् भवितव्यमितीरयन् ।।३१।।

मैं बात करते हुए, भ्रूण (गर्भस्थ शिशु) की रक्षा करने वाले (विष्णु के) शंख, चक्र, गदा, पद्म को देखती हूँ। हे जय सर्वेश! अब तुम अपने जन्म से पृथ्वी की रक्षा करो।।२७।।

मैंने गंगा के स्रोत पर बैठ कर देखने वाले मरीचि इत्यादि प्रमुख लोग तथा स्नान करके मन्त्रों से गर्भ की रक्षा करने वाले मुनि देखे हैं।।२८।।

मैंने स्वेच्छापूर्वक महती नामक वीणा को बजाने वाले तथा 'यह भूमि कलि के मल से आक्रान्त होकर शोचनीय हो गई है' यह कहते हुए नारद को देखा है।।२९।।

मैंने वैकुण्ठ नाम के माहात्म्य को बार बार कहने वाले, सातों लोकों में अत्यन्त स्थिर, प्राणियों के पाप को धोने वाले (नारद को देखा है)।।३०।।

इस लोक में हरिकीर्तन के अलावा अन्य कुछ भी अभय नहीं है, अतः मनुष्य को हरि के ध्यान में आसक्त होना चाहिये, ऐसा कहने वाले (नारद को देखा)।।३१।।

अन्यत् कलौ न पश्यामि नारायणकथां विना ।
मोक्षदं सुखदं नित्यं गङ्गामिव वदन्निति ।।३२।।

नागारिः सुप्तया स्वामिन् दृश्यते प्राञ्जलिर्मया ।
हरेरग्रे समासीनः शेषनागसखः किल ।।३३।।

ध्यायन् हरिं मया दृष्टः प्रह्लादो व्यग्रमानसः ।
हिरण्यकशिपोर्वाक्यात् ताड्यमानोऽपि तादृशः ।।३४।।

बलिर्जानन्नपि स्वस्य वामनेन महाभयम् ।
ददत्तदद्भुतं दानं वामनाय विलोक्यते ।।३५।।

भीष्मादयो मया भक्ताः सधनुः शरशक्तयः ।
गर्भरक्षां वितन्वन्तः सावधाना विलोकिताः ।।३६।।

वैष्णवीपरिषद् दृष्टा सर्वाऽपि स्वस्थधीर्मया ।
हरेरुपासनानिष्ठा हरिमेकं विजानती ।।३७।।

मैं इस कलि में नारायण कथा के अलावा अन्य किसी को गंगा के समान, मोक्षद, सुखद नहीं देखता, यह कहने वाले (नारद को देखा)।।३२।।

स्वामिन्! मैंने सोते हुए हरि के आगे बैठे हुए शेषनाग के मित्र हाथ जोड़े हुए नागारि गरुड़ को (देखा है)।।३३।।

मैंने हिरण्यकशिपु के वाक्य से उस प्रकार मारे जाते हुए, व्यग्र चित्त वाले होकर हरि का ध्यान करते हुए प्रह्लाद को देखा है।।३४।।

वामन से महाभय जानते हुए भी वामन के लिये अद्भुत दान देते हुए बलि को देखा है।।३५।।

मैंने सावधान होकर मेरे गर्भ की रक्षा करते हुए धनुष, बाण, शक्ति इत्यादि के साथ भीष्म इत्यादि को देखा है।।३६।।

मैंने स्वस्थ बुद्धि वाली, केवल हरि को जानने वाली, हरि की उपासना में लगी हुई वैष्णवी सभा देखी है।।३७।।

युग्मम्

धर्मराड् नैर्ऋतो वह्निः स्वाराड्वरुणवायवः ।
कुबेरोऽपि शिवश्चान्ये गर्भं रक्षन्त ईक्षिताः ।।३८।।

गृहीतस्वायुधस्तोमाः कृतमञ्जुलमूर्तयः ।
शिरस्त्राणेन राजन्तः कवचेन मनोहराः ।।३९।।

वीक्षे श्रीवीरसिंहं च वैकुण्ठभवनागतम् ।
सम्राड्चिह्नधरं ज्ञात्वा भाविनं चक्रवर्तिनम् ।।४०।।

वदन्तमिति मद्गर्भं नीतिं प्रथमशीलिताम् ।
हे गर्भ मम यद्राज्यं तदेवेक्ष्यं त्वयानिशम् ।।४१।।

यतो न वशगं राज्यं प्रमादिनृपतेरतः ।
त्वयाऽऽलस्यमतिक्रम्य राजकार्यं विधीयताम् ।।४२।।

अष्टादश परित्यज्य व्यसनानि महर्षिभिः ।
निन्दितानि प्रवर्तस्व वृद्धिमित्थं गमिष्यसि ।।४३।।

मैंने गर्भ की रक्षा करते हुए धर्मराज नैर्ऋत या दक्षिण पश्चिम दिशा में वर्तमान अग्नि, स्वराट, वरुण, वायु, कुबेर, शिव तथा अपने आयुध समूह वाले, अतिसुन्दर मूर्ति वाले, शिरस्त्राण या टोप से विराजित, कवच से मनोहर, अन्य देवगण भी देखे हैं।।३८-३९।।

मैंने वैकुण्ठ या स्वर्ग भवन से आये हुए श्रीवीरसिंह को (स्वप्न में) देखा है। उन्होंने इस सम्राट् चिह्न धारण करने वाले गर्भ को भावी चक्रवर्ती समझते हुए मेरे प्रथम शीलित गर्भ को देखकर यह नीतिपूर्ण वाक्य कहा 'हे गर्भ, मेरे इस राज्य को तुम सदा दिन रात देखना'।।४०-४१।।

क्योंकि कोई भी राज्य प्रमादी राजा के वश में नहीं रहता। अतः तुम आलस्य को छोड़कर राज्यकार्य करना।।४२।।

महर्षियों के द्वारा कहे गये १८ निन्दित व्यसनों को छोड़कर अपने कार्य में लगना। इससे तुम वृद्धि प्राप्त करोगे।।४३।।

विद्यावृद्धास्तपोवृद्धा नीतिवृद्धा द्विजातयः ।
भवता सन्ततं मान्या मौलाश्च नयकिङ्कराः ।।४४।।

शौर्योदार्यं च धैर्यं च गाम्भीर्यं भूज तादृशम् ।
यादृशं मम पुत्रेऽस्मिन् वीरभानौ विजित्वरे ।।४५।।

या चास्ति मत्सुते नीतिः सा चकास्तु तवाखिला ।
तयैव नृपतिः स्थेयाँल्लघीयाँश्च तया विना ।।४६।।

विष्णुभक्तिर्विधातव्या विहाय सकलं विधिम् ।
तया तुष्टे हरौ भक्त्या सुखमेव समेष्यति ।।४७।।

यादृशी श्रूयते नित्यं हरिभक्तिर्न तादृशी ।
काशीव कलिपापघ्नी परा काचित् कृतिर्मया ।।४८।।

विद्या में वृद्ध, तपस्या में वृद्ध, नीति में वृद्ध, ब्राह्मण तथा पुराने नीति को जानने वालों का तुम सदा सम्मान करना।।४४।।

तुम शौर्य, औदार्य, धैर्य, गाम्भीर्य को उसी प्रकार धारण करना जैसे सर्वदा विजयशील मेरे पुत्र वीरभानु में वर्तमान हैं।।४५।।

मेरे पुत्र के पास जो राजनीति है, वह सम्पूर्ण तुममें प्रकाशित होवे। कोई भी राजा इससे ही स्थिर रहता है तथा इसके बिना वह अत्यन्त लघु हो जाता है।।४६।।

सब विधि को छोड़कर केवल विष्णु भक्ति को सम्पादित करना। इस भक्ति से हरि के सन्तुष्ट होने पर तुम सुख प्राप्त करोगे।।४७।।

मैं सदा जिस प्रकार हरिभक्ति सुनता हूँ वैसी और कोई नहीं। यह काशी के समान कलि के पाप का विनाश करने वाली है। ऐसी विलक्षण कृति मै अन्य कोई नहीं सुनता हूँ।।४८।।

कुलद्वयविशुद्धेन गर्भस्थेन त्वयाऽधुना ।
मम पूर्वे प्रहृष्यन्ति रामेणेव दिलीपजाः ।।४९।।

आसन्नजनुषा वंशो मदीयः शोभतेतराम् ।
भवता भवतापानां कुठारेण कुलोद्वहः ।।५०।।

सूतिमासोऽपि संयातो गर्भास्माकं महोत्सवः ।
अतस्त्वया व्यथा तीर्णा गर्भवासस्य हृष्यताम् ।।५१।।

त्वज्जन्मनि हरेर्भक्तिफलं लप्स्येऽविनश्वरम् ।
गङ्गायमुनयोस्तद्वत्तनुत्यागस्य सङ्गमे ।।५२।।

सूर्यचन्द्रग्रहं वन्दे दक्षिणं नयनं हरेः ।
वामचक्षुर्जगत्येका ययोर्दृष्टिः सुखप्रदा ।।५३।।

मङ्गलं सोमसूनुं च मङ्गलं पूजयानिशम् ।
सर्वं हायास्तनयं सर्वंसहमकल्मषम् ।।५४।।

दोनों कुलों में विशुद्ध तुम गर्भस्थ पुत्र के द्वारा मेरे पूर्वज वैसे ही प्रसन्न होते हैं, जैसे राम के जन्म से दिलीप वंश के राजा प्रसन्न हुए थे।।४९।।

कुठार से भवताप का विनाशक, कुल को अमर बनाने वाला यह मेरा वंश आप शीघ्र उत्पन्न होने वाले पुत्र के द्वारा अतिशोभित हो रहा है।।५०।।

अब प्रसव का मास भी आ गया है, यह हमारा महोत्सव है। तुमने अब गर्भवास की व्यथा पार कर ली, अब तुम प्रसन्न हो।।५१।।

तुम्हारे जन्म होने पर मैंने गंगा यमुना के संगम पर शरीर त्याग के समय जैसा हरिभक्ति का फल पाया था, वैसा ही फल सदा पाऊँगा।।५२।।

मैं सूर्य तथा चन्द्र ग्रह की वन्दना करता हूँ, जिनमें से एक हरि की दाहिनी आँख है तो दूसरी बाईं आँख है तथा जिससे दृष्टि सुखप्रद है।।५३।।

मैं सोम के पुत्र तथा मंगल की पूजा के द्वारा सदा वन्दना करता हूँ, जो कि पुत्र के सहायक हैं, सब कुछ सहन करने वाले हैं तथा निष्पाप हैं।।५४।।

गुरुं हितकृतं नित्यं देवमर्त्यादिजन्मिनाम् ।
भार्गवं भृगुवंशस्य कीर्तिव्रातविवर्धनम् ।।५५।।

सौरिं छायातनूद्भूतं प्रसन्नं सर्वकामदम् ।
दुर्जयं समरे वीरैर्जगत्त्रयजिगीषुभिः ।।५६।।

राहुकेतुं ग्रहं तीव्रं सूर्यचन्द्रभयप्रदम् ।
यद्दर्शनात् प्रकम्पन्ते लोकाः सृष्टिभयप्रदात् ।।५७।।

एते सर्वग्रहश्रेष्ठा जन्मराशौ भवन्तु ते ।
तथा यथा विदध्युस्ते भवन्तं चक्रवर्तिनम् ।।५८।।

त्वामुद्यम्य मया चैतद्यदुक्तं तन्न युज्यते ।
गुणसिन्धोर्हरेर्भागः कल्किरूपेण सिध्यति ।।५९।।

मैं देव मर्त्य आदि प्राणियों के सदा हित करने वाले भार्गव की वन्दना करता हूँ, जो भृगुवंश के कीर्ति समूह को बढ़ाने वाले हैं।।५५।।

मैं सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले, प्रसन्न, छाया के गर्भ से उत्पन्न सूर्यपुत्र शनि की वन्दना करता हूँ। जो कि युद्ध में तीनों लोकों को जीतने की इच्छा करने वाले वीरों के द्वारा भी दुर्जय है।।५६।।

मैं सूर्य चन्द्र को भय प्रदान करने वाले राहु केतु जैसे तीव्र ग्रह की वन्दना करता हूँ। जिन सृष्टि को भय देने वालों को देखने से दुनिया काँपती है।।५७।।

ये सभी श्रेष्ठ ग्रह तुम्हारी जन्मराशि में होवें। वे ऐसा करें जिससे तुम चक्रवर्ती हो।।५८।।

मैंने तुम्हारे लिये जो यह कहा है, वह ठीक नहीं। क्योंकि यह कार्य तो गुणों के समुद्र हरि के अंश कल्की के द्वारा ही सिद्ध होगा।।५९।।

किन्तु स्नुषाप्रमोदाय तव सम्भाषणाय च ।
एतदुक्तं मया भूयाश्चक्रवर्ती व्रजाम्यहम् ।।६०।।

इत्याद्युक्त्वा तिरोधानं गतवन्तं शुभार्थिनम् ।
नृपं प्रहृष्टरोमाणं पुत्रतानयदर्शिनम् ।।६१।।

श्रुत्वेत्यादि प्रियावाक्यं तर्कयन्मोदते नृपः ।
चक्रवर्ती हरेर्भागात् कल्कीव भविता सुतः ।।६२।।

इत्यवोचत् प्रियां भव्यां गर्भभारश्रमङ्गताम् ।
आनन्दं बिभ्रतीं पुत्रजन्मने शुभकर्मणे ।।६३।।

प्रिये धन्योऽस्मि लोकेऽस्मिन् पूर्वपूरुषपुण्यतः ।
हरेरंशोऽस्ति गर्भस्ते जगत्त्रयहितैषिणः ।।६४।।

तवास्ति दोहदं यच्च तन्मया दीयतां वद ।
असीम प्रेम मे दत्तमन्तर्वत्न्या त्वयाऽबले ।।६५।।

पर पुत्रवधू की प्रसन्नता के लिये तथा तुमसे बात करने के लिये मैंने ऐसा कहा। तुम चक्रवर्ती हो। अब मैं जाता हूँ।।६०।।

यह सब कुछ कह कर प्रहृष्ट रोम वाले, पुत्र की नीति को देखने वाले, शुभ चाहने वाले तथा अन्त में तिरोधान हो जाने वाले राजा (वीरसिंह) के विषय में अपनी पत्नी से सुनकर राजा (वीरभानु) यह कल्पना करके प्रसन्न हुए कि हरि का अंश, कल्की के समान मेरा चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा।।६१-६२।।

तब वह राजा पुत्रजन्म रूपी शुभ कार्य के लिये गर्भ भार के श्रम को प्राप्त करने वाली अपनी सुन्दर पत्नी से यों बोला।।६३।।

प्रिये! मैं धन्य हूँ कि मेरे पूर्व पुरुषों के पुण्य से तीनों लोकों का हितैषी, हरि का अंश तुम्हारे गर्भ में आया है।।६४।।

तुम्हारा क्या दोहद (गर्भिणी की इच्छा) है जो मैं तुम्हें दूँ, बताओ, हे अबले, तुम गर्भिणी ने मुझे असीम प्रेम दिया है।।६५।।

सा पृष्टेत्यवदत्साध्वी दोहदं स्वस्य पूजितम् ।
कृशाङ्गी गर्भसम्पूर्त्या गौरीव स्वल्पभूषणा ।।६६।।

अष्टादशपुराणानां स्मृतीनां च द्विजोत्तमात् ।
जितषड्वर्गतः शुद्धाच्छ्रवणं मम सम्मतम् ।।६७।।

न यद्भूतं न यद्भावि न यद्भवति साम्प्रतम् ।
दादूंरायनृपे दृष्ट्वा तत्सर्वं विस्मयामहे ।।६८।।

अजित्वा शत्रुषड्वर्गं दादूंरायोऽपि भूपतेः ।
पदं निर्विशति श्लाध्यं कलेरेवात्र मन्दता ।।६९।।

मदीयः स पिता त्यक्तराजनीतिर्विजीयताम् ।
पुरे रत्नपुरे पौरैस्त्वत्सनाथैः प्रहृष्यताम् ।।७०।।

उससे यह पूछे जाने पर उस साध्वी ने अपना पहले से पूजित दोहद बताया। वह उस समय गर्भ बढ़ जाने से कृश अंगों वाली थी तथा गौरी के समान स्वल्प आभूषण वाली थी।।६६।।

मै काम, क्रोध आदि ६ वर्गों को जीत लेने के कारण पवित्र उत्तम ब्राह्मणों से १८ पुराण तथा स्मृतियों का श्रवण करना चाहती हूँ।।६७।।

जो न कभी हुआ, न कभी होगा, न इस समय कभी हो रहा है, ऐसी अनहोनी को दादूंराय राजा में देखकर हम सब चकित हैं।।६८।।

यह दादूंराय भी आप राजा के शत्रुओं के ६ वर्गों को जीते बिना ही आपके प्रशंसित स्थान को प्राप्त कर रहा है, यह कलि की ही मन्दता है।।६९।।

मेरे इस पिता ने राजनीति छोड़ दी है, उस पर आप विजय प्राप्त कीजिये। अपने सहायकों तथा नागरिकों के साथ रत्नपुर नगर में रहकर आनन्द मनाइये।।७०।।

अनेकोद्यानसम्पन्ने तडागशतशोभने ।
हर्म्यस्थनरनारीणां चरितैश्चित्रकारिणि ।।७१।।

परिखाभिः सतोयाभिर्निम्नाभिः सागरैरिव ।
अभ्रंलिहैर्वृते शालैः प्रांशुभिः पर्वतैरिव ।।७२।।

विषयाभोगभङ्गिम्ना राजमाने दिवानिशम् ।
नारायणकथाकान्ते स्वर्गलोक इवोत्तमे ।।७३।।

तथेत्युक्त्वा नृपस्तस्या दोहदं कर्तुमुद्यतः ।
पुराणानि स्मृतीः पुण्याः श्रावयत्येव वल्लभाम् ।।७४।।

पुरं परमशोभाढ्यं जिघृक्षुरभवत्ततः ।
ऋद्धं रत्नपुरं नाम समयं प्राप्य भूमिपः ।।७५।।

अथ तं चलितं राज्ञी राज्यचर्चानिमित्ततः ।
कथञ्चिद्गर्भभारेण सान्वगच्छत् कियत्पदम् ।।७६।।

अनेक बागीचों से सम्पन्न, सैकड़ों तालाबों से शोभित, विचित्र कार्य करने वाले महलों के नर नारियों के चरित से (आनन्दित होइये)।।७१।।

पानी वाली सागर के समान गहरी खाइयों से तथा आसमान को छूने वाले पर्वतों के समान लम्बे शाल वृक्षों से (प्रसन्न होइये)।।७२।।

दिन रात विषयों के उपभोग की विचित्रता से सुशोभित, नारायण कथा से सुन्दर, स्वर्गलोक के समान उत्तम (नगर में आनन्दित होइये)।।७३।।

ठीक है, ऐसा कहकर राजा उसकी इच्छा पूरी करने को तैयार हुआ। उसने पुण्य पुराण तथा स्मृतियों को अपनी रानी को सुनवाया।।७४।।

तब यह राजा समयानुसार परम शोभा वाले समृद्ध रत्नपुर नगर को ग्रहण करने का इच्छुक हुआ।।७५।।

तब वह रानी उस चलते हुए राजा के साथ राज्य की चर्चा के लिये गर्भ के भार के साथ कुछ कदम पीछे पीछे चली।।७६।।

राज्ञा निवारिता राज्ञी मोदयित्वा न्यवर्तत ।
गर्भप्रसवनैकट्यदर्शनात्कृतशर्मणा ।।७७।।

अथोपकारिकां गत्वा राज्यचर्चापरो नृपः ।
काले राजमती देवी गर्भप्रसवमिच्छति ।।७८।।

अभूत्पुंसवनादीनि कृत्वा कर्माणि निर्वृतः ।
भवेयं पुत्रवान् काले कस्मिन्निति स उत्सुकः ।।७९।।

सूता वै जनने सुतं नृपगुणं प्रोद्यत्प्रभामण्डलं
सोर्व्यां सद्गतिमाधवं निजकुलप्रख्याति गाण्डीविनम् ।
धर्मस्फूर्तियुधिष्ठिरं बलमितौ भीमं सुमेरुं स्थितौ
लक्ष्मीभोगपुरन्दरं रिपुबलप्रध्वंसने कल्किनम् ।।८०।।

कुलकम्

तस्मिन् जाते त्रिलोकीसुखमतिलभते षण्मुखे स्वामिनीव
स्वाराट् पृथ्वीशचम्वा रणभुवि शरणे शीर्णयोधारिसैन्ये ।

राजा के मना करने पर रानी गर्भ के प्रसव की निकटता को समझते हुए सुख के साथ प्रसन्न होकर वापस लौटी।।७७।।

बाद में राज्य की चर्चा में लगे राजा ने रानी की दाई से कहा कि राजमती देवी समयानुसार प्रसव करना चाहती है।।७८।।

पुंसवन आदि कार्यों की तैयारी करके 'मैं कब पुत्रवान् होऊँगा' इस प्रकार वह उत्सुक (राजा सोचने लगा)।।७९।।

पुनः उस रानी ने राजा के समान गुण वाले, उगते हुए प्रभामण्डल वाले, धरती में सद्गति पूर्ण माधव सदृश, अपने कुल की ख्याति करने में अर्जुन के समान, धर्म स्फूर्ति में युधिष्ठिर के समान, बल में भीम के समान, स्थिरता में सुमेरु के समान, ऐश्वर्य के उपभोग में इन्द्र के समान, शत्रुओं की सेना के विध्वंस करने में कल्की के समान पुत्र को उत्पन्न किया।।८०।।

शक्तिं भीमां दधानेऽहितबलजलधौ वाडवाग्निं स्फुरन्तीं
स्वानीकिन्येकशोभा जयविधिमहिता देवसेना प्रमोदम् ।।८१।।

गायद्गायनमञ्जुलोद्धवकृतानेकोपचारैर्युता
नृत्यन्नर्तकभासुरा सुकविता सम्मोदिपर्षन्नुता ।
उद्यद्वाद्यरवान्विता परिगतामोदै रुचिं प्रापिता
क्रीडन्तीव यदृच्छयाऽर्भकगुणैः सन्तोषिता पोषिता ।।८२।।

प्रतीहारस्ततोऽधावज्जन्म पुत्रस्य भाषितुम् ।
सिंहासनस्थं नृपतिं पुत्रजन्मसमुत्सुकम् ।।८३।।

दत्ते स्म त्यागशीलः समुदितमनसे द्वारपालाय लक्ष्मी-
मस्मै श्रुत्वा प्रशस्यं सुतजननमितां प्रीतिमासाद्य चित्ते ।

उसके जन्म होने पर षडानन (कार्तिकेय) के जन्म पर शिव पार्वती के समान तीनों लोकों के लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। अत्यधिक शक्ति धारण करने वाली, योद्धा शत्रुओं का बल नष्ट करने वाली, शत्रुओं की सेना रूपी समुद्र में वाडवाग्नि को स्फुरित करने वाली, सेनाओं में अकेली शोभा वाली, जयकार से सुपूजित, स्वर्ग पर राज्य करने वाले राजा की देवसेना ने आनन्द मनाया।।८१।।

गाए जाने वाले गीतों से मंजुल, उद्धव के विषय में बनाई गयी, अनेक विशेषणों से युक्त, नाचते हुए नर्तकों से सुशोभित, प्रसन्न होती हुई परिषद या सभा से सुपूजित, उठते हुए वाद्यों की गूँज से युक्त, चारों ओर आमोद से सुरुचिपूर्ण, नवजात शिशु के गुणों के द्वारा स्वेच्छापूर्वक खेलती हुई सी सुकविता सन्तोषित तथा सुपोषित की गई।।८२।।

तब द्वारपाल पुत्र जन्म का समाचार सुनने को समुत्सुक, सिंहासन में बैठे हुए राजा के पास पुत्र जन्म का समाचार बताने के लिये भागा।।८३।।

तब उस त्यागशील राजा ने इस प्रशंसनीय समाचार को सुनकर, पुत्र जन्म से उत्पन्न होने वाले आनन्द को अपने मन में रख कर अत्यन्त प्रसन्न

त्रिस्रोतस्तोयतुल्या स्थितिविशदतमा मानलब्धा कदाचिद् ।
या लभ्या तस्य दृष्ट्या सुभगतनुजुषश्चक्रवर्तित्वहेतोः ।८४।

तस्मादुत्थाय तूर्णं नृपतिरयमगात् पुत्रसन्दर्शनार्थम्
पश्यन् पुत्रं प्रहृष्टोऽभवदथ कुरुते जातकर्मानवद्यम् ।
श्रौतस्मार्तद्विजेन्द्रैर्द्विजकृतिनिपुणैर्लौकिकज्ञानविज्ञै-
र्युक्तं सङ्कल्पतोयं विसृजति बहुलं वित्तमुद्दिश्य चानु ।।८५।।

शब्दायन्ते स्म वाद्यानि गम्भीरं मङ्क्षु तत्क्षणे ।
ततानि सुषिराण्यस्य घनानद्धानि मन्दिरे ।।८६।।

उद्धवोद्धुरकर्माणि बन्धुमित्रादिकान्यथ ।
कुमारजननादूर्ध्वं दैवतानि यथाऽसृजन् ।।८७।।

मन वाले द्वारपाल के लिये लक्ष्मी या धन प्रदान किया। तीनों नदियों के पवित्र जल के समान अत्यन्त स्वच्छ, स्वाभिमान से प्राप्त जो दृष्टि उस दृष्टि से, कौआ चक्रवर्ती लक्षण रखने वाले, सुन्दर शरीर वाले बालक को देखने के लिये चला।।८४।।

तब वह राजा शीघ्र ही उठ कर पुत्र को देखने के लिये वहाँ गया। पुनः प्रसन्न होकर पुत्र को देखते हुए उसके अनिन्दित जातकर्म संस्कार किये। पुनः श्रौत, स्मार्त द्विजश्रेष्ठों, ब्राह्मण कार्य में निपुण लोगों, लौकिक ज्ञान को जानने वालों के साथ युक्त होकर उन्हें दक्षिणा को उद्देश्य करके खूब संकल्प जल को विसृजित किया।।८५।।

तब तुरन्त ही उसी समय वाद्यों की गम्भीर ध्वनि प्रारम्भ हो गई। मन्दिर में इसकी जालीदार खिड़कियां वाद्य की गम्भीर आवाज से भर गईं।।८६।।

पुत्र जन्म के पश्चात् बन्धु, मित्र इत्यादि ने देवताओं के समान उत्सव के अत्यन्त सम्भारपूर्ण कार्य किये।।८७।।

पृथ्वी हृष्यति निर्भरं त्यजति च ग्लानिं घृणां तद्भवे-
ऽभोगार्हामिव भूभुजां प्रणयिनीभावस्य वीराग्रणीः ।
एकोऽयं मम वल्लभः शुभकृतिर्भावी रणे दुःसहो
यस्मात् शौर्यपरायणे मम रतिः संवर्धते नित्यशः ।।८८।।

राजा पूर्वर्णमुक्तः सपदि स जयति प्रीतिराशिप्रदेन
प्रीतः सर्वं तदानीं वितरति पितृवत्तेन पुत्रोद्भवेन ।
तज्जन्माकर्ण्य शीघ्रं विविधजनपदादागतेभ्यो द्विजेभ्यः
सर्वेभ्यो याचकेभ्यः स्वजनकुलवधूकिङ्करेभ्योऽतिथिभ्यः ।।८९।।

यस्मात्स्वोपार्जितं तद्ददपि न नृपस्तृप्तिमायात्स पुत्री
तस्मात् पित्र्यं महार्घं द्रविणमयमदात्कोटिशस्तेभ्य इभ्यः ।
चातुर्वर्ण्येन लब्धो द्रविणभर इतस्तत्र काले यथैत-
द्दारिद्र्योत्पातमुक्तं सपदि तदभवत्सर्वकालं समृद्धम् ।।९०।।

उसके उत्पन्न होने पर यह पृथ्वी प्रसन्न हुई। भोग के अनर्ह अयुक्त राजाओं के लिये प्रणय भाव वाली ग्लानि तथा घृणा को लोगों ने छोड़ दिया। वीरों में अग्रणी राजा ने यह सोचा कि मेरा शुभ करने वाला अकेला प्रिय, भविष्य में रण में दुःसह यह पुत्र है। क्योंकि मुझ शौर्य परायण में इसके प्रति प्रीति निश्चय ही बढ़ती जा रही है।।८८।।

उस प्रीति राशि प्रदान करने वाले पुत्र जन्म से प्रसन्न राजा ने पिता के समान अनेक जनपद से आए ब्राह्मणों को, सभी याचकों को, अपनी कुलवधुओं के नौकरों को तथा अतिथियों को शीघ्र ही सब कुछ वितरित किया तथा इस प्रकार वह पूर्व ऋणों से मुक्त होकर विजय को प्राप्त हुआ।।८९।।

क्योंकि वह पुत्री अर्थात् पुत्रवान् राजा अपने द्वारा उपार्जित धन को देते हुए तृप्त नहीं हुआ, अतः उस धनाढ्य ने बहुमूल्य पैतृक धन को करोड़ों की संख्या में प्रदान कर दिया। चारों वर्णों के लोगों को यह धन इतना अधिक प्राप्त हुआ कि शीघ्र ही (सम्पूर्ण समाज) दरिद्रता के उत्पात से मुक्त होकर समृद्ध हो गया।।९०।।

किमन्यत्स तथा दानं ददाति स्म सुतोद्भवे ।
याचकेभ्यो यथा द्रव्यं देशे कोषे न शेषितम् ।।९१।।

श्रीमान् राम इवैष मण्डलपतिर्भावी यशो निर्मलः
स ज्ञात्वेति युनक्ति तं कृतगुणं श्रीरामचन्द्राख्यया ।
या संसारभयापहा त्रिभुवने या सर्वदा मङ्गला
या लीलास्मरणादपि त्रिजगतां कामाप्तये कल्पते ।।९२।।

स रामचन्द्रः पितृकारिताभिस्तत्पुष्टिमुद्दिश्य शुभक्रियाभिः ।
पुष्णाति वृद्धिं सकलप्रतीकैर्दिने दिने कृष्ण इवावतीर्णः ।९३।

संवर्धमानः पितरं कृतार्थं करोति तत्सङ्गमजाततोषम् ।
यथा जयन्तः पुरुहूतमङ्के क्रीडन् कुशो राममिवोत्तमश्रीः ।।९४।।

और क्या कहें, उसने पुत्र जन्म में याचकों को ऐसा दान दिया कि देश के खजाने में धन नहीं बच रहा।।९१।।

यह यश से निर्मल भावी भूमण्डल का पति श्रीमान् राम के समान है, यह जान कर उस गुणी को 'रामचन्द्र' इस नाम से युक्त किया। जो नाम संसार के भय का निवारण करने वाला है, तीनों लोकों में सदा मंगलप्रद है, तथा तीनों लोकों में जिसके नाम के लीलापूर्वक स्मरण से भी कामनाओं की पूर्ति होती है।।९२।।

यह रामचन्द्र उसकी पुष्टि को उद्देश्य करके पिता के द्वारा दी गयी शुभ क्रियाओं कें द्वारा प्रतिदिन कृष्ण के अवतार के समान वृद्धि को प्राप्त होने लगा।।९३।।

वह बढ़ता हुआ पुत्र अपने संगम से सन्तुष्टि देने वाले पिता को कृतार्थ करने लगा। जैसे इन्द्र की गोद में पुत्र जयन्त हों, अथवा राम की गोद में उत्तम शोभा वाला पुत्र कुश हो।।९४।।

कुलं पितुर्मातुरनल्पकीर्तिः स मण्डयन् राजति राजपुत्रः ।
यथैतदीयो जनको जितारिः पितामहो योग्यकृतिर्यथास्य ।।९५।।

दिने दिने तेन तथाङ्कभाजा नृपः सुखीभूय गुरुत्वमेति ।
यथा गणेशेन मृगाङ्कमौलिर्यथा कुमारेण स एव देवः ।।९६।।

स्खलद्गिरा तेन यथाऽभ्यनन्दच्छ्रीवीरभानुः करुणार्द्रचेताः ।
तथा न राज्यानुभवेन हृष्टः स्वपुण्यलब्धेन सुदुर्लभेन ।।९७।।

युग्मम्

अनेन वीज्येन विशुद्धवंश्यः कृतेन्द्रियग्रामजयेन जेता ।
सर्वेन्द्रियाणां विदुषा विपश्चिद्वीरेण वीरः सुभगेन सौम्यः ।।९८।।

यह अत्यधिक कीर्ति वाला राजपुत्र पिता माता के कुल को विभूषित करता हुआ विराजता था। जिस प्रकार इसका पिता शत्रुओं को जीतने वाला था तथा जिस प्रकार इसका पिता योग्य कृतित्व वाला था (वैसा ही यह पुत्र था)।।९५।।

प्रतिदिन गोद में रहने वाले रामचन्द्र के द्वारा यह राजा सुखी होकर गुरुत्व को प्राप्त कर रहा था। जैसे गणेश के द्वारा चन्द्रशेखर शिव अथवा जैसे कुमार कार्तिकेय के द्वारा वे ही देव शिव सुखी हुए उसी प्रकार यह राजा भी सुखी हुआ।।९६।।

करुणा से आर्द्र चित्त वाले श्री वीरभानु उसकी तोतली वाणी से जैसे प्रसन्न हुए वैसे अपने पुण्य से प्राप्त सुदुर्लभ राज्य को पाकर भी नहीं हुए थे।।९७।।

वह सम्मानित कुल से उत्पन्न होने से विशुद्ध वंश वाला, सभी इन्द्रियों को जीतने के कारण सही अर्थों में जेता, विद्वत्ता के कारण विपश्चित्, वीरता के कारण वीर, सुभग होने के कारण सौम्य, शुभ उक्ति के द्वारा सुन्दर भाषण जानने वाला, सभी प्रकार से नम्र से भी नम्र यह धन्य राजा गुरुत्व इत्यादि से अपने को दूसरा भूपति मानता था।।९८-९९।।

शुभोक्तिना सुन्दरभाषितज्ञः सर्वात्मना नम्रतरेण नम्रः ।
गुर्वादिकेभ्यो मनुते स्वमेकं द्वितीयमुर्वीपतिरेष धन्यः ।।९९।।

यत्नात्पात्येष पुत्रं सकलजनकृपं भूपचिह्नाभिरामं
वंशाब्धेः स्वस्य हेतुं निजकुलकमलद्वादशात्मप्रकाशम् ।
श्रेयः सन्तानभाजं जननयनसुखं लोककल्पद्रुमाभं
लीलासङ्गीविदग्धं प्रणयसुवचनं श्रीभृतं दानकर्णम् ।।१००।।

कुलकम्

प्रासादे योग्यतुङ्गे द्रढिमगिरिनिभे दीर्घमूले विशाले
भूकम्पासारयोगादिभिरपि नचले शिल्पिशिल्पप्रयोगात् ।
ज्योतिःशास्त्रोक्तमाने सुविहितसुधिया निर्मलाशेषभागे
मत्तं पुत्रं स रक्षन् जयति नरपतिः पुत्ररक्षाभियुक्तः ।।१०१।।

प्राकारैर्घृष्टनाकैर्विहितपरिवृतो रक्षिलक्षैः प्रदीप्तैः
खड्गं शक्तिं दधानैः परबलभयदं चर्म चापं च तूणम् ।

यह राजा बड़े प्रयत्न से सभी जनों के कृपापात्र, राजा के सुन्दर चिह्नों वाले, अपने वंश रूपी समुद्र को चलाने वाले, अपने बारहों कुल कमल का प्रकाश करने वाले, सुन्दर संतान कहे जाने के योग्य, लोगों की आँखों को सुख देने वाले, लोगों के लिये कल्पद्रुम की आभा वाले, लीला से अपने साथ चलने वालों के बीच विदग्ध, सुन्दर वचन बोलने वाले, सम्पत्ति से युक्त, दान में कर्ण के समान इस पुत्र के पालन में लग गये।।१००।।

उच्च शिखर वाले अत्यन्त दृढ़ पर्वत के सदृश, कारीगरों की कारीगरी के प्रयोग से भूकम्प इत्यादि के योग के द्वारा भी कभी न गिरने वाले, ज्योतिष शास्त्र के प्रमाण से युक्ति संगत, सावधान तथा बुद्धिमान् लोगों के द्वारा निर्मित सम्पूर्ण पवित्र भाग वाले, दीर्घ विशाल महल में पुत्र की रक्षा में लगे हुए असावधान पुत्र की रक्षा करते हुए राजा की विजय हो।।१०१।।

कोटिप्रत्यर्थियुद्धेऽप्यभिमुखगतिभिः सिंहनादातिघोरैः
शस्त्रास्त्रप्रेरणज्ञैः प्रतिभटदमनैः स्वामिकार्यानुरक्तैः ।।१०२।।

ब्रह्मोपेन्द्रमहेन्द्रसूरवरुणैश्चित्रार्पितैर्भासुरे
तत्तत्केलिविधानराजितगुणैः सर्वार्थसिद्धिप्रदैः ।
दृष्ट्या मङ्गलदायकैस्तनुभृतां तापत्रयोच्छेदकैः
संसारार्णवतारणं नुतिनतिस्मृत्यादिचर्चाकृताम् ।।१०३।।

इति सुविहितरक्षो भूपतेरौरसोऽयं
सुखसुकृतिसमाजो वर्धते वारिजाक्षः ।
सुमुखसचिवपुत्रक्रीडयासक्तचित्तः
पुरुरिव बहुतेजाः सर्वलोकानुरक्तः ।।१०४।।

स्वर्ग से प्रतिद्वन्द्विता करने वाली चारों ओर से घेरने वाली दीवाल के द्वारा, तलवार, शक्ति, चर्म, बाण, तरकस धारण करने वाले, दूसरों को भय देने वाले प्रदीप्त लाखों सैनिकों के द्वारा, करोड़ों शत्रुओं के साथ युद्ध में भी सामने गति करने वाले, सिंह नाद से अत्यन्त भीषण, अस्त्र शस्त्र चलाने के जानकार, शत्रु सैनिकों का दमन करने वाले, राजा के कार्य में लगे सैनिकों के द्वारा, चित्र में लिखित, प्रदीप्त, ब्रह्मा, उपेन्द्र, महेन्द्र, सूर्य, वरुण आदि देवताओं के द्वारा प्रसन्नता की वस्तुओं से विराजित गुणों वाले, सम्पूर्ण विषयों की सिद्धि प्रदान करने वाले, दृष्टि से ही मंगल प्रदान करने वाले, शरीरधारियों के तीनों प्रकार के दुःखों का विनाश करने वाले देवताओं के द्वारा प्रशंसा, प्रणाम, स्मृति इत्यादि की चर्चा करने वाले लोगों का संसार रूपी समुद्र से तारण सम्पन्न होवे।।१०२-१०३।।

इस प्रकार भली प्रकार रक्षा किया गया समाज के लिये सुखकारी कार्य करने वाला, कमल के समान आँखों वाला, राजा का यह पुत्र सदा बढ़े। सुन्दर मुख से युक्त पुत्र के साथ क्रीड़ा में लगे हुए चित्त वाले, पुरु के समान महातेजस्वी, सभी प्रजाओं में अनुरक्त राजा की भी वृद्धि होवे।।१०४।।

उरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्संजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गोऽभवत् सप्तमः ।।१०५।।

अच्छे लोगों का प्रिय सर्वथा यशस्वी जो वैश्य कुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का शुभ चरित्र वर्णन विषयक सप्तम सर्ग समाप्त हुआ।।१०५।।



अष्टमः सर्गः

अथ भूपतिरात्मसंभवं भवसूनुप्रतिमानतेजसम् ।
अवलोक्य मनोहराकृतिं कृतनामादिगुरुर्व्यचिन्तयत् ।।१।।

अयमध्ययनेषु योग्यतामयते साधुवयोऽस्य साम्प्रतम् ।
तदमुं निदधामि धार्मिके स्वहिते नीतिविदि क्व मन्त्रिणि ।।२।।

इति चिन्तयतो महीभुजः पुरतोऽभ्येत्य गणेशराउतः ।
प्रणनाम स नाम मन्त्रिणां गणनामेति गणेषु योऽग्रतः ।।३।।

सहसोपगतं विलोक्य तं सचिवं प्रत्ययपात्रमात्मनः ।
नृपतिः फलितं मनोरथद्रुममन्तः कलयाम्बभूव सः ।।४।।

उपशिक्षयितुं नयं गुरोः सुकुमारं सुकुमारविग्रहम् ।
हृदि जीवमिवात्मभूः स्वयं निदधौ तत्र गुणोदधौ नृपः ।।५।।

अब राजा ने नामकरण इत्यादि के पश्चात् शिव के पुत्र कार्तिकेय के समान तेज वाले, मनोहर आकृति वाले अपने पुत्र को देखकर सोचा।।१।।

यह सुन्दर उमर वाला पुत्र इस समय अध्ययन करने की योग्यता रखता है। इसे किस धार्मिक अपना हित करने वाले, नीति जानने वाले मन्त्री के संरक्षण में रखूँ।।२।।

ऐसा सोचते हुए राजा के पास गणेश राउत नामक मन्त्री ने सामने आकर प्रणाम किया। यह मन्त्रियों की गणना में सबसे पहला स्थान रखता था।।३।।

अकस्मात् आये हुए उस अपने विश्वासपात्र सचिव को देखकर राजा ने इच्छारूपी फलित वृक्ष को उसके सामने प्रकाशित किया।।४।।

उस सुकुमार शरीर वाले सुकुमार को गुरु से राजनीति सिखाने के लिये ब्रह्मा द्वारा जीव को हृदय में रखने के समान राजा ने बालक को अपने कामनारूपी समुद्र में रखा।।५।।

गुरुभिः प्रतिपादिता क्रमात् परमध्यैष्ट स रामचन्द्रमाः ।
सहितः क्षितिपालबालकैः प्रथमं शस्त्रपथोचिताः क्रियाः ।।६।।

कलयन् वचसा गुरोरभादसिभेदानयमेकविंशतिः ।
स्फुटचञ्चुपुटोद्धृतोरगभ्रमिलीलामिव पन्नगाशनः ।।७।।

इदमीयकराश्रयोद्धतौ रिपुवक्त्रेन्दुजिघृक्षया स्फुटम् ।
अभिवीक्ष्य तदाऽसिचर्मणी ध्वजराहू इति कैरतर्कि न ।।८।।

ननु यद्यपि मुष्टिबन्धनं जनुरारभ्य न वेत्ति तत्करः ।
ग्रहणे धनुषस्तथाप्यहो दृढमुष्टित्वमयादपाश्रयः ।।९।।

धनुरानमनेन विद्विषां नमितं तेन समुन्नतं शिरः ।
धृतजीवतया पुनः कृतं कतमेषामपि जीवकर्षणम् ।।१०।।

उस रामचन्द्र ने गुरुओं से पढ़ाई विद्या को क्रम से पढ़ा। वह अन्य राजा के बालकों के साथ पहले शास्त्रोचित क्रियाओं को करना सीख गया।।६।।

यह बालक गुरु के सिखाने से २१ प्रकार के तलवार के भेदों को चलाता हुआ सुशोभित हुआ। जैसे गरुड़ अपनी चोंच में रखकर अन्य सांपों को नचाने की लीला करे।।७।।

दुश्मन के शरीर को पकड़ने की स्पष्ट इच्छा से हाथ में लिये हुए इसकी तलवार तथा म्यान को देखकर, 'यह राहु, केतु है' यह किसने नहीं सोचा।।८।।

किसी व्यक्ति का हाथ जन्म से ही मुट्ठी बाँधना नहीं जानता। पर यह धनुष का सहारा लेकर धनुष पकड़ने में कसी हुई मुट्ठी वाला बन गया।।९।।

इसने अपने धनुष को झुकाकर कितने ही शत्रुओं के उन्नत सिर को झुका दिया। इस प्रकार स्वयं जीवन रखकर कितने ही लोगों के प्राणों का कर्षण किया।।१०।।

कृतहस्ततया धनुर्धरः पुरतो लक्षमवापदाहितम् ।
इषुणाऽमलपक्षशालिना प्रतिपक्षोऽस्य तदा विलक्षताम् ।।११।।

यदतुष्टिमगाद्धनुः श्रमे दृढमुष्टिर्यदधाच्च कार्मुकम् ।
अपदृष्टिरभून्न लक्ष्यतः शरवृष्टिर्न वृथाऽभवत्ततः ।।१२।।

गुरुणा श्रमनद्धविग्रहः कलयन् बाहुपरिश्रमं मुहुः ।
करिशाव इव व्यभान्महाकरिणा युद्धविनोदमावहन् ।।१३।।

व्यचलन्न निपीडितोऽप्यलं प्रतिमल्लेन स मल्लभूमिषु ।
प्रचलेदपि वारणः क्वचित्प्रतिविद्धः करिणा न केसरी ।।१४।।

स ततः श्रमशालिनिस्फुटे श्रमवारिण्यभिमृष्टचन्दने ।
सरसीरुहकेसरारुणे निजगात्रे समधारयद्रजः ।।१५।।

इस धनुर्धर ने अपने शुद्ध पंखों वाले बाण को हाथ में रखकर लाखों प्रकार के संधान किये। इससे उसके प्रतिपक्षी आश्चर्य में पड़ गये।।११।।

उसने धनुष संचालन सीखने में असन्तोष रखा। उस कसी हुई मुट्ठी वाले ने जिसकी ओर धनुष का सन्धान किया, वह लक्ष्य से कभी ओझल नहीं हुआ तथा उसकी बाणवर्षा कभी व्यर्थ नहीं हुई।।१२।।

वह श्रम से भरे हुए शरीर वाला अपने गुरु के साथ बार बार बाहुपरिश्रम करता हुआ बड़े हाथी के साथ युद्धविनोद करता हुआ हाथी के बच्चे जैसा प्रतीत हुआ।।१३।।

यह पहलवानों के अखाड़ों में दूसरे पहलवान से दबाया जाकर कभी विचलित नहीं हुआ। हाथी से दबाया गया हाथी कभी विचलित भी हो, पर सिंह कभी विचलित नहीं हो सकता।।१४।।

तब उसने श्रम से छलकती हुई, चन्दन से लिपी हुई कमल के केसर से अरुण बूँदों (पसीने) वाले शरीर में मिट्टी लगा ली।।१५।।

वपुषि श्रमभाजि केवलं रज एवास्य मुदे तदाऽभवत् ।
न घनं घनसारचन्दनं न च बालव्यजनानिलो मृदुः ।।१६।।

समभासत भास्करप्रभं वपुरस्य प्रतिमल्लवल्लभम् ।
धृतपाण्डरधूलिधूसरं कलभस्येव कलिङ्गजन्मनः ।।१७।।

गुरुगौतमशङ्कराक्षपादगुरुपातञ्जलसांख्यसम्मतीः ।
स्ववशे व्यतनोद्वशी द्विषद्विषयाणीव नरेन्द्रनन्दनः ।।१८।।

स नयं विनयादपीपवत् पवितं वाऽभ्यसनादपीपलत् ।
अपि जीवमजीजयद्धिया सुधियां संशयमप्यदीधरत् ।।१९।।

स नयेन युधिष्ठिरो बलैरपि भीमश्च यशोभिरर्जुनः ।
नकुलेन न तस्य हीनता सहदेवेन तुलामुपेयुषः ।।२०।।

इस श्रमपूर्ण शरीर में केवल मिट्टी ही उसकी प्रसन्नता का कारण बनी। घना चन्दन तथा नरम पंखे की हवा नहीं।।१६।।

उस समय उसका प्रतिमल्ल की अपेक्षा अतिमनोहर, भूरी धूल से धूसरित, सूर्यसंदृश शरीर कलिंग में उत्पन्न होने वाले हाथी के बच्चे के समान अत्यधिक प्रकाशित हुआ।।१७।।

गुरु गौतम, शंकर, अक्षपाद् गुरु तथा पातंजल एवं सांख्य के सिद्धान्त एवं विचारों को इसने अपने वश में कर लिया जैसे कोई राजपुत्र द्वेष करने वाले शत्रुओं की सम्पत्ति को अपने वश में करता है।।१८।।

उसने राजनीति को विनय से पवित्र किया तथा इस पवित्र राजनीति का अभ्यास से पालन किया। उसने अपनी बुद्धि से जीवों पर विजय पायी तथा बुद्धिमानों के संशय को भी (विचार के लिये) धारण किया।।१९।।

वह राजनीति से अर्जुन, बलों से भीम, यश से अर्जुन के समान था। सहदेव से तुल्यता प्राप्त करते हुए वह नकुल से भी कम नहीं था।।२०।।

विनयाश्रयया नयश्रिया कलया वाऽमलयाऽस्त्रशिक्षया ।
गुरुरप्यभवन्न यद्गुरुर्गुरुशुश्रूषणयाऽनवद्यया ।।२१।।

अघमन्दतमत्वमावहन् स बघेलेश्वरवंशकेतुताम् ।
हृदि मङ्गलतां मुखे कलानिधितां काव्यगुरुज्ञमित्रताम् ।।२२।।

सहसा नवविग्रहोऽभवन्महसा चापि सदाऽनवग्रहः ।
नृपमण्डलमौलिभूषणः प्रतिभापास्तसमस्तदूषणः ।।२३।।

नयशास्त्रविचारतोऽभवद्विनयस्याभ्युदयोऽस्य नित्यशः ।
नलता च तथाश्वशिक्षयाऽनलता वाप्यतुलप्रतापतः ।।२४।।

द्विपदक्रमिधावनभ्रमिप्लुतिभेदाननुभावयन् हयम् ।
स जयन्त इवान्वितासनः सुखमुच्चैःश्रवसं व्यराजत ।।२५।।

विनय पर आश्रित राजनीति की सम्पत्ति से, निर्मल अस्त्र शिक्षा की कला से, गुरु की अनिन्दित सेवा से वह गुरु न होता हुआ भी गुरु बन गया।।२१।।

वह सर्वथा निष्पापता, बघेल नरेशों के वंश के ध्वज के समान उच्चता, गम्भीर काव्य को जानने वाले से मित्रता, हृदय में मांगल्य तथा मुख में चन्द्रत्व (सौन्दर्य) को धारण करते हुए सुशोभित होता था।।२२।।

वह शीघ्र ही नवीन सुन्दर शरीर वाला, अपने तेज से अनवरोध्य या न रोका जा सकने वाला, राजाओं के सिर का अलंकार, तथा अपनी प्रतिभा से सम्पूर्ण दूषण को हटाने वाला हुआ।।२३।।

राजनय शास्त्र के विचार के द्वारा इसमें निरन्तर विनय का अभ्युदय हो रहा था। अश्व शिक्षा के द्वारा वह नलता या नल के समान प्रतिभा को तथा अतुल प्रताप से अनलता या अग्नित्व को प्राप्त कर रहा था।

विशेष- नल ने राजा ऋतुपर्ण के यहाँ घोड़े चालन का सफल कार्य किया था।।२४।।

घोड़े को दो पैरों से दौड़ने के भ्रम को पैदा करने वाली उँची उछाल के अनेक भेदों को कराता हुआ आराम से उच्चैःश्रवा नामक इन्द्र के घोड़े पर जयन्त के समान आसन लगा कर विराजित हुआ।।२५।।

जवनेन नवेन वाजिना खुरपातोद्गतरेणुराजिना ।
समरोचत मञ्जुमण्डलं रचयन् वप्रमिवाश्वभूमिषु ।।२६।।

स वशीकरणे मदच्युतां करिणां रत्नमयाङ्कुशं दधत् ।
अजयन्नखरायुधं हरिं गजशिक्षागुरुदर्शितक्रमैः ।।२७।।

मदवारणमप्यवारणं स करास्फालनतः समानयत् ।
स्ववशं कुचकुम्भमर्दनान्मदमत्तामिव योषितं प्रियः ।।२८।।

अथ चित्ररथादिवार्जुनः सकलाः साग्रहमग्रहीद् गुरोः ।
स्वरसप्तकतालमूर्च्छनाः सह नृत्येन स राजनन्दनः ।।२९।।

पतितः परिवादिनीष्वपि प्रथमाभ्यासवतोऽप्यनुक्षणम् ।
न कदाचिदमुष्य दृश्यते लघुभावेन गुरोरतिक्रमः ।।३०।।

वह नए घोड़े के अत्यन्त वेग से खुर को पटकने से उठी हुई धूल के द्वारा घुड़साल में सुन्दर मिट्टी की दीवार या टीला बनाता हुआ सुशोभित हुआ।।२६।।

उसने हाथी की शिक्षा देने वाले गुरु द्वारा दिखाई गई पद्धति से मद बहाने वाले हाथियों पर रत्न के अंकुश से उन्हें जीत लिया तथा नख ही जिनका आयुध है ऐसे सिंह को जीत लिया।।२७।।

उसने अपने हाथों के संचालन से मजबूत वारण अर्थात् हाथी को भी अवारण अर्थात् विघ्न डालने से रहित करके सीधे रास्ते पर ले आया। जैसे कोई प्रिय पति मतवाली स्त्री के स्तनकलशों का मर्दन करके उसे अपने वश में कर लेवे।।२८।।

अब उस राजनन्दन ने सातों स्वर, ताल, मूर्छना आदि सम्पूर्ण कलाओं को नृत्य के साथ अपने गुरु से साग्रह ग्रहण कर लिया। जैसे अर्जुन ने चित्ररथ से ग्रहण किया था।।२९।।

परिवादिनी अर्थात् ७ तारों की वीणा पर पहले अभ्यास कर लेने पर भी इसका कभी ओछेपन से गुरु का उल्लंघन नहीं देखा गया।।३०।।

नखघातकलस्वनाऽङ्कगा परिरभ्यैकभुजेन वल्लकी।
हृदि रागवती निवेशिता रमणी राममरीरमद् गुणैः।।३१।।

अथ सर्वकलानिधेः कलाः क्रमतः षोडश नाम बिभ्रतम् ।
सकृदेव गुरोः सकाशतः सचतुःषष्टिमपारबुद्धिमान् ।३२।

दिवसानि ययुर्यथा यथा ववृधुस्तस्य गुणास्तथा तथा ।
गिरिजा इव सिन्धुसन्मुखाः सरितः प्रावृषि नीरपूरिताः ।।३३।।

गुरुसन्निधिमात्रतो ययुः स्फुटतामस्य समस्तसंविदः।
द्युमणिद्युतिसङ्क्रमान्मणेरिव तेजांसि निसर्गसर्गतः ।।३४।।

परिपूर्णमवेक्ष्य विद्यया वयसा चापि विशेषसंयुजा ।
मुमुदे स गणेशराउतः सहसा रामकुमारमादरात्।।३५।।

नाखून के आघात से मधुर ध्वनि करने वाली, गोद में रखी हुई, एक हाथ से पकड़ी गई हृदय में राग से परिपूर्ण रमणी के समान वीणा ने रामचन्द्र को अपने गुणों से आनन्दित किया।।३१।।

चन्द्रमा की १६ कलाओं के नाम को धारण करने वाले अपार बुद्धिमान् ने एक साथ गुरुजी के पास से ६४ कलाओं को प्राप्त कर लिया।।३२।।

जैसे जैसे दिन बढ़ते गए वैसे वैसे इसके गुण भी बढ़ते गए। जैसे वर्षा में पर्वत से उत्पन्न पानी से भरी हुई नदियां समुद्र के समीप आते आंते अधिकाधिक जल वाली होती जाती हैं।।३३।।

गुरु के सान्निध्यमात्र से इसमें समस्त ज्ञान आविर्भूत होते गये। जैसे द्युमणि में प्रकाश का संसर्ग होते ही उसकी स्वाभाविक दीप्ति बाहर निकलने लगती है।।३४।।

पश्चात् विद्या तथा विशेष प्रकार की उमर के साथ संयुक्त होते हुए रामचन्द्र को आदर के साथ देख कर गणेश राउत प्रसन्न हुए।।३५।।

अथ मन्त्रिवरस्तदा शनैः सुमुहूर्ते शुभलक्षणान्वितः ।
प्रणिपत्य पुरो व्यजिज्ञपत् सममेत्येति सभातले नृपम् ।।३६।।

चतुरम्बुधिमेखलोल्लसद्वसुधामण्डलमध्यनायकः ।
अभवत्तनयो नयोक्तिभिः परिपूर्णस्तव रामचन्द्रमाः ।।३७।।

अयमिष्टदलक्ष्मणान्वितः परशत्रुघ्नपराक्रमाञ्चितः ।
श्रयते भरताभिवन्दितः स्वगुणाद्रामपदं न नामतः ।।३८।।

मनुते जमदग्निजं कृते मनुजः पङ्क्तिरथात्मजं ततः ।
वसुदेवसुतं ततः परं नृप रामं भवदङ्गजं कलौ ।।३९।।

तनयस्तव भागधेयतः समभूद्रामसुनामधेयतः ।
कलिजाल्ममलापनुत्तये कमलावल्लभ एव नापरः ।।४०।।

अब मन्त्रिवर ने शुभ मुहूर्त में शुभ लक्षण से अन्वित होकर सभातल मे राजा के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके निवेदन किया।।३६।।

चार समुद्र की मेखला रूप में विराजित भूमण्डल के मध्यनायक के रूप में आपका पुत्र रामरूपी चन्द्रमा अब राजनीति की उक्तियों से पूर्णता को प्राप्त हो गया है।।३७।।

इष्ट देने वाले चिह्न से युक्त, दूसरे शत्रुओं के विनाश के पराक्रम से परिपूर्ण, सम्पूर्ण भारत के द्वारा अभिवन्दित यह अपने गुण से राम हैं, नाम से नहीं।

श्लेष से अन्य अर्थ— लक्ष्मण से युक्त, शत्रुघ्न के पराक्रम से परिपूर्ण, भरत से अभिबन्दित रामचन्द्र के पद को यह धारण करता है।।३८।।

कृतयुग में लोगों ने जिसे जमदग्नि का पुत्र माना, पश्चात् उसे ही पंक्तिरथ अर्थात् दशरथ का पुत्र माना। उसके पश्चात् उसे ही वसुदेव का पुत्र समझा। हे राजन्! वही राम कलियुग में आपका आत्मज हुआ है।।३९।।

तुम्हारे सौभाग्य से कलि के पापरूपी मल को हटाने के लिये रामचन्द्र नाम से तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह साक्षात् कमला का प्रिय विष्णुदेव ही है, अन्य कोई नहीं।।४०।।

अधुना मधुनायकोपमस्तरुणोऽयं वरुणोर्जितोऽरिषु ।
स्वविवाहविलासयोग्यतामगमत्पुण्यविपाकतस्तव ।।४१।।

सुपरिष्कृतमात्मसम्भवं वयसा चाप्यनवद्यविद्यया ।
अवधार्य महीमहेश्वरोऽभवदानन्दथु मन्थराशयः ।।४२।।

तदनन्तरमेव भूपतिः प्रथमं भूषयति स्म भूषणैः ।
निजविग्रहतोऽवतार्य तं सचिवं धुरकन्धरं पुरः ।।४३।।

विषयानगजान्गजान्पुनः पुनरस्मै जवराजिवाजिनः ।
पृथुवत्पृथिवीपतिस्तदा समदाद्दुर्गपतित्वमादृतः ।४४।।

अभिनन्द्य गणेशराउतं सदसोऽप्याशु विसर्ज्य राजकम् ।
स विवेश वशी विशाम्पतिः सदनं सर्वसमृद्धिसेवितम् ।।४५।।

इस समय शत्रुओं के मध्य वरुण या सूर्य की ऊर्जा वाला यह मधुनायक या भ्रमर की उपमा वाला यह युवक तुम्हारे पुण्य विपाक से अपने विवाह की योग्यता प्राप्त कर चुका है।।४१।।

पृथ्वी का यह स्थिर आशय वाला राजा अपने इस पुत्र को उमर तथा अनिन्दित विद्या से परिष्कृत समझ कर आनन्दित हुआ।।४२।।

राजा ने तुरन्त ही अपने शरीर से आभूषण निकाल कर उस ऊँची गर्दन वाले मन्त्री को विभूषित कर दिया।।४३।।

उस समय उस पृथु के समान पृथ्वीपति ने आदृत होकर उसे दुर्गपतित्व तथा अनेक विषय जैसे अग + ज अर्थात् पहाड़ों में घूमने वाले गज अर्थात् हाथी, वेग के अनेक स्तर वाले घोड़े प्रदान किये।।४४।।

इस प्रकार गणेश राउत का अभिनन्दन करके सभा से राजसभासदों को शीघ्र ही बिदा करके वह स्वाधीन, प्रजाओं का राजा सभी शोभा से सम्पन्न सदन में अवस्थित हुआ।।४५।।

ततः प्रोच्चैः सौधं धरणिपतिनाऽरुह्य नचिरात्
समाहूयामात्याननुजमपि तैरेव सहितः ।
समुद्वोढुं रामं स्वसदृशकुले मन्त्रमकरोत्
स्वयं श्रीरप्यासीच्चरितुमिह युक्तोत्कलिकया ।।४६।।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्सञ्जातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते ।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गोऽत्यगादष्टमः ।।४७।।

तब शीघ्र ही भूपति ने ऊँचे महल पर चढ़कर मन्त्रियों को तथा उनके साथ अपने भाई को बुलाकर अपने सदृश कुल में रामचन्द्र का विवाह करने के लिये विचार विमर्श किया। इस उचित आतुरता से कार्य करने के लिये श्री या सम्पत्ति के सभी साधन वर्तमान थे।।४६।।

अच्छे लोगों का प्रिय सर्वथा यशस्वी जो वैश्य कुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का शुभ चरित्र वर्णन विषयक अष्टम सर्ग समाप्त हुआ।।४७।।



नवमः सर्गः।

आसागरं क्षितितलप्रभुता विनीता
सर्वा प्रजा सुखमयी गतरोगशोका ।
चिन्ता तथापि परमाऽजनि वीरभानोः
श्रीरामचन्द्रसदृशी वनिता कथं स्यात् ।।१।।

ज्योतिर्विदं धरणिदेवगणं प्रधानं देवालये कनकपीठतले निविष्टः।
आहूय मन्त्रकुशलो नृपचक्रवर्ती मन्त्रं सुतस्य सुविवाहकरञ्चकार।।२।।

विप्रोत्तमः प्रकृतिमण्डलमध्यवर्ती श्रीवीरसिंहतनयं विनयी बभाषे।
वाचस्पतिस्त्रिदशराजमिवातिहृष्टः पूर्वं विचारितमिदं सुचरैर्मयेति।।३।।

वीरश्रीवीरभानो तव नवयशसा ब्रह्मलोकादिलोके
शुक्लीभूते समन्तात्तुहिनगिरिसुता शम्भुबुद्ध्याऽऽप विष्णुम् ।

इस राजा ने सागर पर्यन्त धरती तल पर प्रभुता प्राप्त की। इससे सम्पूर्ण प्रजा सुखमयी तथा रोग और शोक से मुक्त हुई। फिर भी वीरभानु को यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि श्रीरामचन्द्र के समान स्त्री किस प्रकार प्राप्त करें।।१।।

तब विचार में कुशल चक्रवर्ती राजा ने कनकपीठ के देवालय या मन्दिर में रहने वाले धरणिदेवगण नामक मुख्य ज्योतिषी को बुलाकर पुत्र के विवाहविषयक विचार किया।।२।।

प्रकृति अर्थात् राज्य के अंग मन्त्री आदि के बीच, विनयी ब्राह्मणों में उत्तम ज्योतिषी श्री वीरसिंह के पुत्र से वैसे ही बोले जैसे बृहस्पति त्रिदशराज इन्द्र से बोले थे। मैंने अपनी गणना से अतिप्रसन्न होकर इस पर पहले ही विचार कर लिया है।।३।।

सावित्री पद्मयोनिं न सरति सहसा काचकारा धनाढ्याः
सौवर्णा भिन्नवर्णा बहुतरनयनैर्ज्ञायते वृत्रवैरी ।।४।।

स एव मान्यो नृपतेः प्रधानो मनोगतं यः सुविचार्य पूर्वम् ।
करोति कार्यं प्रणयेन विज्ञः प्रोक्तार्थकारी पशुवन्न मान्यः ।।५।।

कान्त्या कामो निकामं विनयनयमयः शस्त्रमन्त्रेषु जिष्णु-
र्विष्णुर्विश्वोपकारे पितृपदभजने रामवद्रामचन्द्रः ।
एतत्तुल्या यशोदा सकलगुणवती कीर्तिसिंहस्य पौत्री
गौराख्ये पत्तनाग्र्ये तुहिनगिरिसुतेवास्ति नान्या धरायाम् ।।६।।

यशोदया यशोदया सुरूपसच्चरित्रया ।
अरिष्टनेमिसंभवं पवित्रितं गुणैः कुलम् ।।७।।

हे वीर श्री वीरभानु! तुम्हारे नवीन यश से ब्रह्मलोक आदि लोकों में चारों ओर यश की सफेदी फैल जाने पर पार्वती ने शम्भु समझ कर विष्णु को प्राप्त कर लिया। सावित्री ब्रह्मा के पास सहसा नहीं जाती। कांच बनाने वाले धनाढ्यों की वस्तु सुवर्ण की अथवा अनेक आँखों से अनेक रंग वाली प्रतीत हुई तथा वहां इन्द्र प्रतीत हुआ।।४।।

राजा का वही बुद्धिमान् प्रधान सम्मान्य हो सकता है जो राजा के मन की बात को पहले से भली प्रकार विचार के प्रसन्नता से करता है। जो केवल कहे हुए कार्य को पशु के समान करे वह मान्य नहीं हो सकता।।५।।

रामचन्द्र सौन्दर्य में सर्वथा कामदेव के समान, विनय तथा नीति में पारंगत, शस्त्र के मन्त्र में विजेता, विश्व के उपकार में विष्णु तथा पिता के चरणों की सेवा करने में सर्वथा रामचन्द्र के समान हैं। इसके समान गौरा नामक विशिष्ट नगर में कीर्तिसिंह की पौत्री, हिमालय की पुत्री पार्वती के समान सकलगुणवती यशोदा है। धरती में अन्य कोई नहीं।।६।।

सुन्दर रूप तथा सुन्दर चरित्र वाली इस यश देने वाली यशोदा ने अरिष्टनेमि से उत्पन्न कुल को पवित्र किया है।।७।।

पुत्री माधवसिंहस्य कौमुदीव सुधानिधेः ।
वीरभानोः सुपुत्रेण युक्ता मुक्तेव राजताम् ।।८।।

सम्बन्धो मिथिलापतेर्दशरथस्यासीत्पुरा शर्मदः
पाथोधेर्मधुसूदनस्य गिरिशस्याद्रीश्वरस्योज्ज्वलः ।
त्वष्टुः कश्यपनन्दनस्य च यथा श्रीवीरभानोस्तथा
दिव्योऽयं किल कीर्तिसिंहनृपतेर्लोकोत्तरो राजते ।।९।।

सीतेव शुद्धचरिते गिरिजेव रूपे धर्मस्थितौ द्रुपदराजसुतेव साध्वी ।
सत्ये सतीव सुरसिन्धुरिव प्रभावे वंशद्वये वितनुते हि यशो यशोदा १०

कीर्तिसिंहनरपालपुरोधा वीरसिंहसुतमाह सहासः ।
पूर्वमेव तनयाय वितीर्णश्रीमुखा तव शुभं नय लग्नम् ।।११।।

माधवसिंह की यह पुत्री चन्द्रमा से चाँदनी के समान वीरभानु के पुत्र के साथ जुड़कर मोती के समान विराजित होवे।।८।।

प्राचीन काल में मिथिला के राजा का दशरथ के साथ सम्बन्ध सुख प्रदान करने वाला हुआ था। इसी प्रकार पाथोधि अर्थात् समुद्र का तथा मधुसूदन कृष्ण का, शंकर का तथा उज्ज्वल अद्रीश्वर अर्थात् पर्वत का, त्वष्टा तथा कश्यप के पुत्र का जिस प्रकार सम्बन्ध हुआ था वैसे ही श्रीवीरभानु तथा राजा कीर्तिसिंह का दिव्य लोकोत्तर सम्बन्ध विराजित होता है।।९।।

शुद्ध चरित में सीता के समान, रूप में पार्वती के समान, धर्मस्थिति में ध्रुपदराज की साध्वी पुत्री द्रौपदी के समान, सत्य में सती के समान, प्रभाव में सुरसिन्धु या गंगा के समान यह यशोदा दोनों लोकों में यश फैलाने वाली है।।१०।।

राजा कीर्तिसिंह के पुरोहित ने वीरसिंह के पुत्र वीरभानु से हंसी के मध्य कहा कि आपके पुत्र के लिये पहले ही सुन्दर मुख वाली खोज ली गई। अब आप (विवाह के) सुन्दर लगन पर विचार करें।।११।।

श्रीरामचन्द्रो रघुरामचन्द्रः पित्रोर्यशोदा च यशः प्रदेया ।
स्त्रीपुंसयोरस्तु शुभप्रसङ्गः सद्रत्नहेम्नोरिव राजमानः ।।१२।।

अरिष्टनेमिवंशेन भारद्वाजस्य सङ्गमे ।
कोऽयं सर्वजनीनः स्यात् उत्सवो गौरपत्तने ।।१३।।

हयगजरथरत्नैः पूजितोऽसौ पुरोधा
निजनगरमगच्छद्वीरभानुं निमंत्र्य ।
प्रतिगृहमथचासीन्मङ्गलंविन्ध्यशैले
शिव शिव शिवकार्यं कुर्वतां मानवानाम् ।।१४।।

राजानो राजपुत्रा रजनिकरमुखा राजमाना रुचोच्चै-
राकल्पैः कल्पिताङ्गा नरपतितिलकं व्याघ्रपाद्गोत्रमीयुः ।
वीरं श्रीवीरभानुं सकलसुखकरं सर्वतो देशदेशा-
द्देवेशं देवपाला इव शुभसमये प्रेष्ठसूनोर्विवाहे ।।१५।।

एक ओर रामचन्द्र रघुकुल में उत्पन्न श्री रामचन्द्र के सदृश हैं, दूसरी ओर माता पिता को यश देने वाली यशोदा है। यह स्त्री पुरुष का शुभ मिलन सुन्दर रत्न तथा सोने के मिलन जैसा विराजित होता है।।१२।।

अरिष्टनेमि वंश का भरद्वाज वंश के साथ मेल होने पर गौर नगर में कोई सार्वजनिक उत्सव जैसा आयोजित हुआ।।१३।।

घोड़े, हाथी, रथ तथा रत्न से सुपूजित (कीर्तिसिंह का) यह पुरोहित वीरभानु को निमन्त्रित करके अपने नगर की ओर वापस गया। इस समय विन्ध्य पर्वत में पवित्र कार्य करने वाले मनुष्यों के हर घर में मंगल आयोजित हुआ।।१४।।

(वीरभानु के) इस अत्यन्त प्रिय पुत्र के विवाह के शुभ संमय अनेक देशों से राजा, अपनी दीप्ति से सुशोभित, चन्द्र के समान मुख वाले राजपुत्र, सदा से सुभूषित अंगों वाले महाराजा इस राजश्रेष्ठ, व्याघ्रपाद् गोत्र वाले, सदा सुख देने वाले श्री वीरभानु के पास पहुंचे।।१५।।

मातङ्गानां प्रयाणे प्रचलति सहसा भूतले क्षीरसिन्धौ
भीत्या कण्ठे गृहीतो जलनिधिसुतया लब्धतोषो मुरारिः ।
पुत्रं पौत्रं सुमित्रं धनजनभवनं सर्वलोके प्रतिष्ठां
साम्राज्यं दीर्घमायुर्व्यतरदतिसुखं रामचन्द्राय हृष्टः ।।१६।।

सप्तसप्तिरथ सप्तिगतीनां शीघ्रतां प्रतिपदं निरयद्भिः ।
भारपीडितशिरा भुजगः स्यात् पस्पृशे क्षितिरितीव न वाहैः ।१७।

सेनासंभवभूरिधूलिजनितं ध्वान्तं महान्तं रुचा
योधाकल्पनिबद्धरत्नभवया सर्वं निरस्य क्षणात् ।
आमात्यैः सपुरोहितैः पुरजनैर्मित्रैश्च सम्बन्धिभि-
र्देवेशैरिव संयुतः समसरद्गोराभिधं पत्तनम् ।१८।

इस धरती पर सहसा भयंकर हाथियों के प्रयाण होने पर क्षीरसागर में समुद्र की पुत्री लक्ष्मी ने डर से सन्तोषी मुरारि का आलिंगन किया। मुरारि ने प्रसन्न होकर रामचन्द्र के लिये पुत्र, पौत्र, अच्छे मित्र, धन, जन, भवन, सभी लोकों में प्रतिष्ठा, साम्राज्य तथा दीर्घ आयु का आशीर्वाद दिया।।१६।।

सूर्य मानों इन घोड़ों के हर कदम की शीघ्रता मापता हुआ चला। शेषनाग भार से दब न जायँ, मानों इसीलिये वाहनों या गाड़ियों ने धरती का स्पर्श नहीं किया।।१७।।

सेना द्वारा उत्पन्न महान् धूल वाले पूरे मार्ग को क्षण भर में पार करने के पश्चात् इस समय गोरा नगर योद्धाओं द्वारा धारण किये गये रत्नों की दीप्ति से, पुरोहितों सहित इन्द्रसदृश मन्त्रियों से, नागरिकों, मित्रों, संबंधियों से भर गया।।१८।।

भारद्वाजारिष्टनेमिवंशजौ सङ्गतौ नृपौ ।
कुर्वन्तौ देहयोरैक्यं माधवोमाधवौ यथा ।।१९।।

आसीन्माधवसिंहस्य वीरभानुसमागमे ।
या प्रीतिः सा सहस्रास्यैः शक्या वक्तुं न मानवैः ।।२०।।

व्याघ्रपादमुनिवंशजलोकैर्गौरराजनगरे परिपूर्णे ।
गेहवासिनि जने पथिकत्वं गेहिता च पथिकाननुयाता ।।२१।।

माधवेन बहुधा कृतमानो निन्दितश्च हसितैरवरोधैः ।
वीरभानुरणुमाप न भेदं ह्रासवृद्धिरहितः खलु सिन्धुः ।।२२।।

भरद्वाज तथा अरिष्टनेमि वंश में उत्पन्न होने वाले ये दोनों राजा इस प्रकार मिले जैसे माधव (माधवसिंह) का माधव (कृष्ण) से मिलन हुआ हो।।१९।।

माधवसिंह की वीरभानु से मिलने पर जो प्रीति थी वह हजार मुख वाले मनुष्यों से भी नहीं कही जा सकती।।२०।।

व्याघ्रपाद तथा अरिष्टनेमि मुनि के वंश में उत्पन्न होने वाले लोगों से गौरराज के नगर के भर जाने पर गृहवासी लोगों में पथिकत्व आ गया तथा गृहत्व पथिकों के पीछे चला (अर्थात् सभी घर के लोग बाहर घूमने लगे तथा उन लोगों ने उन अभ्यागत लोगों को अपने अपने घरों में स्थान दे दिया)।।२१।।

माधव के द्वारा बार बार सम्मानित तथा हँसने वाली स्त्रियों के द्वारा निन्दित होने पर भी वीरभानु जरा सा भी विचलित नहीं हुए। जैसे समुद्र ह्रास तथा वृद्धि से रहित होता है।।२२।।

अर्पिता - ताडिता दानदण्डैः श्रीवीरभानुना ।
भानुनेव तमःश्रेणी भीता व्याकरणं ययौ ।।२३।।

भूदेवमङ्गलपदार्पितमङ्गलश्रीर्मध्ये चतुष्कमुपराजकुलं निविष्टः ।
साध्वीशतैः प्रमुदितैः कृतरत्नदीपः श्रीरामचन्द्र इव राजति रामचन्द्रः २४

उद्वाहकाले तनयस्य दोषो न कोपि केषामपि वीरभानोः ।
अकालमारीरहितोऽपमृत्युर्मृत्युं समीयाय परं स रोगः ।२५।।

स्वापतेयमखिलं तनयायां यौतकेष्वदित माधवसिंहः ।
केवलं परिररक्ष च राज्यं राजता हि न विना खलु राज्यम् ।।२६।।

सामन्तैर्बन्धुवर्गैः परिचरनिकरैर्योतकं यद्वितीर्णं
पूर्णोऽपि प्रीतियुक्तः क्षितिपतितिलकस्तत्समस्तं निनाय ।

श्री वीरभानु के द्वारा लोगों के लिये अर्पित श्री इस प्रकार दान रूपी डण्डे से ताडित की गयी या भगाई गई, जैसे कि सूर्य के द्वारा अन्धकार भगाया जाता है। तब वह डर कर व्याकरण के पास पहुंची (ताकि उस श्री का वीरभानु के साथ समास कर दिया जाय तथा श्रीवीरभानु बना दिया जाय!!)।।२३।।

चार स्तम्भों वाले कक्ष के मध्य राजकुल के समीप बैठे हुए अपने पितृचरणों को समर्पित मंगल शोभा वाले, सैकड़ों स्त्रियों के द्वारा आरती उतारे गये रामचन्द्र श्रीरामचन्द्र के समान विराज रहे थे।।२४।।

वीरभानु के पुत्र के विवाह के समय किसी के किसी भी पुत्र की आकस्मिक या अकाल मृत्यु नहीं हुई। अपितु वह रोग ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।।२५।।

माधवसिंह ने अपनी पुत्री के विवाह के दहेज में सम्पूर्ण धन दिया। केवल राज्य की रक्षा की। राजकार्य के बिना राज्य स्थिर नहीं रहता।।२६।।

अनेक सामन्तों ने, मित्रों ने, अनेक भृत्यों ने जो उपहार दिया उस सब को राजाधिराज ने पूरी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया। वह मंगलगृह में प्रविष्ट

मध्ये माङ्गल्यगेहं कनकमणिमये मण्डपे सन्निविष्टो
गोत्राचारप्रचारं रचयति मुदितो वंशशंसिप्रवीणैः ।। २७।।

भारद्वाजो मुनीन्द्रस्त्रिभुवनविलयस्थानजन्मैकहेतु-
र्विख्यातो व्याघ्रपादः सकलमुनिगणस्तूयमानप्रभावः ।
तद्वंशे वीरसिंहो नरपतितिलकः सिंहराजोग्रवीर्यो
यस्याग्रे ग्रामसिंहा इव रिपुनिकरा निर्ययुः कम्पमानाः ।। २८।।

यन्नाम्ना गुर्जरेशो गिरिविवरमगाद्दाक्षिणात्याः पयोधिं
पाश्चात्या भीतियुक्तास्तुहिनगिरिशिखां नौचरो गौडराजः ।
ब्रह्मण्यः सत्यसन्धः श्रुतिपथनिरतः सर्वदाने वदान्यो
वीरः श्रीवीरसिंहः सशरणनृपतिः प्राणरक्षापरोऽभूत् ।। २९।।

होकर स्वर्ण तथा मणियों से सुसज्जित होकर मण्डप में अवस्थित हुआ। वंश की प्रशंसा में प्रवीण लोगों ने प्रसन्न होकर गोत्र के वर्णन का विस्तार करते हुए स्तुति की।। २७।।

भरद्वाज नामक मुनिराज तीनों लोकों के प्रलय, स्थिति तथा जन्म के अकेले कारण थे। सम्पूर्ण मुनियों के द्वारा स्तुति किये अतुल प्रभाव वाले व्याघ्रपाद भी प्रसिद्ध थे। उन्हीं के वंश में सिंहराज के समान प्रबल पराक्रम वाला वीरसिंह नामक राजाधिराज था। जिसके आगे शत्रुसमूह कुत्तों के समान कांपते रहते थे।। २८।।

जिसके नाम से गुर्जर देश का राजा पहाड़ों की गुफा में छिप गया। दक्षिण देश के राजगण समुद्र की ओर भाग गये। पश्चिम देश के राजा हिमालय के शिखर की ओर भागे तथा गौड़ देश का राजा नाव से भागने लगा। वह वीर श्री वीरसिंह ब्राह्मणों की रक्षा करने वाला, सत्य में दृढ़, वेदों के मार्ग पर चलने वाला, सभी प्रकार के दान में उदार तथा अपनी शरण मे आये हुए राजाओं की प्राणरक्षा में तत्पर रहता था।। २९।।

तत्पुत्रस्य तव प्रयाणसमये जेतुं दिशां मण्डलं
धूलीभिः परिपूरिते त्रिभुवने दीनोऽक्षिभिर्वासवः ।
ब्रह्मा विश्वलयाकुलो रिपुवधू रिक्ता विभूषाम्बरैः
लङ्कायां च विभीषणोऽम्बुधिवृतौ निद्रा दरिद्रायते ।।३०।।

ब्रह्मण्यस्त्वं वदान्यः परबलविजयी विश्वविख्यातकीर्ति-
र्दाता भोक्ता विनेता शरणरतनरप्राणरक्षावतारः ।
हारः कण्ठे धरायाः स्वकुलसुखकरो वेदबाह्यान्तकारी
सम्बन्धेऽरिष्टनेमेः कुलमिदमभवत् युष्मदीयेन पूतम् ।।३१।।

शौर्ये गाण्डीवधन्वा पितृपदभजने लक्ष्मणस्याग्रजन्मा
धर्मे धर्मस्य सूनुः क्षितिसुरविमुखक्षत्रिये जामदग्न्यः ।

उसके पुत्र के चारों दिशाओं की विजय हेतु प्रयाण के समय तीनों भुवनों में धूल से भर जाने पर इन्द्र आँखों से दीन हुए (उन्हें कुछ दिखाई न दिया)। ब्रह्मा विश्व के प्रलय के लिये व्याकुल हो गये। शत्रुओं की वधुओं ने विभूषित वस्त्र पहनना छोड़ दिया। समुद्र से घिरी लंका में विभीषण की नींद हराम हो गयी।।३०।।

आप ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले हैं, उदार हैं, शत्रुसेना पर विजय प्राप्त करने वाले हैं, विश्व में प्रख्यात यश वाले हैं, दाता, भोक्ता, विनयाचरण कराने वाले हैं, शरण में आये हुए लोगों की प्राणरक्षा करने वाले के अवतार हैं। धरती के कण्ठ का हार हैं, अपने कुल को सुख देने वाले हैं, वेदविरोधी लोगों का अन्त करने वाले हैं। आपके सम्बन्ध से अरिष्टनेमि का यह कुल पवित्र हुआ है।।३१।।

यह कुमार रामचन्द्र वीरता में गाण्डीव धनुष को हाथ में रखने वाले (अर्जुन) हैं, पिता की सेवा करने में लक्ष्मण के बड़े भाई रामचन्द्र के समान हैं, धर्म में धर्म के पुत्र युधिष्ठिर हैं, धरती के देवताओं के विमुख क्षत्रियों के प्रति जामदग्न्य परशुराम हैं, गम्भीरता में समुद्र हैं, शरीर की सुन्दरता में

गाम्भीर्ये तोयराशिस्तनुरुचिमदनस्तीव्रतेजाः प्रतापे
योग्योऽयं यौवराज्ये विनयनयमयो रामचन्द्रः कुमारः।।३२।।

प्रयागे ते वासः कलसभवनीचाचलपतिः
प्रसंगो विप्रेन्द्रैर्निगमगणतत्त्वार्थनिपुणैः ।
सदाचारोदारः श्रुतिविहितकर्मोज्ज्वलमतिः
समीरैः संपूता वयमिह तनुस्पर्शिभिरलम्।।३३।।

विन्ध्यदुर्गनरपालपुरोधाः कीर्तिसिंहतनयं निजगाद ।
जायते यदि मुखस्य सहस्रं वक्तुमस्मि न तथापि गुणं ते ।।३४।।

विप्रेन्द्रोऽरिष्टनेमिर्निखिलमुनिगणस्तूयमानप्रभावो
धातुर्वंऽशेवतीर्णः स्ववचनविभवैः स्तम्भयामास भानुम् ।

कामदेव हैं, प्रताप में अत्यन्त तीव्र तेज वाले हैं। ये विनय तथा राजनीति से सर्वथा परिपूर्ण युवराज्य के सर्वथा योग्य हैं।।३२।।

आपका प्रयाग में निवास है, आप अगस्त्य के समुद्र के स्वामी हैं, वेदों के तत्त्वार्थ में निपुण ब्राह्मणश्रेष्ठों से आपका साथ है, सदाचारी उदार तथा वेदों में बताए गए कार्यों से उज्ज्वल मति वाले हैं, आपके शरीर को स्पर्श करने वाली वायु से हम लोग पवित्र हो गये।।३३।।

विन्ध्यदुर्ग (बान्धवढ़) के राजा के पुरोहित ने कीर्तिसिंह के पुत्र (माधवसिंह) से कहा कि यदि मेरे हजार मुख हो जायं तो भी मैं आपके गुणों को कहने में समर्थ नहीं हूँ।।३४।।

सम्पूर्ण मुनियों के द्वारा स्तुति किये गये प्रभाव वाले ब्राह्मणश्रेष्ठ अरिष्टनेमि थे। वे धाता के वंश में अवतरित अपने प्रभाव से भानु को स्तम्भित करने वाले थे। उनके वंश में कीर्तिसिंह शत्रुरूपी हरिणों के प्राणों के विनाश में अकेले सिंह हैं। उनके साथ पूर्व पुण्य के प्रभाव से होने वाला यह सम्बन्ध सदा मंगलकारी होवे।।३५।।

तद्वंशे कीर्तिसिंहो रिपुहरिणगणप्राणनाशैकसिंहः
संबन्धस्तेन जातः शिवशिवशिवदः पूर्वपुण्यप्रभावात्।।३५।।

मल्ला भिल्लाः पुलिन्दा गिरिगहनचरा अङ्गवङ्गाः कलिङ्गा
निर्भिन्नाङ्गा निरङ्गास्तव विशिखगणैः पातिता भूमिपृष्ठे।
लोका लोकेशतुल्यास्तव जनपदगाः सन्ति नीरोगशोकाः
कीर्तिस्ते कीर्तिसिंहप्रभव सुरपुरे गीयते गानविज्ञैः।३६।

ततः सुतास्नेहनिबद्धचित्तौ पदार्थदौ माधवसिंहदेवौ।
निजात्मजं वर्त्मनि रत्नसेनं संप्रेषयेतामनु तं समेतम्।।३७।।

स च स्वसुः स्नेहभरेण राज्ञा सहैव मार्गे कतिचिद्दिनानि।
कृताधिवासः समनन्दयत्तां भूपालमौलिं च परं नताङ्गः।३८।

व्यावर्तयत्तं नृपवीरभानुः कृतादरो माधवसिंहसूनुम्।
स्वसारमापृच्छ्य ततः सुशीलां निजं स भूयः पुरमाजगाम।।३९।।

आपके द्वारा मल्ल, भिल्ल, पुलिन्द, तथा अत्यन्त घने पर्वतों में रहने वाले अंग, वंग, कलिंग लोग तुम्हारे बाणों से संग्राम भूमि में अंगों को काटकर निरंग करके गिरा दिये गये। तुम्हारे जनपद में रहने वाले लोग लोकेश के समान सर्वथा नीरोग तथा शोकरहित हैं। हे कीर्तिसिंह के पुत्र, तुम्हारी कीर्ति स्वर्गलोक में गानविशारदों के द्वारा गाई जाती है।।३६।।

तब अपनी पुत्री के स्नेह से युक्त चित्त वाले, अपने सभी पदार्थ या दहेज प्रदान करने वाले माधवसिंह तथा उनकी पत्नी ने रास्ते में उसके पीछे चलने के लिये रत्नसेन को भेजा।।३७।।

उस प्रणत अंगों वाले भाई ने अपनी बहिन के स्नेह से राजा के साथ रास्ते में कुछ दिन साथ रहते हुए राजा को तथा अपनी बहिन को भी आनन्दित किया।।३८।।

तब राजा वीरभानु ने आदर के साथ माधवसिंह के पुत्र को लौटा दिया। वह अपनी सुशील बहिन से अनुमति लेकर अपने नगर की ओर लौट गया।।३९।।

नृपतिरथ समेतं सूर्यया सूर्यतुल्यं
रिपुतिमिरनिरासे स्वात्मजं रामचन्द्रम् ।
दशरथ इव रामं सीतयाऽऽनीय लोका-
न्निजनगरनिविष्टान्मोदयामास हृष्टः ॥४०॥

गोरापुरात्स्वनगरं समुपेत्य वीरः
श्रीवीरभानुरथ मन्त्रिगणैः समेतः ।
श्रीविन्ध्यशैलशिखरे कनकासनस्थः
श्रीरामचन्द्रयुवराजपदं विभेजे ॥४१॥

लक्ष्मीः स्वयं मम गृहेऽस्ति वधूर्यशोदा
पुत्रो धुरन्धरतरः खलु राजलक्ष्म्याः ।
वंशागतं सकलराज्यमिदं मदीयं
पुत्रे दधामि युवराजपदं ततोऽहम् ॥४२॥

पुनः यह राजा सूर्या के साथ शत्रुरूपी अन्धकार के निवारण में सूर्य तुल्य अपने पुत्र रामचन्द्र को वैसे ही लाए जैसे दशरथ राम को सीता के साथ लाए थे। इस प्रकार उस प्रसन्न राजा ने अपने नगर में रहने वाले लोगों को परम आनन्दित किया॥४०॥

गोपुर से अपने नगर में पहुँचने पर श्री वीरभानु ने मन्त्रियों के साथ मिलकर विन्ध्यपर्वत के शिखर पर स्वर्णासन में स्थित श्री रामचन्द्र को युवराज पद पर बिठाया॥४१॥

मेरे घर में मेरी बहू यशोदा लक्ष्मी के रूप में वर्तमान है। मेरा अत्यन्त वीर पुत्र राजलक्ष्मी के पुत्र के रूप में वर्तमान है। अतः मैं वंश से चले आ रहे अपने सम्पूर्ण राज्य को पुत्र के अधीन प्रदान करते हुए इसे मैं युवराज पद पर अभिषिक्त करता हूँ॥४२॥

आमन्त्रिताः प्रणिधिभिर्निखिला नरेन्द्राः
श्रीरामचन्द्रयुवराजपदाभिषेके ।
स्वं स्वं पुरप्रभवमुत्तमवस्तु नीत्वा
प्रत्याययुः प्रथितभूषणवस्त्रवाहाः ।।४३।।

प्रयागस्तीर्थानां भवति सकलानां निवसति-
स्ततस्तोयैस्तस्य प्रकटमभिषेकः शुभकरः ।
समीरो यस्यापि क्षितिसुरसहस्राहतिहरः
प्रभावं कश्चास्य प्रभवति हि वक्तुं मुखशतैः ।।४४।।

ततो रामचन्द्रं स्ववंशाब्धिचन्द्रं यशोदानयुक्तं यशोदानुरक्तम् ।
चकाराभिषिक्तं सुवर्णासनस्थं द्विजेन्द्रैर्यथा देवराजो जयन्तम् ।।४५।।

श्री रामचन्द्र के युवराज पद पर अभिषेक के समय राजा ने पूरी सावधानी के साथ अपने दूतों से सभी राजाओं को आमन्त्रित किया। वे सुसज्जित आभूषण तथा परिधान धारण करने वाले लोग अपने अपने नगरों में उत्पन्न उत्तम वस्तु को लेकर राजा के पास पहुंचे।।४३।।

तीर्थों में प्रयाग में सभी देवताओं का निवास है। उसके जल से राज्याभिषेक प्रकटतः शुभकर है। जहाँ धरती के हजारों देवताओं की चोट को हरण करने वाली वायु बहती है। इसके प्रभाव को सैकड़ों मुख से भी कौन कहने में समर्थ है।।४४।।

उसके पश्चात् राजा ने अपने वंशरूपी समुद्र के लिये चन्द्र सदृश यश तथा दान से युक्त, यशोदा में अनुरक्त, सोने के आसन पर अवस्थित रामचन्द्र को अभिषिक्त किया। जैसे देवराज इन्द्र ने ब्राह्मणश्रेष्ठों के द्वारा जयन्त को अभिषिक्त किया था।।४५।।

जब रामचन्द्र युवराज पद पर अभिषिक्त हुए तब यह धरती बिना जोते फल प्रदान करने वाली हो गयी थी। आवश्यकता के क्षण में मेघ उपस्थित

पदे यौवराज्ये यदा रामचन्द्रोऽभिषिक्तस्तदाऽकृष्टपच्या धराऽऽसीत्।
समायाति वाञ्छाक्षणे वारिवाहः प्रजायां न मृत्युर्न मारी न दाहः

तनयनिहितभारो वेदरक्षावतारो नियतकृतविचारो धर्मकण्ठैकहारः।
क्षितिपतिरथ गङ्गातोयसंशुद्धचित्तो विरलभवननिष्ठो ब्रह्मनिष्ठापरोऽभूत्

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्संजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गो ग्रहाख्यो गतः ।।४८।।

होते थे। उस समय घातक रोग पैदा करने वाली गर्मी नहीं थी तथा प्रजा में मृत्यु का क्लेश नहीं था।।४६।।

पुत्र पर सम्पूर्ण राज्यभार डालकर वेद रक्षा के अवतार, सदा किये कार्य पर विचार करने वाले, धर्म को ही अकेला कण्ठहार बनाने वाले राजा ने गंगा जल से विशुद्ध चित्त वाला होते हुए एकान्त भवन में अवस्थित होते हुए ब्रह्म में निष्ठा रखना प्रारम्भ किया।।४७।।

अच्छे लोगों का प्रिय सर्वथा यशस्वी जो वैश्य कुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का शुभ चरित्र वर्णन विषयक नवम सर्ग समाप्त हुआ।।४८।।



दशमः सर्गः

स यौवराज्ये जनकाभिषिक्तश्चिरं विरेजे भुवि रामचन्द्रः ।
नियोजितो देवपथे यथाऽयं चन्द्रः प्रदोषे शरदाग मेन।।१।।

अखण्डभूमण्डलभारधारी बभूव रामो वयसाऽर्भकोऽपि ।
पूर्वाचलस्थस्य तमःसमूहं भानोर्नरस्यापि जहार भानुः ।२।।

भोगाय भूमेर्मनसः सुखाय श्रीवीरभानुर्धुरमादधार ।
प्रतापतीव्रज्वलनैः परेषां तापाय रामो यदभूद्धुरीणः ।।३।।

हंसोऽम्भसः क्षीरमिव स्वराज्याज्जहार राजा मुदमादरेण ।
दधार दुःखाकरमप्युदारं भारं मुदा माल्यमिवाम्बुजस्य ।।४।।

पिता के द्वारा युवराज पद पर अभिषिक्त किया गया रामचन्द्र इस धरती में चिरकाल तक विराजता रहा। जैसे रात्रि में शरद् ऋतु के द्वारा देवपथ या आकाश में चन्द्रमा प्रतिष्ठापित किया गया हो।।१।।

रामचन्द्र उमर में बालक होने पर भी अखण्ड भूमण्डल के भार को धारण करने वाले हुए। इस सूर्य ने सूर्य के पूर्वाचल तथा मनुष्य के अन्धकार का भी विनाश किया (यह राजा मूलतः पूर्वाचल के अन्धकार का भी विनाशक था, यह अभिप्राय है। यह भावना श्लोक ६ से तुलनीय है।)।।२।।

श्री वीरभानु ने भूमि के भोग के लिये तथा मन के सुख के लिये राज्यधुरा का धारण किया। रामचन्द्र राज्याधिकारी होकर अपने प्रताप की तीव्र अग्नि से शत्रुओं के ताप के लिये हुए।।३।।

जैसे हंस जल से दूध को ग्रहण करता है, वैसे ही राजा ने अपने राज्य से सुख को ग्रहण किया। दुख देनें वाले भार को भी कमल की माला के समान आनन्द से ग्रहण किया।।४।।

यस्य प्रतापैरुपतप्तकल्पो नीरावगाहं चरमाम्बुराशेः ।
करोति नित्यं नलिनीवनीनां मुदे समुद्यन्नपि चण्डभानुः ।।५।।

यस्य प्रतापैस्तमसो विनाशादितस्ततो वासरवासनायाम् ।
प्राचीदिशो भ्रान्तिनिकृन्तनाय भानुर्नहि स्याद्यदि नोदितः स्यात् ।।६।।

कृत्वान्तरा वेदमथो कलिङ्गसीमेतरत्रामरकण्टके च ।
आदक्षिणाम्भोनिधि यः प्रतापै रामः स राजाऽभवदद्वितीयः ।।७।।

कष्टावलीं स्वेन करेण कृत्वा देदीप्यमानो विरहानलेषु ।
निवेश्यते येन जनः स चन्द्रः श्रीरामचन्द्रस्य दधाति साम्यम् ।।८।।

कमलिनी समूहों को प्रसन्न करने के लिये उदित होने वाला सूर्य सदा उसके ही प्रताप से गर्म होते हुए तालाबों के अन्तिम जल तक अवगाहन करता था।।५।।

जिसके प्रताप से अन्धकार का विनाश होने से इधर उधर दिन की बुद्धि फैल जाने पर भी यदि सूर्य का उदय न होता तो पूर्व दिशा के विषय में भ्रान्ति को हटाने के लिये कुछ न होता। (अर्थात् अन्धकार का विनाश तो रामचन्द्र के प्रताप से ही हो जाता था। फिर भी सूर्योदय केवल पूर्व दिशा की भ्रान्ति दूर करने के लिये होता था)।।६।।

कलिंग की ओर अर्थात् पूर्व की ओर दो नदियों का मध्य तथा अन्य अर्थात् पश्चिम की ओर अमरकण्टक इसकी सीमा थी। जिसके प्रताप से दक्षिण में समुद्र की सीमा थी, वह रामचन्द्र अद्वितीय राजा था।।७।।

जो विरहानल में जलने वालों के कष्टों को अपने हाथ में लेकर उन्हें (निश्चित) रखता था, वह रामचन्द्र श्री रामचन्द्र से समानता रखता है।।८।।

उसने अपने सत्पथरूपी जल से तथा तीव्र प्रताप से आग को जीत लिया था। अन्यथा आज भी उसके समक्ष यह आग कृष्णवर्त्मा के रूप में क्यों प्रकट होती।

निरन्तरं सत्पथवारिणाऽसौ तीव्रप्रतापेन जितः कृशानुः ।
किमन्यथाऽद्यापि च यत्समक्षं स कृष्णवर्त्मा भुवने विभाति ।।९।।

सुवर्णहारी कमलाकराणां दोषाकरः शीतकरः किमस्य ।
सुवर्णधाराः सततं प्रदातुः समः स रामस्य गुणाकरस्य ।।१०।।

अनन्यसामान्यगुणः परेषामथादृतः कोऽपि महाशयानाम् ।
अङ्गीकृता येन वशीकृतेव गभीरता नीर निधेरपूर्वा ।।११।

स्थैर्यं सुमेरोरचलाद्गृहीतं विभाति तस्येव महाशयस्य ।
ऐश्वर्यमस्य क्षितिवासवस्य न वासवेनापि च लभ्यते तत् ।।१२।।

रामस्य धैर्यं किमु वर्णयामो येनार्थिसार्थप्रतिमीकृतोऽयम् ।
सईदिलिस्तं शरणागतोऽभूत् स्वयं सुरत्राणमहम्मदादिः ।।१३।।

विशेष-कृष्णवर्त्मा का अर्थ काले रास्ते वाली आग है। धुएँ के कारण इसके ऊपर जाने का रास्ता काला होता है। पर कवि का कहना है कि रामचन्द्र के द्वारा आग को जीत लेने के कारण इसका रास्ता काला हो जाने से आग का नाम कृष्णवर्त्मा पड़ा है।।९।।

कमलाकरों के सुन्दर वर्ण को लाने वाला सूर्य तथा शीत या रात्रि बनाने वाला चन्द्र क्या इस सदा स्वर्ण धारा प्रदान करने वाले, गुणों के अगार राम की तुलना कर सकता है।।१०।।

दूसरों से असाधारण गुण वाला तथा सभी बड़े लोगों के द्वारा सर्वथा आदरणीय इस रामचन्द्र ने अपूर्व गम्भीरता प्राप्त की थी। जैसे समुद्र की गम्भीरता को उसने वश में कर लिया हो।।११।।

उस महाशय की स्थिरता या धैर्य सुमेरु पर्वत से लिया गया प्रतीत होता था। धरती के इस इन्द्र के ऐश्वर्य को स्वयं इन्द्र भी नहीं प्राप्त कर सकता था।।१२।।

रामचन्द्र के धैर्य को कितना बताएं, जिससे वह याचक समूह (की अभिलाषा) के तुल्य कहा जा सके। स्वयं सुरत्राण मुहम्मद सईदिलि (सुल्तान मुहम्मद सैदाली) भी उसकी शरण में आया था।।१३।।

औदार्यमेतस्य महीतलेऽस्मिन्नान्यस्य दातुः समतामुपैति।
सर्वोत्तमः श्रीजगदेकनाथः केनोपमेयो भविता जनेन ।।१४।।

दाता स सूतस्य सुतो नृपस्य दुर्योधनस्यानुचरः स कर्णः ।
एषोऽर्भकः श्रीयुतवीरभानो राजाधिराजो जगति स्वतंत्रः ।१५।

बलिर्बलीयानपि दानवारि प्रदानतोऽभून्निगडेन बद्धः ।
अयं तु नानानरपुङ्गवानां चिच्छेद बन्धान्मणिहेमदानैः ।।१६।।

किं रामचन्द्रक्षितिपे च दानं दानं दधीचौ बलिकर्णयोः किम्।
किं नाम पाथोनिलयेऽपि पाथः कूपोदरेऽपि प्रतिभाति पाथः ।।१७।।

दित्सौ नरेन्द्रे सति रामचन्द्रे वसुन्धरा नव्यवरार्थिनीयम्।
भीतोऽभवत् काञ्चनशैलराजः कपालिसख्यं कुरुते धनेशः ।।१८।।

इस धरती में इसकी उदारता किसी अन्य दाता के समान नहीं हो सकती। सर्वोत्तम श्री जगन्नाथ किस (उपमान का) उपमेय बन सकते हैं।।१४।।

सूत का पुत्र दाता कर्ण नृप दुर्योधन का अनुचर था। पर यह वीरभानु का किशोर राजाधिराज तथा जग में स्वतन्त्र था।।१५।।

बलवान् बालि भी दानवारि के प्रदान से जंजीर से बँध गया। पर इसने मणि, सुवर्ण दान के द्वारा अनेक नरपुंगवों को बन्धन से मुक्त किया।।१६।।

इस रामचन्द्र राजा में जो दानशीलता थी, क्या वह दधीचि, बलि, कर्ण में भी हो सकती है, समुद्र में जो अग्नि है, क्या वह कुएँ में भी हो सकती है।।१७।।

निरन्तर दान करने की इच्छा वाले इस राजा रामचन्द्र के होने पर वसुन्धरा इस नए वर को चाहने वाली हो गयी। स्वर्णपर्वत सुमेरु का राजा यह देख कर डरा कि यह धनपति कपाली शिव की तुल्यता करना चाहता है।।१८।।

सङ्कल्पपूर्वं नृपपुङ्गवेन द्विजाय दत्ता खलु यावती भूः।
राजाधिराजस्य महोर्जितस्य न तावती कस्यचिदस्ति भूमिः ।।१९।।

धनानि यावन्ति स याचकेभ्यो ददौ न तावन्ति रजांसि भूमेः।
स्तोमीकृतं चेत्कुतुकादशेषैः शतं शतं स्यात्कनकाचलस्य ।।२०।।

जिष्णुर्यथैको मघवा न चान्यो धनेश्वरो वैश्रवणो यथैव।
विशेषणेनानुगतं तमेव राजेतिशब्दो विदधाति नान्यम् ।।२१।।

तारान्तरालेषु यथा सुधांशुर्विहायसीव ग्रहनायकोऽयम् ।
वसुन्धराधीशधुरन्धराणां मध्ये तथा राजति रामचन्द्रः ।।२२।।

कुशेशयं नो निशि जागरूकं न वासरे राजति कैरवश्रीः।
शिवाचलोऽलोचनतामुपेतः केनोपमेयानि यशांसि राज्ञः ।२३।।

इस महान राजा ने संकल्प करके जितनी जमीन ब्राह्मणों को प्रदान की उतनी भूमि महाशक्ति वाले राजाधिराज के पास भी नहीं होगी।।१९।।

उसने याचकों को जितने धन दिये, उतने भूमि में धूलिकण नहीं हैं। यदि उस सभी धनों को कौतुकपूर्वक मिलाया जाय तो सोने के सैकड़ों सैकड़ों पहाड़ खड़े हो जायेंगे।।२०।।

जिस प्रकार जिष्णु या सूर्य एक है, इन्द्र दूसरा नहीं है, धनेश्वर कुबेर भी एक ही है। इस प्रकार जिन विशेषणों से युक्त वह राजा था, 'राजा' शब्द उसे ही राजा बनाता था, अन्य को नहीं अर्थात् उस प्रकार का दूसरा कोई राजा नहीं था।।२१।।

जिस प्रकार तारों के बीच चन्द्रमा अथवा जिस प्रकार आकाश में ग्रहनायक या सूर्य है, उसी प्रकार धरती के राजाओं के बीच रामचन्द्र विराजता था।।२२।।

जिस प्रकार रात्रि में कुश में बैठ कर जागने वाला शोभाविहीन होता है, अथवा जिस प्रकार दिन में कमलिनी शोभाविहीन हो जाती है। उसी प्रकार इस राजा के यश को (किस उपमान के द्वारा) उपमेय बनावें, यह सोच कर शिवाचल भी सौन्दर्यविहीन हो गया।।२३।।

असम्भवं जन्म जनस्य तस्य यो नार्थिभावं कलयाञ्चकार ।
समस्तभूमीपतिमौलिमौलेः श्रीरामचन्द्रावनिवासवस्य ।२४।

पयोधिराभाति यथा पयोधिरिदं विहायोऽस्ति यथा विहायः ।
दाने महत्त्वे महनीयमाने रामो यथा राजति रामचन्द्रः ।।२५।।

गान्धर्वविद्यामयदेहभाजे यस्तानसेनाय कलाविदेऽदात् ।
रागं प्रतीहप्रतितानमेतत् प्रतिध्रुपत्कोटिशशाङ्कटङ्काः ।।२६।।

अष्टौ स यामान् नयति स्म तेन रागादिना तत्समुदीरितेन ।
वर्षादिकालं गमयन् महीन्द्रः सोऽपागमत्तन्न निमेषमात्रम् ।।२७।।

हाहाहु हूतुम्बुरुनारदाद्यैः क्वचित् क्वचित् काचन भाति विद्या ।
स सर्वभाषाचतुरः समस्तविद्याधरोऽसौ विधिना व्यधायि ।।२८।।

उस व्यक्ति का जन्म ही असम्भव है जो समस्त राजाओं के शिरोभूषण, धरती के इन्द्र श्री रामचन्द्र (की कृपा का) याचक नहीं बना।।२४।।

जिस प्रकार समुद्र केवल समुद्र के समान शोभित होता है। आसमान केवल आसमान के समान ही है। उसी प्रकार सुपूजित महत्त्वपूर्ण दान के विषय में रामचन्द्र राम के समान ही सुशोभित होते हैं।।२५।।

जिसने गन्धर्व विद्या से परिपूर्ण शरीर वाले कलावित् तानसेन को प्रत्येक निकाली गई तान पर तथा प्रत्येक ध्रुपद पर चन्द्रमा की टंका वाली १ करोड़ टंका प्रदान किया।।२६।।

वह उसके द्वारा निकाले गये रागों से आठों पहर बिताता था। वह राजा उसके साथ वर्षा आदि कालों को बिताते हुए निमेषमात्र के लिये भी अलग नहीं हटा।।२७।।

हाहा, हुहू, तुम्बुरु (गन्धर्वों के नाम) तथा नारद इत्यादि किसी किसी के द्वारा कोई कोई एक विद्या प्रकाश में आई है। पर विधि ने इसे सभी भाषाओं में चतुर तथा सभी विद्याओं को धारण करने वाला बनाया था।।२८।।

भूतो भविष्यन्नपि वर्तमानो न तानसेनेन समो धरण्याम् ।
तथा प्रसिद्ध्या त्रिदिवेऽपि मन्ये नैतादृशः कोऽप्यनवद्यविद्यः २९

दुर्लङ्घ्यशैलोपरि सिन्धुमध्ये द्वीपान्तरालेऽपि बिले वने च ।
श्रीरामचारित्रसुधाभिषिक्ता यस्य ध्रुपज्जीवति सर्वकालम् ।।३०।।

तत्रैव तत्रैव वचो विलासा यत्रैव यत्रैव जनाश्चरन्ति ।
यत्रैव यत्रैव वचांसि नूनम् सा तानसेनोक्तिरुदेति तत्र ।।३१।।

यशोधनः पङ्क्तिरथावतारः श्रीवीरभानुर्मनुजेन्द्रचन्द्रः ।
इत्थं नृपं दाशरथिर्महात्मा स्वप्ने समक्षं कथयाम्बभूव ।।३२।।

जन्मव्यतीतोऽपि तदात्मजोऽभून्निरञ्जनोऽपि स्मरमञ्जुलोऽयम् ।
क्रियाविहीनोऽपि सदा विहारी श्रीरामचन्द्रो धरणीधरेन्द्रः।।३३।।

चाहे भूत हो, भविष्य या वर्तमान, इस धरती में तानसेन सदृश दूसरा कोई नहीं हुआ। उसी प्रकार प्रसिद्धि की दृष्टि से त्रिदिव या स्वर्ग में भी इस तरह का (रामचन्द्र के समान) कोई अनिन्दित विद्या वाला नहीं हुआ।।२९।।

दुर्लंघनीय पर्वत के ऊपर, अथवा समुद्र के मध्य में, या अन्य द्वीपों के मध्य या गुफा में अथवा वन में - सर्वत्र श्री रामचन्द्र के चरित्र रूपी अमृत से सनी हुई ध्रुपद हर काल में गाई जाती है।।३०।।

जहाँ जहाँ लोग घूमते हैं वहां वहां वाणी का विलास है, जहां जहां इस प्रकार वाणी का विलास है, वहां वहां तानसेन के गीत वर्तमान हैं।।३१।।

श्री वीरभानु यशोधन, यशस्वी, अवतारपुरुष, मनुष्यों में इन्द्र-चन्द्र सदृश हैं, इसी प्रकार महात्मा रामचन्द्र भी हैं, ऐसा राजा (वीरभानु) के सामने सपने में किसी ने कहा।।३२।।

वह राजश्रेष्ठ रामचन्द्र जन्म से अतीत होकर भी उनका आत्मज था। निरंजन या निष्कलंक होकर भी वह काम से प्रीति रखने वाला था। क्रियाविहीन या सदा स्थिर होकर भी सर्वत्र विहारी था। (क्योंकि वह सबकी जानकारी रखता था)।।३३।।

समस्तलोकैकपतिर्मनस्वी चिन्तामणिः सज्जनचिन्तितानाम्।
अनन्यसामान्यगुणैकसिन्धुः संसारबन्धुर्नृपरामचन्द्रः ।३४।

औदार्यशौर्यैकनिवासवासः परन्तपोऽयं गुरुभक्तियुक्तः ।
महागभीरः प्रणते दयावान् स रामचन्द्रो धरणीन्द्रचन्द्रः ।।३५।।

श्रीरामचन्द्रस्य गुणाम्बुराशेः पारं परं को मनुजः प्रयातु ।
चतुर्मुखः पञ्चमुखः षडास्यः सहस्रवक्त्रोऽपि च यत्र नालम् ।।३६।।

श्रीरामचन्द्रप्रथमावतारादयं समाभातितरांन्न द्वितीयः ।
आवर्तितं सद्दहने हिरण्यं धत्ते सुशोभा प्रथमादपीह ।।३७।।

पूर्वाचलास्ताचलचूलचुम्बी सदा समुद्यन्निखिलप्रतापः ।
यशोवशीभूतसमस्तलोको विना भवेत्को नृपरामचन्द्रम् ।।३८।।

वह मनस्वी सम्पूर्ण लोक का अकेला पालक था। सज्जन तथा विचारक लोगों के लिये सदा चिन्ता रखने वाला, असाधारण गुणों का अकेला समुद्र, संसार का मित्र राजा रामचन्द्र था।।३४।।

यह औदार्य तथा शौर्य के अकेले निवास में रहने वाला परंतप अर्थात् शत्रुओं का दमन करने वाला, गुरुओं के प्रति भक्तिपूर्ण, महागम्भीर, विनम्र लोगों के लिये दयावान् पृथ्वी के राजाओं में श्रेष्ठ चन्द्र सदृश रामचन्द्र था।।३५।।

श्री रामचन्द्र के गुणसमुद्र के पार कौन मनुष्य जा सकता है। चतुर्मुख ब्रह्मा, पंचमुख शिव, षडास्य कार्तिकेय तथा सहस्रवक्त्र ईश्वर भी उसके गुणवर्णन में समर्थ नहीं है।।३६।।

श्री रामचन्द्र के प्रथम अवतार की अपेक्षा यह द्वितीय अवतार और अधिक सुशोभित होता है। सोने के दूसरी बार अग्नि में डालने पर वह पहले से भी अधिक शोभा को धारण करता है।।३७।।

पूर्वाचल तथा अस्ताचल के चूल या शिखर में वर्तमान, सम्पूर्ण प्रताप वाला तथा सदा उदित रहने वाला, यश से समस्त लोक को वश में करने वाला रामचन्द्र के अलावा और कौन हो सकता है।।३८।।

इति जनकनिदेशाद्देशचर्चां स कुर्व-
न्नमरपरिवृढेन प्रेरितः किं जयन्तः ।
बहुविधसुखभोगैः कीर्तिनारीविनोदै-
र्दिनमिव गणरात्रं स्वप्रतापैर्निनाय ।।३९।।

अलमकृत स गङ्गावीचिवृन्दावदातै-
रतिशयितमहोभिः क्षालिताशेषलोकः ।
अपरिमितविशालं श्रीबघेलान्ववायं
गगनकुहरचन्द्रो भूधरो रामचन्द्रः ४०।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्सञ्जातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते ।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे पङ्क्त्याख्यसर्गोऽगमत् ।।४१।।

अमर प्रभु इन्द्र से प्रेरित जयन्त के समान पिता के आदेश से उसने विभिन्न देशों की चर्चाएं करते हुए, अनेक सुखों का उपभोग करते हुए, अपने प्रताप से बहुत दिन तथा इसी प्रकार श्रेष्ठ नारियों के साथ विनोद करते हुए अनेक रातें बिताईं।।३९।।

गगनरूपी गुम्बज में चन्द्र के समान उस राजा रामचंन्द्र ने अत्यन्त दीप्ति से गंगा की लहरों के द्वारा धोए गये सम्पूर्ण, अपरिमित, विशाल लोक को तथा बघेल वंश को भी अलंकृत किया।।४०।।

अच्छे लोगों का प्रिय सर्वथा यशस्वी जो वैश्य कुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्रीवीरभानु राजा का शुभ चरित वर्णन विषयक दशम् सर्ग पूर्ण हुआ।।४१।।



एकादशः सर्गः

अथ विजयसहायं पार्थिवं धर्मराज-
प्रतिममनिशधर्मोपार्जनैर्निर्जितारिम् ।
सममवनिसुरेशैः पार्थिवास्तुष्टुवुस्तं
मुकुलितकरपद्मैस्तं त्रिसन्ध्यं प्रणेमुः ।।१।।

भुजयुगलमुदारं दिग्गजास्तस्य दृष्ट्वा
झगिति धिगिति शुण्डादण्डिकां कूणयन्ति ।
भयमभजदकाण्डे मल्लवैतण्डिकानां
हृदतुलबलसीमा येन भीमादपीह ।।२।।

धनुरतिशयधावद्धाम्नि यस्मिन् धुनाने
विजयविजयवेला नो विलम्बं व्यधत्त ।

विजय ही जिसका सहायक है ऐसे, धर्मराज सदृश, निरन्तर धर्मोपार्जन से शत्रुओं को जीत लेने वाले, धरती में इन्द्रतुल्य नृपति (रामचन्द्र को) अन्य राजाओं ने मुकुलित कर कमलों से दिन की तीनों सन्धियों में अर्थात् प्रातः मध्याह्न और सायंकाल को प्रणांम किया।।१।।

विशाल हाथी इसकी उदार दोनों भुजाओं को देखकर जल्दी से अपनी सूंड रूपी दण्ड को मोड़ लेते थे। वह प्रसिद्ध मल्लों या पहलवानों से कभी भी भय नहीं खाता था। क्योंकि उसने बड़े बड़े लोगों से आकर्षक अतुल बल सीमा को प्राप्त किया था।।२।।

जिस स्थान में उसके चंचल प्रकम्पित अति तीव्र गति से भागते हुए धनुष प्रयुक्त हुए, वहां विजय की वेला आने में देर नहीं लगी। (धनुष तानते समय) भृकुटि कुटिल होने से (उसके बाण) कान तक नहीं लाए गए तथा प्रशंसित सैनिक जन समूह के द्वारा कर्ण आदि भी पास नहीं लाये जा सके अर्थात उनकी उपमा की आवश्यकता नहीं पड़ी।।३।।

भ्रुकुटिकुटिलभावान्नाभ्यनीयन्त कर्णा-
वधिसुभटजनौघैस्तत्र कर्णादयोऽपि ।।३।।

तुरगमुरगनाथप्रौढदोर्दण्डभीमो
धरणिरमणरामो नित्यमारोहति स्म।
शिव शिव सहदेवस्याग्रजन्मा तदानीं
नियतमवरुरोह प्राणभावं मनस्तः ।।४।।

हरिहरिहरिदीशप्रौढतेजोविशेषा-
दयमिह सहदेवः किं जनौघैरतर्कि ।
गुरुगुणफणिनाथस्फीतपाण्डित्यभूमा
भवति किमु स ए वेत्युग्रविद्यैरशङ्कि ।।५।।

अनलविषमदैन्यश्येनसंपातभीता-
न्निजभुवि परिरक्षन् विप्रपारावतौघान्।
शिबिरिव शिवसेवां शीलयन् शीलराशिः
शिशिरहृदनुकम्पा सागरत्वेऽभ्यषेचि ।।६।।

शेषनाग के प्रौढ़ भुजदण्ड (फन) के समान भयंकर इस धरती में रमण करने वाला रामचन्द्र सदा घोड़े की सवारी करता था। इस प्रकार वह सहदेव का बड़ा भाई नकुल सदृश होकर घुड़सवारी में मन लगाता रहा।।४।।

दिशाओं के ईश्वर = सूर्य के समान अत्यन्त प्रौढ़ तेज के कारण लोगों ने सोचा कि क्या यह सहदेव है। अत्यन्त प्रवृद्ध गुणों वाले फणिनाथ या शेषनाग के समान विस्तृत पाण्डित्य के कारण विद्वानों ने सोचा कि क्या यह वही तो नहीं है।।५।।

अग्नि या शक्ति की विषमता तथा दीनता की दशा में बाजरूपी शत्रुओं से डरे हुए ब्राह्मणरूपी कबूतर की निजी भूमि की रक्षा करते हुए उस चरित्रवान् ने शिबि के समान शिव की सेवा करते हुए सागर की तरह (लोगों पर) शीतल हृदय की अनुकम्पा सींची।।६।।

विषयततिरवश्या वश्यतामिन्द्रियाणां
व्रजति न विषयाणां सेवकानीन्द्रियाणि।
विचलति हि यदात्मा तस्य रामस्य सङ्गात्
ध्रुवमुपनिषदर्थः संभवेदप्रमाणम् ।।७।।

तदपि निजवयस्यैः कौतुकालोकनाय
प्रथममथ विनीतैरेव विज्ञापितः सन् ।
ऋतुषु रुचिरलीलाखेटकश्रेणिकाया-
मधृत हृदयमुच्चैः सम्भृतानन्दकन्दः ।।८।।

तदनु मदनलीलाचापनिर्घोषभाजि
प्रतिविपिनमलीनां गुञ्जितान्याविरासन् ।
रसिकनृपतिचेतः प्रीतये प्रेषितानां
कुसुमसमयमित्रेणेव तद्गा यनानाम् ।।९।।

(रामचन्द्र के संसर्ग से) लौकिक विषय निश्चित ही इन्द्रियों के वश में अर्थात् इन्द्रियों के अधीन हो जाते थे। इन्द्रियां विषयों की सेवक नहीं रह जाती थीं। पर जब कोई उस रामचन्द्र के संग से विचलित हो जाता था तब (जितेन्द्रियता का) यह उपनिषदर्थ अप्रामाणिक हो जाता था।।७।।

तो भी अपने निजी मित्रों के साथ कौतुक देखने की इच्छा से पहले ही बड़े लोगों से आज्ञा प्राप्त करके उचित ऋतुओं में सुन्दर लीलापूर्ण शिकार कार्यों में उस आनन्दपूर्ण रामचन्द्र ने अपना मन लगाया।।८।।

उस समय प्रत्येक जंगल में कामदेव की लीला करने वाले उनके बाण को प्रकट करने वाली भौंरों की गूंजें प्रकट हुई। (ऐसा लगा कि) रसिक नृपति के चित्त की प्रीति के लिये कुसुमसमय या वसन्त के मित्र कामदेव ने ही उन भौंरों के गीतों को वहां भेजा है।।९।।

मधुकरनिकुरुम्बश्रीयुजां मञ्जरीणां
मधुरसमदमत्ताः कोकिलप्रेयसीनाम् ।
उपवनमनुवेलं घोषयन्तः कुहूभिः
कलमधुररवाभिस्तां पिकाः प्रीणयन्ति ।।१०।।

इति सकलवसन्तश्रीरसाविष्टचित्ता
नृपतिसुतमुपेत्यं प्रीतिभाजो वयस्याः ।
मृगयुकुलमुदञ्चच्चापबाणास्त्रजालं
शितिवसनशरीरं दर्शयामासुरुच्चैः ।।११।।

अयमिह शशमांसोपायनं बिभ्रदेष
प्रगुणहरिणकोरुव्यग्रहस्तः स पश्चात् ।
वनतरुणमधूकान्मञ्जरीं मूर्ध्नि कृत्वा
कथयति मृगयायाः कौतुकं काननस्य ।।१२।।

भौंरे के निकुरुम्ब अर्थात् समूह के शोभा वाली मंजरियों के मधु रस से मतवाले कोयल जंगल के हर स्थान तथा हर समय पर अपनी मधुर कूक का शब्द करते हुए उन मादा कोयल को प्रसन्न करते हैं।।१०।।

इस दशा में सम्पूर्ण वसन्त की शोभा से भरे पूरे चित्त वाले उसके प्रेमी मित्र उस राजा के पुत्र के पास पहुंचे तथा उसे अपने शिकारी रूप को तथा धनुष बाण तथा अनेक अस्त्रों को तथा अपने बलराम जैसे शरीर को राजा को दिखाया।।११।।

यह खरगोश के मांस को उपहार के रूप में रखे हुए तथा इसके पीछे हरिण को पकड़ने के लिये अत्यन्त व्यग्र हाथ वाला शिकारी तथा दूसरी ओर वन के विशाल मधूक-महुआ की मंजरी को सिर पर उठाये अन्य जानवर- ये सब मानों जंगल के शिकार के कौतुक को प्रकट कर रहे हैं।।१२।।

प्रियतमहरिणीनां शृङ्गकण्डूविनोदैः
स्वपिति हरिणयूथं सर्वतः शाद्वलेषु।
शशकशिशुभिरन्तस्तीर्णमाकीर्णमास्ते
रुरुभिरपि वनान्तः पल्वलान्तर्विहारैः ।।१३।।

श्रुतवति युवराजे तस्य वाचः पुरस्ता-
द्वदितवति वयस्यानेन सज्जीभवामः ।
अथ नृपतिकुमारैः प्रेषितानां जनानां
प्रतिसदनमभूद्धीरङ्गरीरेङ्गरीति ।।१४।।

तदनु तुरगपालैस्तूर्णमानीयमानाः
स्फुरितखुरपुटाग्राः स्वर्णपाल्याणवन्तः ।
सपदि बधिरयन्तो विश्वतो हेषयैव
प्रययुरतिगरुत्मत्स्पर्धयैराशुवाहाः ।।१५।।

अत्यन्त प्रिय हिरणियों के सींग के द्वारा की गयी खुजली के विनोद करते हुए हिरनों का झुण्ड सब जगह घास के मैदान में लेटा हुआ है। खरगोश के बच्चे भी सर्वत्र फैले हुए हैं तथा वन के मध्य या वृक्षों के पल्लवों में विहार करने वाले रुरु या विशेष प्रकार के हरिणों से वन परिव्याप्त है।।१३।।

युवराज द्वारा मित्र की बात सुनने पर तथा उनके यह कहने पर कि हे मित्र! हम तैयार होते हैं। तब राजपुत्रों के द्वारा भेजे गये लोगों के बीच यह चर्चा हर जगह फैल गई।।१४।।

उसके पश्चात् घुड़सवारों के द्वारा शीघ्र ही तीखे खुरों के अग्रभाग वाले तथा सोने की पलानी वाले घोड़े लाये गये। अपनी हिनहिनाहट से ही विश्व को बधिर बना देने वाले मानों गरुत्मत् अर्थात् गरुड़ से स्पर्धा करने वाले ये तीव्रगामी घोड़े (राजा के पास) पहुँचे।।१५।।

मदकलमदिराक्षीमन्दयानः समन्ता-
च्चपलतुरगवेगस्पर्धिजङ्घालजङ्घः ।
अतिमसृणितपृष्ठः स्फीतपट्टाम्बरौघैः
प्रबलकरटिसङ्घोऽवेदि घण्टारवेण ।।१६।।

धनुरसिविशिखाद्यैरायुधैर्व्यग्रहस्ता
वनभुवमभियान्तः पत्तयस्तन्निदेशात् ।
नयनविषयमागाद्यावता वन्यजन्तुः
सरिदपरतटान्ते तावदध्यास्य तस्थुः ।।१७।।

तनुवसनमनल्पश्यामलं संवसान
स्तरुणकमललक्ष्मा लक्षहल्लोचनश्रीः ।
हरिपतिमधिरुढो बद्धगोधाङ्गुलित्रः
प्रसरति नवभानौ वीरभानोः कुमारः ।।१८।।

मदिरा से मतवाली आँखों वाली महिलाओं के साथ धीमे चलने वाला होकर भी, चंचल घोड़ों के वेग से स्पर्धा करने वाली शीघ्रगामी जंघाओं वाले उस राजकुमार ने विस्तृत फैले हुए कपड़े, दरी इत्यादि के अत्यन्त चिकने पृष्ठ पर खड़े होकर घण्टा के शब्द से प्रबल हाथियों के झुण्ड के आगमन को जाना।।१६।।

वन्य जन्तु नयनगोचर हो जांय अर्थात् आँखों से दिख जायं इसके लिये जंगल में घूमने वाले धनुष तलवार आदि से युक्त हाथों वाले सैनिक राजा के आदेश से नदी के उस पार मचान बिछा कर बैठ गये।।१७।।

हल्के श्याम रंग के हल्के वस्त्र पहने हुए नवीन कमल के चिह्न वाला, लाखों लोगों के हृदय तथा नेत्रों की शोभा वाला वह वीरभानु का पुत्र चमड़े की पट्टी का दस्ताना धारण करके तथा एक विशाल घोड़े पर सवार होकर नवप्रभात में (शिकार के लिये) चल दिया।।१८।।

अथ तुरगकदम्ब ह्रेषया मत्तदन्ति
प्रलयजलदगर्जाघोरघण्टानिनादैः ।
रथवलयितसिञ्झत्किङ्किणीनां रवेण
क्षणमिति पुरसिन्धौ कोऽपि कोलाहलोऽभूत् ।।१९।।

नगरविविधरथ्यामर्दिसम्मर्दमध्ये
नृपसुतवदनेन्दोः कान्तिपीयूषसारम् ।
तदनु किरणमामालासङ्गिभिर्लोचनैः स्वैः
पपुरधिगतपुण्यैर्जालमार्गे तरुण्यः ।।२०।।

प्रविततनगरान्ताल्लङ्घितस्तोकवर्त्मा
तदनु च सुकवीनां वर्णनाकर्णनेन ।
जयति तव मुखेन्दुः कञ्चुकश्याममेघो
परिसमुदित इत्थं सस्मितोऽगाद्वनं सः ।।२१।।

इस समय घोड़ों के हिनहिनाने से तथा मतवाले हाथियों के प्रलयकालीन मेघ जैसे गरज वाले भयंकर घण्टा की आवाज से तथा रथों में लगी हुई बजती हुई घुंघरुओं की ध्वनि से उस नगररूपी समुद्र में एक महान् विलक्षण कोलाहल उत्पन्न हो गया।।१९।।

नगर में अनेक भीड़ भाड़ वाली गलियों में स्थित स्त्रियों ने जालीदार झरोखों से उसकी किरणों से जुड़ी आँखों से राजकुमार के मुखचन्द्र के कान्तिरूपी अमृततत्त्व को प्राप्त किया।।२०।।

दूर तक फैले हुए नगर से आये थोड़ा रास्ता पार करने पर सुन्दर कवियों के ऐसे वर्णन को सुनकर कि 'तुम्हारा केंचुल के समान श्याम मेघ जैसा मुखचन्द्र विजय को प्राप्त कर रहा है' वह प्रसन्न होते हुए वन की ओर गया।।२१।।

नदी के रेतीले तट पर बैठ कर तथा पुनः वहां से उठ कर अपने से बड़े लोगों को प्रणाम करके आदर की दृष्टि से देख कर उसने कहा - कहिये,

तटभुवि सिकतिन्यान्याः संनिषण्णोत्थितस्सः
प्रणमितशिरसः स्वान् साधु सम्भावदृष्ट्या ।
वदत विपिनवार्तामध्वना केन यामः
क्व पुनरिह मृगास्ते वाचमित्यूचिवान् सः ।।२२।।

स विनयमुपसृत्य प्राणतुल्याः प्रवीणा
नृपकुलपरिपाटीकोविदाः शुद्धवंशाः ।
वचनकसहदेवौ भीरनामाप्यभानी
सहृदयहरिकर्णः पञ्चसञ्चारमूचुः ।।२३।।

नृपतितिलकवामेनाश्ववाराः प्रयान्तु
त्वरितमिह वनानामेव रुन्धन्तु मार्गान् ।
निखिलजननिकायैः सार्धमेते समन्तात्
स्वगणिभिरभिवीता वागुरां वेष्टयन्तु ।२४।।

प्रभुरित इति एतद्दक्षिणेन स्रवन्त्या-
स्तटगिरिवनराजिच्छायमावतां द्राक् ।

हमें जंगल का समाचार बताइये हम किस रास्ते से चलें, जंगली जानवर कहां मिलेंगे।।२२।।

उसके विनयपूर्वक पहुंचने के पश्चात् प्राणतुल्य प्रवीण राजकुल की परम्परा को भली प्रकार जानने वाले शुद्ध वंश वाले वचंनक, सहदेव, भीरनाम, अभानी तथा सहृदय हरिकर्ण इन ५ लोगों ने रास्ते का निर्देश किया।।२३।।

राजश्रेष्ठ के बाईं ओर से घुड़सवार जाएं तथा शीघ्र ही जंगल के रास्तों को रोक लें। ये लोग सभी लोगों के साथ जाकर खटकेदार पिंजरे को बिछा लेवें।।२४।।

इधर प्रभु हैं, तथा नदी के तटवर्ती पर्वत तथा जंगल के वृक्षों की छाया वाले स्थान की दाहिनी ओर नगर की दिशा में हाथी, मौनियों के घण्टा समूह तथा अन्यत्र वनभूमि में रुकावट के साथ रथ शीघ्र खड़ें हों।।२५।।

नगरदिशि करीन्द्रा मौनिघण्टाकलापाः
क्वचिदपि वनभूमौ स्यन्दनाः सावरोधाः ।।२५।।

इति निगदितमात्रे तद् दृशैवाज्ञया तै-
र्गहनमखिलमार्गेष्वावृतं तत्तथैव ।
भुजपरिघनिरुद्धे जन्तुजाले स कोपात्
सुरभिरिपुरिति द्राग् जघ्निवान् व्याघ्रमुच्चैः ।।२६।।

विशिखमथ विभिद्य प्रौढशार्दूलकायं
फणिपुरमुपयातं वीक्ष्य लीलावराहः ।
निशितविकटदंष्ट्राकोटिनिर्भिन्नभूमिः
प्रहरणभयभीतो विस्मितोऽप्यास भूयः ।।२७।।

हरिणकहरिणीनां कृष्णसाराग्रगाणां
कुलमयमुपनीयावासयद्वासदूरे ।
मृगशिशुनयनानां लोचनालम्भिशोभं
मुदमगमदजाराहूतिनाखेटकेन ।।२८।।

आँखों के संकेत के द्वारा ऐसा कहते ही सभी घने रास्तों पर उन (रथ आदि ने) रुकावट खड़ी कर दी। तब राजा क्रोध से हाथ में परिघ या लोहे की गदा से रोके गये जन्तुओं पर टूट पड़ा तथा व्यांघ्र को बढ़िया शत्रु समझते हुए उसे मार गिराया।।२६।।

तब प्रौढ़ शार्दूल या अन्य बाघ के सिर को काट कर उसे नागलोक में पहुंचाया गया देखकर चंचल वराह या सूअर अपने तीखे तथा भयंकर दांतों से जमीन खोदते हुए प्रहार के डर से डर कर तथा विस्मय के साथ वहां बैठा।।२७।।

मुख्यतः कृष्णसार जाति वाले हिरणों के बच्चे तथा हिरणियों के समूह को पकड़ कर अपने स्थान से दूर बैठा दिया। हिरनों के बच्चे की आँखों की शोभा को प्राप्त किया तथा इस प्रकार शिकार से प्रसन्नता प्राप्त की।।२८।।

अभिमुखमनिलौघैर्वाति वातप्रमायां (प्रमीयां)
सरणिमनुसृतानां वाक्यमाकर्ण्य तेषाम् ।
उषसि सह कुमारैः काननं प्राप्य रामः
कलयति कुतुकेनारोहणं खेटकं सः ।।२९।।

सुरभिसमयलीलासौख्यमित्थं समेत्य
त्यजति किसलयौघे प्रौढजिङ्गायरागः ।
विचकिलमुकुलानामुद्गमे मज्जनाय
स्पृहयति सहसाऽगात् स्पष्टतामुष्णकालम् ।।३०।।

व्रजति जरठभावं मण्डले चण्डभानो-
र्ग्लपितमृदुतनूनां शम्बराणां निहन्ता ।
निबिडयति डकारीनामवौकर्णहांका-
प्रभृतिभिरतिमोदं तत्र गाडापठारैः ।।३१।।

सामने हवा का बवण्डर आने पर साथ चलने वाले कुमारों की बातचीत सुनते हुए प्रातःकाल में ही उन कुमारों के साथ जंगल में पहुंचकर वह कौतुक से शिकार तथा पर्वतारोहण करता था।।२९।।

प्रातःकाल में इस प्रकार लीला तथा सुख प्राप्त करके वह प्रौढ़ विजय करने वाला राजा किसलय समूह के बीच इकट्ठा होकर गीतों की राग छेड़ता था। विचकिल अर्थात् एक प्रकार चमेली के मुकुल के उद्गम होने पर उष्णकाल का स्पष्ट अनुभव करके (किसी तालाब आदि में) स्नान की इच्छा करता था।।३०।।

प्रचण्ड सूर्य के कठोरता प्राप्त करने पर थके तथा कोमल शरीर वाले शम्बर अर्थात् एक प्रकार के मृग को मारने वाला राजा डकारी अर्थात् एक प्रकार की बांसुरी की आवाज से लगाए गए हांका इत्यादि से गाडा नामक पठार में अति प्रसन्न होता था।।३१।।

मधुरसरसगीतैर्लुब्धकैर्लोभ्यमाना
नरपतिमुखचन्द्रालोकनानन्दभाजः ।
मदमुदितमृगीणामङ्गसङ्गस्मरान्धाः
न निधनमुपजग्मुः सायकात्तस्य यूनः ॥३२॥

नवजलधरधीरध्वानमाकर्ण्य केकी
नटति शिखरिशृङ्गे वीक्ष्य कौतूहलं तत्।
शबरपतिरवादीत् क्षोणिभर्तुः पुरस्ता-
दुपहृतनवगन्धत्कदम्बानिलोऽपि ॥३३॥

अथ झगिति समन्ताद्वारिदे वारिधाराः
सृजति स युवराजश्चित्रकाखेटकाय ।
प्रचलित इति मत्वा निर्गतैः सारमेयैः
सह सरिति वितेनुश्चित्रकाश्चित्रमेव ॥३४॥

शिकारियों के मधुर रस वाले गीतों से लुभाए जाने वाले, राजा के दर्शन के आनन्द के पात्र, मद से मतवाली तथा प्रसन्न हिरणियों के संग से उत्पन्न काम से अन्धे हिरण उसके बाण से मृत्यु को प्राप्त नहीं करते थे॥३२॥

नवीन मेघ की गम्भीर ध्वनि को सुनकर मोर पर्वतशिखर पर नाच रहा है, इस कौतूहल को देखने पर जंगल की सोंधी गन्ध को तथा कदम्ब वृक्ष की वायु को प्राप्त करके शबरपति ने भूपति के पास जाकर बात किया॥३३॥

उस समय चारों ओर झट से मेघ के जल बरसाने पर वह युवराज बाहर चलने वाले कुत्तों के साथ चित्रक अर्थात् सामान्य शेर के शिकार के लिये चला। यह देखकर वे चित्रक नदी के तटवर्ती प्रदेश में विचित्र ढंग से भागने लगे॥३४॥

मदकलकलहंसी मञ्जुमञ्जीरसिञ्जा-
रवमधुरिममुह्यन्मानसाः के न हंसाः ।
विकचकमलकोषामोदनिःश्वासवाता
शरदभिनवकान्तारामसौख्यान्यपुष्णात् ।।३५।।

घनवनतरुगुच्छच्छायमाश्रित्य घात-
प्रगुणितघटियाराखेटकं खेटकेषु ।
ज्वलति रुचिरदीपे घण्टया नीतिजन्तून्
प्रहरति गुरुसत्वः क्रूरसत्त्वस्तदैव ।।३६।।

अथ मलयजपङ्कप्रीतिशून्याः सहेलं
वपुषि कृतदुकूलाः सावहित्था निशायाम् ।
प्रियतमभुजमालाकाङ्क्षिणीरुत्पलाक्षी
युवभिरभिनिरीक्ष्यऽलक्षि हेमन्तकालः ।।३७।।

उदितवति दिनेशे सावकाशे दिनान्ते मृगयति
मयगारीसंज्ञकाखेटकेषु ।

उस समय मतवाली आवाज वाली कलहंसी तथा सुन्दर नुपूरों की झंकार की मधुरता से मोहित मन वाले तथा खिले हुए कमलों के आमोदपूर्ण विश्वास क़ी वायु वाले कौन से कलहंसों ने शरत्कालीन नये सुन्दर आराम या बगीचे के सुख को प्राप्त नहीं किया।।३५।।

घने जंगल के वृक्षगुच्छों की छाया का सहारा लेकर सन्ध्या में दीप जल जाने पर विशाल तथा भयंकर शरीर वाला वह शिकार में जोरों से आवाज करते हुए उन जन्तुओं पर प्रहार करता था।।३६।।

इसके पश्चात् (हेमन्त आने पर) मलयज चन्दन के पराग की प्रीति से शून्य होकर लोग रात्रि में शरीर में दुकूल ओढ़ कर भावगोपन करने लगे। तब 'प्रियतम की भुजाओं की आकांक्षा करने वाली कमलाक्षी महिलाएं हैं' इस रूप में युवकों ने हेमन्त के आगमन को जाना।।३७।।

सूर्योदय के पश्चात् काफी दिन शेष रहने पर मयगारी नामक पिंजरे से शिकार करते हुए वह ठण्ड से कष्टप्राप्त राजा पर्वत शिखर बैठे हुए उस

शिखरितटनिषण्णान्निर्वृतानातपेषु
हतविभृतहिमार्तोऽभ्येति मित्राण्यशंसत् ।।३८।।

युवतितनुमृदूनां तूलिकानां निकाये
मृगमदघुसृणाद्यैर्वासिते वासरान्ते ।
अशिथिलपरिरम्भारम्भिकुम्भस्तनाभिः
शिशिरसमयसौख्यं भाग्यवन्तो भजन्ति ।।३९।।

अपि वरतरुणीभिस्तर्जितस्तर्जनाभिः
स्मितविकसितकान्तिः संभ्रमात् किञ्चिदख्यात् ।
इह हि नगरसीम्नि प्रेक्षितुं यामि शीते
क्षणमिह तुरगाणां धावतां कौतुकानि ।।४०।।

इति निजमनुरुध्यायाति रामोऽवरोधं
बहिरवहितरागस्तावदेवाश्पालैः ।
सरभसपरिमुक्ता वाजिनश्चक्रुरुच्चैः
खुरपुटतटचञ्चचन्द्रकैश्चाकचक्यम् ।।४१।।

मीठी गर्मी से प्रसन्न उन जानवरों के पास पहुँचा और मित्रों की प्रशंसा की।।३८।।

दिन के अन्त में मृगमद अर्थात् कस्तूरी तथा घुसृण याने केसर की सुगंध से सुगंधित युवतियों के कोमल गद्दों के बीच कसे हुए आलिंगन से युक्त स्तनकलशों के साथ शिशिर समय के सुख को कुछ ही भाग्यशाली लोग, प्राप्त कर पाते हैं।।३९।।

अब इन सुन्दर स्त्रियों के द्वारा कोमल डांट प्रदान करने पर हल्के हास्य वाले उसने कुछ इस प्रकार कहा - मैं अब इस शीतकाल में नगर की सीमा में घोड़ों की विलक्षण दौड़ को देखने के लिये जाऊँगा।।४०।।

इस प्रकार बाहर के सौन्दर्य पर ध्यान देने वाले राजकुमार के अपनी निज अन्तःपुर की स्त्रियों के अनुरोध पर वापस आने पर घुड़सवारों द्वारा शीघ्रता में छोड़े गये घोड़ों ने अपने खुर पर बने चन्द्राकार ठप्पों से चाकचक्य किया।।४१।।

हयवरमधिरुह्याशिक्षयन्नृत्यचित्रं
प्रियनृपतिकिशोरैः साधु सन्दर्शिताध्वम् ।
निशितशरनिषङ्गी धन्वमौर्वीं विधुन्वन्
विपिनभुवि मृगाणां शङ्कनीयस्तदाऽऽसीत् ।।४२।।

त्रिचतुरगवयाङ्गान्येकदैवाशु भित्त्वा
धरणितलमगात्किं लज्जया रामबाणः ।
प्रतिभटकरिकुम्भाभ्यन्तरोद्भेदिना नः
कृतमिह वनजन्तुप्राणघातैरितीव ।।४३।।

अपि कवलितगात्राः क्रूरशालावृकौघै-
र्गहनभुवि वराहा वारिवाहातिभीमाः ।
अभिमुखरणदृप्ता रामबाणप्रभिन्नाः
सुभटगतिमुपेतास्तास्तन्न चित्रीभवेन्नः ।।४४।।

राजमित्रों के द्वारा भली प्रकार दिखाये रास्ते वाले उस राजकुमार ने (अब तक) बढ़िया घोड़े पर बैठकर नृत्य या भ्रमण चित्त सिखाया। उस समय वह धनुष की डोरी को कंपाने वाला जंगल की धरती पर जंगली जानवरों के लिये शंकनीय या भय का कारण बन गया था।।४२।।

तीन चार गवयों (गाय के समान भोला जानवर) के अंग को एक साथ भेद देने पर क्या राम का बाण धरती पर आ गया! वास्तव में प्रत्येक सैनिक के हाथियों के सिर के अन्दर को फाड़ने वाली शक्ति से वन्य जन्तु के प्राणों के विनाश के द्वारा उसने अपनी सफलता मानी।।४३।।

घने जंगल में अत्यन्त क्रूर शालावृक अर्थात् भेड़ियों के समूह के द्वारा शरीर को नोच लेने वाले बादल के समान विशाल रण में अत्यन्त क्रोधी सूअर राम के बाण द्वारा भिद कर सैनिकों की वीरगति को प्राप्त कराए गये यह क्या हमारे लिये अचरज नहीं है।।४४।।

अतिविततविसर्पद्भासकश्येनपक्षा-
निलनिभृतविहङ्गे लावका व्योम्नि यान्तः ।
प्रखरनखरचञ्चूकोटिभिः चोटिताङ्गाः
शरणमिव निपत्यारात् कुमारस्य जग्मुः ।।४५।।

वनमखिलमपारैरश्ववारैः पदातै-
र्धृतहतलुलिताञ्चल्लुम्बितक्षुब्धसत्त्वम् ।
अधृत नृपतिभानुक्रोधपात्रीकृतानां
प्रतिनृपनगराणां तुल्यरूपामवस्थाम् ।।४६।।

निजपुरमभियान्तं रामचन्द्रं नरेशैः
सहितमनुसरन्त्यः पङ्क्तयो वाहिनीनाम् ।
सकलभुजगनाथं हन्त पूर्वानुभूतं
नलमुखबलभारं स्मारयामासुरुच्चैः ।।४७।।

अत्यन्त खुले आकाश में भागते हुए चमकदार श्येन या बाज के पंखों की वायु से घिरे अन्य अनेक पक्षियों वाले आकाश में दौड़ते हुए लावक अर्थात् बटेर जिन्होंने अपनी तेज नाखून की चोंच से अंगों को चुटहिल बना दिया है ऐसे बटेर मानों शरण में गिर कुमार के पास पहुंच गये।।४५।।

इस प्रकार सम्पूर्ण जंगल अपार घुड़सवार तथा पैदलों के द्वारा प्रकम्पित हो गया तथा वहाँ अनेक क्षुब्ध प्राणी मारे गये। इसके पश्चात् वीरभानु राजा के क्रोध के पात्र बनाये गये प्रतिपक्षी राजाओं के नगरों के प्रति सामान्य दशा को उस राजकुमार ने धारण किया।।४६।।

इस प्रकार रामचन्द्र के वापस लौटते हुए साथ में अनेक नरेशों के साथ पीछे पीछे दौड़ती हुई गाड़ियों की पंक्तियों ने पूर्वानुभूत शेषनाग तथा नल की विशाल सेना की याद दिलाई।।४७।।

पौरैस्तोरणधोरणीविरचिता श्रीरामचन्द्रागमे
सा नीलोत्पलतोरणावलिरभूदेणीदृशां लोचनैः ।
रथ्योद्दामगृहान्तरालविलसज्जालान्तरालागतै-
र्लाजश्वेतकटाक्षपुष्पपटलीवृष्टिः समन्तादभूत् ।।४८।।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्सञ्जातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते ।
काव्ये स्वात्मगतप्रमेयरचने श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्वज्ञस्य चरित्रवर्णनशुभे सर्गोऽयमेकादशः ।।४९।।

श्री रामचन्द्र के वापस आने पर नागरिकों ने तोरणों की पंक्ति बनाई। वहां हिरणियों के समान आँखों वाली स्त्रियों के द्वारा नीले कमलों की तोरण पंक्ति बन गई। गलियों तथा विशाल ऊंचे घरों के अन्दर से तथा उनकी खिड़कियों से गिरते हुए लावा तथा श्वेत पुष्प समूह की चारों तरफ वर्षा हुई।।४८।।

अच्छे लोगों का प्रिय सर्वथा यशस्वी जौ वैश्य कुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्रीवीरभानु राजा का शुभ चरित वर्णन विषयक ग्यारहवां सर्ग समाप्त हुआ।।४९।।

●

द्वादशः सर्गः

विलोक्य लीलां ललितां सुतस्य प्रतापितामित्रकुलं बलं च।
प्रवर्धमानां च महाविभूतिं दिने दिनेऽमोदत वीरभानुः ।।१।।

इत्थं सुखेन क्षितिपालमौलौ श्रीवीरभानौ भुवि वर्तमाने।
श्रीरामचन्द्रस्य तदात्मजस्य बभूव भार्यासुभगा यशोदा ।।२।।

आनन्दहेतोर्नितरां गुरूणां पतिव्रतानां धुरि संस्थितायाः।
प्रवर्धमानं सततं क्रियाभिर्यस्या यशो दिक्षु जनैरगायि ।।३।।

यदीयशीलं समवेक्ष्य मेने सावित्र्यपि ग्राह्यमिदं मयेति।
स्त्रीत्वं किमेतत्परमेव जातमस्यामिति प्राह च लोक एषः ।।४।।

अपने पुत्र की सुन्दर लीला को देखकर, शत्रुसमूह तथा उसकी सेना को परास्त देखकर, अपनी इस पुत्र रूपी महाविभूति की निरन्तर वृद्धि देखकर वीरभानु प्रतिदिन प्रसन्न हुए।।१।।

भूपति श्री वीरभानु के इस प्रकार सुखपूर्वक धरती में निवास करने पर उनके पुत्र श्रीरामचन्द्र की पत्नी यशोदा सौभाग्यवती हुईं।।२।।

वह बड़े बड़े आनन्द का कारण पतिव्रताओं की ऊँचाईयों पर बैठी हुई थी। उसकी क्रियाओं से निरन्तर बढ़ते हुए यश को लोगों ने हर दिशा में गाया।।३।।

जिसके चरित्र को देखकर सावित्री ने भी माना कि यह मुझे लेना चाहिये। लोगों ने यह भी कहा कि इस धरती पर किसी विलक्षण ही स्त्रीत्व ने जन्म लिया है।।४।।

न जाह्नवीवारि विहाय यस्याः स्नानाय पानीयमभूत्कदापि ।
जलान्तरं प्राणभयेऽपि नागात् क्षणोऽपि धर्माचरणं विना च ।५।

तस्यामभूत्तस्य सुतः स्थितस्य पितुर्नियोगान्नवयौवराज्ये ।
आनन्दिताशेषजनो नितान्तमाकाङ्क्षजन्मा च पितामहस्य ।।६।।

तदातिगूढातिसुखेन पूर्णः प्रोल्लासिवक्त्रः सुधयेव चन्द्रः ।
रत्नैः सरस्वानिव रामचन्द्रः पितुस्त्रपानम्र इवावतस्थे ।।७।।

पितामहस्तु त्वरितं प्रमोदाद्विधाय नान्दीमुखमागमोक्तम् ।
ददौ द्विजेभ्यः शतशोऽवनीशो ग्रामान् सहस्राणि च सौरभेयीः ।।८।।

हयान् गजान् काञ्चनभूषणानि वासांसि रत्नानि च याचकेभ्यः ।
ददौ तथा येन न यावदायुः प्रापुः पुनस्तेऽर्थिजनप्रयासम् ।।९।।

जल के अन्दर प्राणों का भय होने पर भी जिस यशोदा के स्नान के लिये गंगाजल को छोड़कर अन्य का कोई जल नहीं हुआ तथा धर्माचरण के बिना कोई समय नहीं हुआ।।५।।

उस यशोदा में, पिता की आज्ञा से युवराज्य में स्थित (रामचन्द्र) का पुत्र तथा अत्यधिक आनन्द से परिपूर्ण तथा पौत्र जन्म की इच्छा करने वाले पितामह का पौत्र उत्पन्न हुआ।।६।।

तब छिपी हुई अत्यन्त प्रसन्नता से परिपूर्ण, रत्न से भरे हुए समुद्र के समान, अमृत से युक्त चन्द्र के समान अत्यन्त प्रसन्न मुख वाले रामचन्द्र पिता के पास लज्जा से नम्र होकर खड़े हुए।।७।।

पितामह (वीरभानु) ने शीघ्र ही प्रसन्नता से शास्त्रों में कहे मंगलवाद्य को प्रारम्भ करा के उस भूपति ने ब्राह्मणों को सैकड़ों गांव तथा हजारों गायें प्रदान कीं।।८।।

उसने याचकों को हाथी, घोड़े, सोना, आभूषण, कपड़े तथा रत्न इतनी मात्रा में प्रदान किये कि वे पूरे जीवन भर कभी याचकत्व के कार्य को प्राप्त न करें।।९।।



विलोक्य पौत्रं मुमुदे नृदेवः श्रीवीरभानुः प्रियया समेतः।
श्रीराजमत्या विदधे च कामं महोत्सवं स्कन्दमिव त्रिनेत्रः ।।१०।।

कृष्णो मनोजं मघवा जयन्तं सिन्धुः सुधांशुं च यथा तथाऽभूत्।
प्रमोदपूर्णो नृपतिर्विलोक्य सुतं समुल्लासिवपुः प्रकाशम् ।।११।।

चक्रेऽभिधां तस्य यथा विधानं श्रीवीरभद्रेति नृपप्रवीरः।
विज्ञाय नैसर्गिकदेहकान्त्या तमुद्धविष्णुं शुभलक्षणैश्च ।।१२।।

अतः पुरेऽवर्धत संप्रमोदः सर्वांगनानामथ तं विलोक्य।
यथा प्रसूत्यैष बभूव मातुः परं विशेषो न महोत्सवेन ।।१३।।

पुरौकसामप्यभवद् गृहेषु महोत्सवो येन किलाध्वनीनैः।
व्यतर्कि लोकैर्नगरेऽत्र जाताः सुता जनानां किमिहैकदैव ।।१४।।

राजा श्री वीरभानु अपनी पत्नी के साथ पौत्र को देखकर प्रसन्न हुए। उन्होंने राजमती के साथ यथेच्छ महोत्सव किया, जैसे शिव ने स्कन्द या कार्तिकेय जन्म पर किया था।।१०।।

जिस प्रकार मनोज को देखकर कृष्ण को, जयन्त को देखकर मघवा इन्द्र को तथा सुधांशु चन्द्र से सिन्धु या समुद्र को प्रसन्नता हुई, वैसे ही इस खिले हुए शरीर से प्रकाशित पुत्र को देखकर राजा को प्रसन्नता हुई।।११।।

इस वीरश्रेष्ठ राजा ने इसके स्वाभाविक शरीर की कान्ति तथा शुभ लक्षणों से इसे उन्नतिशील समझते हुए विधानपूर्वक इसका 'वीरभद्र' यह नाम रखा।।१२।।

इसके पश्चात् नगर में इसे देखकर सभी स्त्रियों को वैसी ही प्रसन्नता हुई, जैसी इसकी माता को पुत्रजन्म से हुई। पर इसने महोत्सव से इसे विशेष प्रकट नहीं किया।।१३।।

पुरौकस् या नगर में रहने वालों के घरों में भी यह महोत्सव हुआ। इससे बाहर के नागरिक यह सोचने लगे कि क्या इस नगर में सभी घरों में एक साथ पुत्र उत्पन्न हो गये हैं।।१४।।

कर्पूरगर्भा कदलीव रत्नपूर्णोदरः सिन्धुरिवैतदीयौ ।
आस्तां तदानीं पितरौ सुखेन पूर्णोन्तरावप्रकटोत्सवौ च ।।१५।।

यथैव गेहे नृपवीरभानोर्महोत्सवोऽभून्मुदितस्य भूयान् ।
तथाऽभवन्माधवसिंहनाम्नो मातामहस्यापि सवल्लभस्य ।।१६।।

पदार्थदामाधवसिंहयोश्च तथा प्रमोदः प्रबभूव सद्यः ।
आकर्ण्य दौहित्रजनुर्यथाऽऽसीच्छ्रीवीरभानोः सह राजमत्यशा ।।१७।।

ननन्द चाकर्ण्य सुतं स्वदेशे स्वसुर्नितान्तं नृपरत्नसेनः ।
रमावतीवल्लभया समेतस्तथा ननन्दुः पुरवासिनोऽपि ।।१८।।

अन्योऽप्यनन्दन्निजबन्धुवर्गः पुरे पुरे भूपपदे निविष्टः।
इष्टं महत् प्राप्य न कस्य चेतः परं प्रमोदं सहसाऽभ्युपैति।१९।।

कपूर गर्भ वाले केले के समान, रत्न से भरे हुए समुद्र के समान नवजात शिशु के माता पिता अन्दर से परम प्रसन्न थे, पर बाहर से उन्होंने आनन्द प्रकट नहीं किया।।१५।।

जिस प्रकार अतिप्रसन्न राजा वीरभानु के घर में विशाल महोत्सव हुआ, उसी प्रकार पुत्रसहित माधवसिंह नाम वाले नाना के यहां भी महोत्सव आयोजित हुआ।।१६।।

नाती के जन्म को सुनकर माधवसिंह दम्पति को वैसा ही आनन्द हुआ जैसा राजमती के साथ श्रीवीरभानु को हुआ।।१७।।

राजा रत्नसेन अपने देश में अपनी बहन के पुत्र का समाचार सुनकर अपनी पत्नी रमावती के साथ जैसे प्रसन्न हुए वैसे ही नगरवासी भी प्रसन्न हुए।।१८।।

प्रत्येक नगर में छोटे छोटे राजा उपाधि वाले लोग तथा अन्य निजी मित्रवर्ग भी प्रसन्न हुए। महान् इष्ट वस्तु को प्राप्त करके किसका चित्त अकस्मात् नितान्त प्रमोद को प्राप्त नहीं करता।।१९।।

आकर्ण्य दिल्लीश्वरभूपमौलिः श्रीमान् हुमाऊँ यवनाधिनाथः ।
श्रीवीरभानोस्तनयस्य जातं सुतं प्रमोदं बहुधा प्रपेदे ।।२०।।

स प्रेषयामास निजैरमात्यचरैः शुभान्याभरणानि हृष्टः ।
अश्वान्सुवासांसि सुगन्धवस्तु भ्रात्रीकृतस्तेन हि वीरभानुः ।।२१।।

श्रीवीरसिंहस्य यथा बभूव सुभ्रातृभावः सह बाबरेण ।
क्षोणीश्वरेणेह तथैव तेन श्रीवीरभानोरपि बन्धुभावः ।।२२।।

पौत्रं तमेवं नृपवीरभानोर्जातं किलाहं निजमेव मन्ये ।
को भ्रातृपौत्रेऽथ निजे विशेष इत्याह लेखेन च मङ्गलेशः ।।२३।।

रेजे तदानीं तु सपुत्रपौत्रः श्रीवीरभानुर्नृपतिः पृथिव्याम् ।
कामानिरुद्धोपहितो महीयान् हरिर्यथा प्राप्तमनुष्यभावः ।।२४।।

यवनों का पालक, राजाओं में श्रेष्ठ, दिल्ली का ईश्वर श्रीमान् हुमायूं भी श्री वीरभानु के पुत्र के पुत्र (अर्थात् पौत्र) के जन्म का समाचार जानकर बहुत प्रमोद को प्राप्त हुआ।।२०।।

उसने प्रसन्न होकर अपने पूर्व निजी अमात्यों के द्वारा शुभ आभूषण, घोड़े, कपड़े तथा सुगन्धित वस्तु भिजवाये। इस प्रकार उसने वीरभानु को भाई बना लिया।।२१।।

जिस प्रकार श्री वीरसिंह का बाबर के साथ अच्छे भाई का भाव था, उसी प्रकार श्री वीरभानु का भी इस भूपति (हुमायूँ) के साथ मित्रभाव था।।२२।।

मैं राजा वीरभानु के पौत्र को अपना ही पौत्र उत्पन्न हुआ, ऐसा मानता हूँ। अपने भाई के पोते में तथा अपने निजी पोते में क्या अन्तर है - इस प्रकार उस मंगलमय अधीश ने पत्र में लिखा।।२३।।

उस समय श्रीवीरभानु राजा धरती में अपने पुत्र पौत्रों के साथ इस प्रकार विराजित हुए, जैसे काम या प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध से घिरे मनुष्य भाव को प्राप्त हुए पूजनीय हरि या श्रीकृष्ण विराजित हुए थे।।२४।।

रामत्रयीव ज्वलनत्रयीव त्रयीश्रुतीनामिव पुष्कराणाम् ।
त्रयीव देवाधिपतित्रयीव त्रयी त्रिवेणीव रराज तेषाम्।२५।।

धर्मेण भुक्त्वा पृथिवीं बलेन जित्वाऽरिभूपान् द्रविणप्रदानैः ।
संतर्प्य विद्वन्निकरानवाप्य सुखानि सन्तानविलोकनेन ।।२६।।

विलोक्य भूपालनयोग्यवीर्यं प्रजानुरागास्पदमात्मजं च ।
आलिङ्ग्यमानं जरसा वपुषः स्वं विचार्य विज्ञाय च लोकचेष्टाम् ।२७।

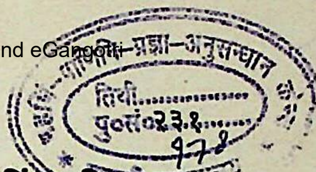
धुरं धराया विनिधाय धुर्ये निजात्मजे रामगुणाभिरामे ।
श्रीरामचन्द्रे नृपवीरभानुस्तत्याज राज्योद्वहनप्रयासम्।।२८।।

निवर्त्य चेतो विषयाभिलाषादुवास गङ्गायमुनोपकण्ठम् ।
निषेवितोऽलर्कपुरे सुताद्यैर्न हीयते किञ्चन पण्डितानाम् ।।२९।।

तीन राम (परशुराम, बलराम तथा रामचन्द्र) के समान, तीन अग्नि (सूर्य, बिजली तथा आग) के समान, तीन वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) के समान, पुष्कर या व्यापक पदार्थों की त्रयी (वायु, आकाश तथा दिशा) के समान, त्रिवेणी (गंगा, यमुना, सरस्वती) के समान उनकी त्रयी (वीरभानु, रामचन्द्र तथा वीरभद्र) विराजित हुई।।२५।।

इस पृथिवी का धर्म से तथा बल से उपभोग करके, शत्रु राजाओं को जीतकर, धन प्राप्त करके विद्वानों को सन्तृप्त करके, सन्तान देखने का सुख प्राप्त करके, धरती के पालन योग्य शक्ति को तथा, प्रजा के प्रेम का पात्र पुत्र को देखकर अपने शरीर को वृद्धावस्था से आलिंगित सोचकर, लोगों की चेष्टाओं को देखकर, धरती के शासन की धुरी को समर्थ राम के गुणों के समान सुन्दर अपने पुत्र श्री रामचन्द्र में डालकर राजा वीरभानु ने राज्य शासन के भार को उठाने के प्रयास को छोड़ दिया।।२६,२७,२८।।

विषयों की अभिलाषा से अपने चित्त को हटाकर अपने पुत्र आदि से सेवित गंगा यमुना के तट पर निवास किया। पण्डित या विद्वानों के लिये कहीं कुछ भी कमी नहीं है।।२९।।



पश्यन् स्वपुत्रस्य जयं पृथिव्यां यशः श्रियं धर्मरतिं च नित्यम् ।
विहाय लोकव्यवहारचिन्तामचिन्तयत् ब्रह्म परं प्रशान्तः ।। ३० ।।

रराज तस्यां सुकृती दशाया विदेहभूपाल इवोपशान्तः ।
निवृत्तकामोऽपि ददौ द्विजेभ्यो धनानि लोकाननु शिक्षयंश्च ३१।

कृतं न केनाऽपि कलौ यथा स तथा चकार श्रममश्रमाय ।
मनोऽनुगां निर्जरतामुपेतुं संस्पर्धयेव त्वरितं जरायाः ३२।

तं शान्तिवर्त्मप्रतिपन्नचित्तं विलोक्य लोका जगदुः किलेति ।
सत्यं कलौ भूपतिरेष नूनं प्रवर्तयत्यत्र सुविस्मयोऽसौ ।। ३३ ।।

ददौ धनं याचकमण्डलाय जिगाय सर्वेन्द्रियवैरिवर्गम् ।
प्राणान् क्रमेणैव वशं निनाय हित्वाऽपि राज्यं न जहौ स राज्यम्।

इस पृथ्वी में अपने पुत्र की विजय, यश, श्री तथा धर्म के प्रति संसक्ति को नित्य ही देखते हुए लोक व्यवहार की चिन्ता को छोड़कर परम प्रशान्त ब्रह्म का ध्यान किया।। ३० ।।

उस दशा में वह सुकृत करने वाला राजा विदेह भूपति के समान शान्त दशा में अवस्थित हुआ। कामनाओं से निवृत्त होने पर भी लोगों को शिक्षा देते हुए ब्राह्मणों को धन दान करता रहा।। ३१ ।।

उसने श्रम का अनुभव न करते हुए भी ऐसा श्रम किया जैसा इस कलियुग में किसी ने नहीं किया था। उसने मानों शीघ्र आने वाली वृद्धावस्था से स्पर्धा करने के लिये मानसिक निर्जरता प्राप्त की।। ३२ ।।

उस शान्ति के मार्ग में लगे हुए चित्त वाले को देख कर लोग कहते थे कि सचमुच यह ईषत् हास्य वाला राजा इस कलियुग में सत्य अर्थात् कृतयुग का प्रवर्तन कर रहा है।। ३३ ।।

उसने याचक लोगों को धन दिया, सभी इन्द्रियरूपी शत्रुवर्ग पर विजय प्राप्त की। प्राणों को क्रम से अपने वश में किया तथा इस प्रकार राज्य कार्य छोड़कर भी राज्य नहीं छोड़ा।। ३४ ।।

असेवि नित्यं बुधमण्डलीभिरस्तावि लोकैरखिलैः प्रियोऽभूत् ।
समस्तलोकस्य तदा स भूपो राज्यादपि प्राप वरामभिख्याम् ।। ३५।।

वेदान्तसिद्धान्तविदो द्विजेन्द्रा वैशेषिका न्यायविदो महान्तः ।
मीमांसकाः सांख्यनिविष्टचित्ताः पातञ्जलास्तं निषिषेविरे च। ३६।

गङ्गातरङ्गेषु कलिन्दजायाः कल्लोलमालामिलितेषु दृष्टिः।
विवेश वेश्माग्रगतस्य तस्य सरस्वतीं द्रष्टुमिवातिगुप्ताम् ।३७।।

सुप्तोत्थितस्यापि यथैव तस्य दृष्टिस्त्रिवेण्यां निविशेत पूर्णम्।
तथैव तस्थौ स निवेशभागे न दुर्लभं किञ्चन भाग्यभाजाम् । ३८।

इत्थं परीवारनिषेव्यमाणः सुखेन तिष्ठन्नुपलब्धतत्त्वः ।
स वार्धकं वर्धितकीर्तिवल्लिर्निनाय सार्थक्यमुदारबुद्धिः ३९।

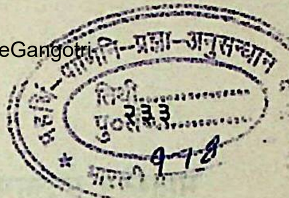
वह सदा बुद्धिमानों की मण्डली के द्वारा सेवित किया गया। वह प्रिय समस्त लोगों के द्वारा स्तुत हुआ। उस समय इस राजा ने समस्त लोक से राज्य से भी अच्छी उपाधि को धारण किया।।३५।।

वेदान्त सिद्धान्त को जानने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ, वैशेषिक तथा न्याय को जानने वाले बड़े बड़े लोग, मीमांसक, सांख्य में चित्त लगाने वाले तथा पातंजल योग के विद्वानों ने उसका सेवन किया।।३६।।

गंगा की तरंगों में यमुना के कल्लोलपूर्वक मिलने पर उसकी दृष्टि लगी रहती थी। मानों घर से बाहर निकले हुए उस राजा की आँखें अत्यन्त गुप्त सरस्वती को खोजने में लगी हुई हों।।३७।।

सोने से उठने के बाद जैसे उसकी दृष्टि पूरी तरह त्रिवेणी पर पड़ती थी, वैसे ही अपने निवेश या कुटिया में भी वह शान्तचित्त होकर अवस्थित रहता था। सौभाग्यशाली लोगों के लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है।।३८।।

इस प्रकार सभी तत्त्वों को जानने वाले, परिवार के द्वारा सेवित होने वाले, उदार बुद्धि वाले राजा ने सुखपूर्वक निवास करते हुए अपनी कीर्तिलता को बढ़ाते हुए सार्थक रूप से अपने बुढ़ापे को बिताया।।३९।।



बाल्ये विद्याः परमधिगता यौवने राज्यलक्ष्मी-
स्त्रासात्त्राता अवनिपतयो येन पश्चादुपेताः ।
वंशः शुद्धो भुवि पृथुलितो वार्धके तु त्रिवेण्यां
वासः क्लृप्तो विमलमनसा तस्य को दुर्लभोऽर्थः ।।४०।।

आसीदेवं विविधगुणगणग्रामविश्रामधाम
क्षोणीशानो जगति विदितश्रीयशा वीरभानुः ।
भानुर्यस्य प्रचुरमहसे सम्पदे देवराजो
देवाचार्यः पृथुलमतये सस्पृहत्वं जगाम ।४१।

उभयकुलविशुद्धः श्रीपतिप्रत्तचित्तः
कृतगुणिजनतोषो माधवो यः प्रभाति ।
गुरुनृपतिदयार्थी पापकर्मप्रमाथी
जगति जयति काव्यं तस्य भूपाश्रयत्वात् ।।४२।।

ऊरव्योऽभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तस्याभात्पतिदेवता कुलभया दुर्गेतिनाम्ना वधूः ।

बचपन में अच्छी विद्या प्राप्त की, यौवन में राज्यलक्ष्मी को प्राप्त किया, बाद में आये हुए शरणागत राजाओं को त्रास से बचाया, उसका शुद्ध वंश धरती में खूब प्रसिद्ध हुआ, बुढ़ापे में उस विशुद्ध मन वाले ने त्रिवेणी में निवास किया। उसके लिये कौन सा विषय दुर्लभ है।।४०।।

इस प्रकार के गुण समूहों की विश्रान्ति का स्थान, धरती का पालक, सम्पूर्ण जगत् में जिसका यश प्रसिद्ध हो चुका है ऐसा श्री वीरभानु था। जिसके प्रचुर तेज के लिये सूर्य ने, सम्पत्ति के लिये देवराज इन्द्र ने तथा अत्यन्त विस्तृत बुद्धि के लिये देवाचार्य बृहस्पति ने स्पृहा की थी।।४१।।

दोनों कुलों में विशुद्ध श्रीपति अर्थात् विष्णु पर चित्त लगाने वाला, गुणियों की सेवा से सन्तोष करने वाला, गुरु तथा राजा की दया को चाहने वाला, पाप कर्म को विनष्ट करने वाला जो माधव कवि सुशोभित होता है, उसका यह काव्य राजा के अधीन होने से सदा विजय को प्राप्त करे।।४२।।

मातुस्तेन सदुक्तमार्गगतिना श्रीमाधवेनार्जितं
काव्यं राजति राजवर्णनशुभं तत्कीर्तिगङ्गामृतम् ।।४३।।

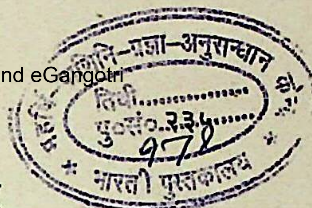
यावन्नारायणे श्रीर्गिरिवरतनया वामदेवार्धभागे
वेदानां तुर्यमाद्यं रघुपतिचरितं भास्करः शीतरश्मिः ।
आस्ते भूर्भारतं चोल्लसति यमुनया जह्नुकन्या पुराणै-
स्तावच्छ्रीवीरभानूदयमुदयदिदं काव्यमास्तां प्रसिद्धम ।।४४।।

ऊरव्योभयचन्द्र एधितयशा यो भाति साधुप्रिय-
स्तत्संजातकलेवरस्य सुधियः श्रीमाधवस्यार्चिते ।
सत्काव्ये सुचरित्रवर्णनविधौ श्रीवीरभानुप्रभोः
सर्गो द्वादशसंज्ञकोऽयमखिलग्रन्थः समाप्तिंगतः ।।४५।।

जो यशस्वी, साधुओं में प्रिय, अभयचन्द्र थे, उनकी कायस्थ पति को देवता मानने वाली, कुल से भय खाने वाली दुर्गा नामक पत्नी सुशोभित हुई। इस माता से अच्छे मार्ग में चलने वाले माधव के द्वारा किया गया राजवर्णन से शुभ, कीर्तिगंगा के अमृतरूपी काव्य सदा सुशोभित होवे।।४३।।

जब तक नारायण में श्री है, वामदेव के अर्धभाग मे पर्वतपुत्री पार्वती हैं, चारों वेद हैं, आद्य कुलपति श्रीराम का चरित है, सूर्य तथा चन्द्रमा है, भारत की धरती है, अति प्राचीन यमुना से मिलने वाली गंगा है तब तक यह श्री वीरभानूदय काव्य प्रसिद्धि को प्राप्त करे।।४४।।

अच्छे लोगों का प्रिय सर्वथा यशस्वी जो वैश्य कुलोत्पन्न अभयचन्द्र सुशोभित है। उससे इस शरीर को प्राप्त करने वाले बुद्धिमान् माधव के सुपूजित, स्वनिर्मित प्रमेय की रचना वाले काव्य में सर्वज्ञ श्री वीरभानु राजा का बारहवां सर्ग तथा यह सम्पूर्ण ग्रन्थ समाप्त हुआ।।४५।।



पूर्णमिदं श्रीवीरभानूदयनामकाव्यम्

संवत् १६४८ समये अगहन शुक्लपक्ष द्वितीयायां भौमवासरे लिखितमिदं कायस्थतुलसीदासेन कृष्णदास-पुत्रेण काशीवासिना विश्वेश्वरसन्निधे।।

श्री वीरभानूदय नामक काव्य समाप्त

विश्वेश्वर के सान्निध्य में काशीवासी कृष्णदास के पुत्र कायस्थ तुलसीदास के द्वारा संवत् १६४८ अगहन शुक्ल पक्ष द्वितीया भौमवार में यह ग्रन्थ लिखा गया।।





वेद वाणी वितानम् के अ

१. **जगन्नाथ-शतक**— श्रीमन्महाराज रघुराज सिंह जू
हिन्दी काव्य ग्रन्थ। डा. सुद्युम्न आचार्य की व्याख्या,
सहित।

म. प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रशंसित तथ

२. **जगदीश-शतकम्**— श्रीमन्महाराज रघुराज सिंह जू
का प्रथम बार प्रकाशन। साथ ही महाविद्वान् पं. रंगाच
प्राचीन संस्कृत टीका तथा डा. सुद्युम्न आचार्य की सु

मूल्य २२/- रु. मात्र

निम्न सभी पुस्तकों के लेखक— डा. सुद्युम्न आचार्य

३. **संस्कृत काव्यों के आधार पर बघेलखण्ड का इतिहास**— इसमें विभिन्न संस्कृत काव्यों तथा प्रमुखतः वीरभानूदयकाव्य के आधार पर बघेलखण्ड का लगभग ४५० वर्षों का क्रमबद्ध इतिहास वर्णित है। साथ ही इंग्लिश तथा मुस्लिम इतिहासकारों के साथ तुलना के द्वारा इसे प्रामाणिक बनाया गया है। इतिहास में रुचि रखने वालों के लिये यह ग्रन्थ अनिवार्य है। *मूल्य १२/- रु. मात्र*

४. **अधिविज्ञानं दर्शनशास्त्रम्**— भाषा संस्कृत। यह भारतीय दर्शनशास्त्र तथा आधुनिक भौतिक विज्ञान विषय पर तुलनात्मक, समीक्षात्मक अपने विषय का अनूठा पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ है। यथा स्थान चित्रों, चार्टों का भी उपयोग है

मूल्य ९०/- रु. मात्र

५. **रोचन्तां शब्दभूमयः**— भाषा-संस्कृत, इंग्लिश। उ. प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत। इसमें संस्कृत, हिन्दी शब्दों तथा उनकी व्युत्पत्तियों पर आधारित अतिरोचक निबन्धों का संग्रह है। *मूल्य ४०/- रु. मात्र*

६. **राजन्तां दर्शनांशवः**— भाषा-संस्कृत, हिन्दी। उ प्र. संस्कृत अकादमी द्वारा पुरस्कृत- इसमें भारतीय दर्शन तथा आधुनिक विज्ञान विषय पर आधारित अतिरोचक निबन्धों का संग्रह है। *मूल्य ५०/- रु. मात्र*

७. **The glory of the Vedas**

इसमें वेदों की प्रासंगिकता तथा इनकी बहुमूल्य विशेषताओं का अतिरोचक निबन्धों के अन्तर्गत वर्णन है। *मूल्य ८/- रु. मात्र*